श्री भागवत-दर्शन ॥-

भागवती कथा

(छत्तीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा'॥

लेखक

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

●

प्रकाशक
संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(झूसी) प्रयाग

●

तृतीय संस्करण
१०००

माघ वसंतपंचमी
सं० २०२७

मूल्य : १.२५

मुद्रक—वंशीधर शर्मा भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग।

विषय-सूची

संक्षिप्त श्रीकृष्ण-चरित

[८१२]

जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥*

(श्रीभा० ६ स्क० २४ अ० ६६ श्लो०)

छप्पय

जन्म अष्टमी पक्ष कृष्ण भादौं की रजनी ।
विद्युत् घन महँ चमक उठै काची जनु बजनी ॥
पितु कूँ आज्ञा दई गये गोकुल गिरधारी ।
नन्द यशोदा महल मनहु खिलि गई उजारी ॥
गो गोपी अरु गोपगन, सँग नित हरि क्रीड़ा करहिं ।
असुर देहिं दुख सबनि कूँ, हनि तिनकू जग भय हरहिं ॥

जो बुद्धिमान मिठाई बेचने वाले होते हैं, जिन्हे अपनी मिठाई की उत्तमता पर पूर्ण विश्वास होता है और जिन्हें योग्य

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण ने जन्माष्टमी के दिन जन्म लिया। तदन्तर वे अपने पिता के घर से गोकुल गये, वहाँ बढ़े हुए, अपने शत्रुओं का संहार किया। फिर बहुत सी पत्नियों का पाणिग्रहण करके उनमे पुत्र उत्पन्न किये तथा लोगों में वेदमर्यादा स्थापित करने के निमित्त अनेकों यज्ञों द्वारा अपने आप ही अपना यजन किया।"

उत्ताम ग्राहक की भी परीक्षा होती है, वे पहले उत्ताम अधिकारी को बिना माँगे कुछ मिठाई बानगी के लिये दे देते हैं। उसका रस चखकर वह व्यक्ति जिसकी जिह्वा मधुर रस को चखते ही लपलपाने लगती है, वह फिर बिना मिठाई लिये रह नहो सकता ! इसी प्रकार उत्तम वक्ता अधिकारी श्रोता को कथा का सूत्रपात्र करके उसकी उत्सुकता को बढाते हैं। यदि वह आगे के लिये उत्कठापूर्वक जिज्ञासा करता है, तब तो उसे आगे को कथा बताते हैं, नहीं तो उसे समाप्त कर देते हैं। सूत्रपात करने से अधिकारी की परीक्षा हो जाती है।

सूतजी कहते है—"*मुनियो! अब मैं आपको श्रीकृष्णचरित* सुनाता हूँ। भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी को अर्धरात्रि के समय मथुरा के कारावास मे भगवान् का जन्म हुआ। तदनन्तर वे अपने पिता के घरसे नन्द बाबा के गोकुल मे गये। वहाँ कुछ-कुछ बडे हुए। मामा ने प्रथम ही पूतना को उपहार-रूप मे खिलौना भेजा। कुछ देर तक तो उसकी बनी ठनी गुडिया से वे खेलते रहे। फिर याद आई, गुडियो से तो लडकियाँ खेलती है, मैं तो लडका हूँ। मामा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। लडको को मार कर उन्हे लडकियाँ ही दिखाई देती हैं। इतना स्मरण आते ही उन्होने उस गुडिया को तोड-मरोड डाला। वे कुछ बडे होते तो कुब्जा की तरह उम बहू बना लेते, किन्तु दूधमुँहा बच्चे बने थे। उसने आते ही मुँह में स्तन ठूँस दिया। अब तो वह धर्म की माता बन गई। उन्होने उसे माता की गति दी। फिर सोचा, माँ ने तो मुझे महर के महलो मे ही बन्द कर रखा है। कारावास भोगने को मेरे माता पिता ही बहुत हैं, मैं व्रज का सैर-सपाटा करूगा, ऊपर उडकर सब व्रज के घरो को देखूँगा। वैसे उडूँ तो भोले-भाले गोप डर जायँगे, मुझमे भूत का भ्रम करने लगेंगे। इस

लिये उन्होने भभूड़े भूत को बुलाया। उसे ही उडनखटोला बनाया। वे उस तृणावर्त असुरके ऊपर चढ ही तो गये। उसके गले को कस के पकड ही तो लिया। अब उड़े लालाजी ऊपर, तिक-तिक करके उस भभूड़े भूत को हाकने लगे। ऊपर चढकर ब्रजकी शोभा देखी, घर-घर दूध गरम हो रहा है, बडा भारी धुआँ हो रहा है। तृणावर्त की आँखो मे धुआँ भर गया। उसके कल-पुरजे बिगड गये। उडनखटोला ऊपर न उडकर, नीचे ही गिरा। आपने कहा– "चल बे हम ने जितना देख लिया, उतना ही बहुत है। नीचे उतर आये और रोने लगे। रोने क्यो लगे जो ! इसलिये कि उनका वायुयान चकनाचूर हो गया। उसके बनने की आशा न रही। खिलौने के फट से फूट जाने पर कभी-कभी बच्चे ताली देकर हँस भी लेते हैं, कभी रोने भी लग जाते है। माता ने गाडी मे उसे सुला दिया। आपने सोचा, हम तो सो रहे है, यह गाडी गढी है। लाओ इसे भी सुला दो, दोनो साथ-साथ सोवें। मारी जो ठोकर धडडधुम। गाडी भी सो गई और उस मे के घी-दूध के कुप्पे भी फूट गये। फिर वत्सासुर से बातें हुई, बकासुर की चोच को चर से चोर ने चीर दिया। चोरी की विद्या मे विशारद आचार्य या महामहोपाध्याय हो गये। धेनुक को मारा कालियनाग का दमन किया, प्रलम्ब को पछाडा, अजगर को उबारा। शङ्खचूड, अरिष्ट तथा केशी आदि राक्षसो का उद्धार किया। वे गोकुल से फिर मथुरा आये, मथुरा से द्वारका धाये। जो-जो भी राजा शत्रु बनकर सम्मुख आये, उन सबने प्राण गँवाये। फिर एक नही दो नही, दश नही, बीस नही, सौ नही, हजार नही– सोलह हजार एक सौ आठ राजकुमारियो के साथ विवाह किये। सब मे दश-दश पुत्र पैदा किये। कितने पुत्र हुए, किसी अर्थशास्त्री से गणना करानी

पड़ेगी। फिर उन्होने यज्ञ किये, दान दिये, प्रायश्चित्त किया। परमात्मा होकर ये सब काम क्यो किये? यज्ञों मे उन्होने यजन किनका किया? अपना ही यजन किया। स्वय ही ठाकुर, स्वय ही पुजारी। स्वय ही कर्त्ता, स्वय ही भोक्ता, स्वय ही यज्ञ, स्वय ही यजमान। चोनी का ही घोडा, चीनी का ही सवार! उन्होने यह सब इसलिये किया, जिससे वेदकी मर्यादा बनी रहे—धर्म की मर्यादा स्थापित करने को यह लीला रची। फिर कौरव पाडवो मे कलह करा दी, स्वय ही उसके सूत्रधार थे। वे स्वय ही दूत बनकर गये, चार से कहा तू चोरी कर, साहू से कहा, तू सावधान रह। कैसी लीला है, कैसा नाटक करते हैं नटनागर? उन्होने अर्जुन के हाथ मे झूठे बाण दे दिये, साथ ही पोटलीभर के अभिमान भी। अर्जुन समझ रहे थे, सब मेरे बाणो से मर रहे है। किन्तु निर्जीव बाण भला किसी को कैसे मार सकते हैं! फिर और मारन वालो के हाथो मे भी बाण थे। यथार्थ बात तो यह है, जिसकी ओर ये मरने के विचार से दृष्टि पात करते, वही उसी समय मर जाता, रणभूमि मे गिर जाता। समस्त सेनाओ का सहार कराके सव्यसाची अर्जुन की विजय उन्होने घोषित की। तदनन्तर अपने कुल मे भी कलह करा दी। कुल महँ कलह कृष्ण ने क्यो कराई? इसका कोई उत्तर नही। उनके कार्यों मे क्यो' का प्रश्न नहो। उनकी इच्छा ही एकमात्र प्रधान कारण है। अन्त मे उद्धव को आत्मज्ञान का उपदेश देकर वे निज आश्रम को चले गये।" इतना कहकर सूतजी चुप हो गये।

सूतजी को चुप देखकर उत्सुकता, आश्चय और सभ्रम सहित शौनकजी ने पूछा—सूतजी! क्या श्रीकृष्ण-चरित हो गया? महाभाग! इतनी देर पहाड खोदा, निकसी एक मूँसरी, तीन दिन बिना खाये-पीये भोजन की प्रतीक्षा की, मिला एक

सकलपारा। कब से कह रहे हो, श्रीकृष्ण-चरित कहूँगा, श्री कृष्ण चरित कहूँगा। कहा भी तो दो शब्दो मे उसे समाप्त कर दिया। क्या इतने ही के लिये आपने इतनी देर वशो के गीत गाये। एक-एक राजा की कथा मे तो आपने न जाने क्या-क्या वर्णन किया। हम धैर्य से सब सुनते रहे चलो, इन सब को भी सुन लो श्रीकृष्ण चरित सुनने को मिलेगा। सो आपने तो हमारी आशा पर ही पानी फेर दिया। महाभाग! हमारी तृप्ति नहीं हुई, अपितु और भी अधिकाधिक उत्सुकता बढ गई।"

हँसते हुए सूतजी बोले—"महाराज! श्रीकृष्णचरित समाप्त नही हुआ है। मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने राजा परीक्षित की उत्कंठा बढाने को ही अत्यन्त सक्षेप मे श्रीकृष्ण-चरित की बानगी चखा दी। उन्होने सोचा— राजा की उत्सुकता भी तो देखें, श्रीकृष्ण चरित सुनने को कितने उत्कण्ठित है। आज महाराज परीक्षित को बिना अन्न जल ग्रहण किये चार दिन समाप्त हो गये। मेरे गुरुदेव जानना चाहते थे कि भूख से राजा व्याकुल तो नही हो गये हैं। यदि व्याकुल हो तो कुछ जलपान कर लें, क्योकि चित्त भूख-प्यास या अन्य किसी विषय की चिन्ता मे फँसा रहता है तो कथा श्रवण मे मन नहीं लगता इसीलिये श्रीशुक ने इस प्रकार संक्षिप्त श्रीकृष्ण चरित कहा।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ तो सूतजी! महाराज परीक्षित ने फिर किस प्रकार कौन से प्रश्न किये, इन सबको विस्तार से आप कहे। अब श्रीकृष्ण-चरित मे कृपणता न करें।"

शौनकजी ने कहा—"श्रीकृष्ण-चरित को विस्तार के साथ ससार मे कौन कह सकता है? ब्रह्मादि देव भी उनका पार नही पा सकते। अत. मैंने जो भी कुछ चरित अपने गुरुदेव से सुने हैं, उन्हे ही कहूँगा। अब जिस प्रकार महाराज परीक्षित ने प्रश्न

पूछे उन्हीं का वर्णन मैं करता हूँ। आप सब अब समाहित चित्त हो जायँ।"

छप्पय

गोकुल तैं पुनि लौटि सबल मथुरा महँ आये।
डरि हरि रन कूँ छोड़ि भगे रनछोर कहाये॥
आइ द्वारका ब्याह सहस सोलह करवाये।
पुत्र पौत्र बहु बढ़े निरखि यादव गरवाये॥
करि कुल को संहार हरि, उद्धव कूँ शिक्षा दई।
यों प्रभास महँ अन्त की, पूरन भू-लीला भई॥

महाराज परीक्षित का श्रीकृष्ण-चरित-सम्बन्धी प्रश्न

[८१३]

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १ अ० १-२ श्लोक)

छप्पय

प्रभु चरननि कूँ वन्दि व्याससुत मौन भये जब ।
सुनि संक्षिप्त चरित्र विकल है बोले नृप तब ॥
चन्द्रवश रविवश माहि बहु भये भूपगन ।
सुनि शुभ तिनिके चरित मुदित अति भयो मोर मन ॥
अब अति रसमय सारमय, सुखमय अनुपम शक्तिमय ।
कृष्णचरित गुरुवर ! कहहु, हृदय होहि प्रभु-भक्तिमय ॥

चित्त चोर के चारु चरित्रो के श्रवण की चटपटी जिन को

---

* महाराज परीक्षित श्रीशुकदेवजी से पूछते हैं—"भगवन् ! आपने सोमवश और सूर्यवश के राजाओ के वश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया और इन दोनो वश वाले राजाओ के अद्भुत-अद्भुत चरित भी सुनाये, इसी प्रसंग मे धर्मात्मा महाराज यदु के वश का भी वर्णन किया । अब आप हमे उसी वश म विष्णु के अश से उत्पन्न श्रीकृष्ण के चरित सुनाइये ।"

लग जाती है, उन्हे ससार की सुधि ही भूल जाती है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि ये जैव धर्म हैं। जीव इनके बिना रह नही सकता। प्राणिमात्र इनमे सुख का अनुभव करते हैं, किन्तु जो इन धर्मों से ऊपर उठ जाते हैं, उनके लिये आहार, निद्रा आदि व्यर्थ से बन जाते हैं, वे उस रस मे ऐसे निमग्न हो जात है, कि उनको इन बातो की स्मृति ही नही रहती। जीवो की जब तक देह मे आत्म बुद्धि है, तभी तक देह को पुष्ट और प्रसन्न करने वाले पदार्थ प्रिय लगत है। जहाँ आत्म-स्वरूप श्रीकृष्ण के स्वरूप का बोध हुआ यथार्थात्मा का अनुभव हुआ, तहाँ देह-सम्बन्धी सुखो की तो बात ही क्या, देह की भी सुधि बुधि नहीं रहती।

सूतजी कहते है—"मुनियो! जब भगवान् श्री शुक सक्षिप्त श्रीकृष्ण-चरित कहकर चुप हो गये, तब परम भागवत् भरत-वशावतम कुरुकुल की कीर्ति को बढाने वाले अभिमन्युतनय उत्तरानन्दवर्द्धन महाराज परीक्षित ने उत्सुकता और धैर्य के साथ कहा—"भगवन्! आपने आज चार दिनो से बडी ही सुन्दर-सुन्दर एक से एक अद्भुत-सरस कथायें सुनाई। आपने भगवान् के कच्छ, मच्छ वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम आदि अवतारो की भी कथायें सुनाई। ससार मे सूर्यवश और सोमवश—ये ही क्षत्रियो के सर्वश्रेष्ठ वश समझे जाते हैं। प्रायः सभी प्रकार के क्षत्रियो की उत्पत्ति इन्ही दो वशो से हुई है। आपने इन दोनो ही वशो का कहीं सक्षेप से, कही विस्तारसे वर्णन किया। इन वशो मे उत्पन्न हुए राजाओ की सुन्दर, शिक्षाप्रद, विचित्र, आश्चर्यजनक असभव सी प्रतीत होने वाली कथायें भी सुनाई। भक्त और भगवान् की कथाओ का ही नाम भागवती कथा है। जहाँ जहाँ आपने अवतारों का वर्णन किया है, वहाँ—

वहाँ स्थान-स्थान पर आप कहते गये है कि ये सब अवतार तो कोई कलावतार हैं, अशावतार है, कोई आवेशावतार है, कोई मन्वन्तरावतार तथा युगावतार हैं, किन्तु यदुनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र तो स्वय साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही है। जिस धर्मात्मा यदु के वश मे यदुनन्दन यादवेन्द्र उत्पन्न हुए हैं, उन ययाति-पुत्र यदु के वश को भी आपने विस्तार से कहा। उनके और भी दुर्वसु द्रुह्यु, अनु और पुरु-इन चारो भाइयो के वंशो का वर्णन किया। अब हम आपसे यदुवश मे अवतीर्ण भगवान् वासुदेव के चारु चरित विस्तार के साथ सुनना चाहते है। अब सब कहानी-कथाओ को छोडकर हमे उसी यदुवश मे अपने समस्त अशो व सहित अवतीर्ण हुए भगवान् विष्णु की ललित लीलाओ को सुनाइये। परम पावन यदुवश मे अवतीर्ण होकर अखिलेश्वर देवकीनन्दन ने कौन-कौन-सी कर्म तथा समस्त इन्द्रियों को सुख देने वाली क्रीडायें की ? श्रीकृष्ण-चरित मुझे ही नही, सभी प्रकार के प्राणियो को प्रिय है।"

श्री शुकदेवजी ने कहा—'राजन् ! भगवान् ने तो माया का आश्रय लेकर प्राकृतवत् लीलायें की ? नित्य अव्यक्त ज्ञान स्वरूप आत्मा में रमण करने वाले ज्ञानियो को ये प्राकृतवत् लीलायें प्रिय कैसे हो सकती हैं ?"

हँसकर महाराज परीक्षित बोले—'भगवन् ! ज्ञानियो के हृदय की तो ये ललित लीलायें हार ही हैं। प्राकृत-सी प्रतीत होने पर भी ये सब लीलायें दिव्य हैं, चिन्मय हैं, ऊपर से मैदा की बनी सी दिखाई देती है, किन्तु भीतर इतनी पोली है कि उनमे रस ही रस भरा है, जहाँ जिह्वा से इनका ससर्ग हुआ, कि फिर कैसा भी ज्ञानी ध्यानी हो, उससे इन्हे बिना चखे रहा नही जाता। यथार्थ मे इन लीलाओ के अधिकारी तो ज्ञानी ही हैं।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भगवन्! आप ही हैं। आपसे बढ़कर संसार में दूसरा ज्ञानी कौन होगा? आप जब भगवान् की लीलाओं का वर्णन करने लगते हैं, तब तन्मय हो जाते हैं, उन्हीं के रस में निमग्न होकर आत्म-विस्मृत से बन जाते हैं। यदि इनमें अपूर्व रस न होता, तो आप जैसे परमहंस चक्रचूडामणि वीतराग त्यागी विरागी सन्यासी इनका इतने उल्लास के साथ वर्णन क्यों करते?"

श्रीशुक बोले—"अच्छा, ज्ञानियों की बात तो दो छोड़। उनकी दृष्टि में तो जगत् की सत्ता ही नहीं, वे तो सब प्राणियों में, समस्त घटनाओं में, उसी सच्चिदानन्द-स्वरूप के दर्शन करते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण की सरस और शृंगारपूर्ण कथाओं को सुनकर मुमुक्षुओं का तो पतन हो सकता है, उनका चित्त तो चंचल हो सकता है। अतः मुमुक्षुओं के लिये ये लीलायें हितकर कैसे हो सकती हैं?"

महाराज परीक्षित ने कहा— भगवन्! आप सब जानते हैं। आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं कि मैंने मनोयोग से कथा सुनी है या नहीं। मुमुक्षुओं के लिये तो श्रीकृष्ण कथा श्रवण के अतिरिक्त मुक्ति का कोई सरल सुन्दर सर्वोपयोगी अन्य साधन ही नहीं। उनकी अप्राकृतिक, सरस लीलाओं को सुनते सुनते ही उनका प्राकृत जगत् में चित्त हट जायगा। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण लीलाय ही गड़ जाये गी। उन्हें श्रीकृष्ण लीला के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही न देगा। यह जगत् उनकी लीला का विलासमात्र ही प्रतीत होने लगेगा। सभी में उनकी मुरली की मधुर ध्वनि सुनाई देगी। अतः मुमुक्षुओं के लिये तो श्रीकृष्ण कथायें भवरोग की अचूक भेषज हैं अव्यर्थ ओषधि हैं।"

श्रीशुक ने कहा— राजन्! आपने श्रीकृष्ण-कथा को सर्व-

प्रिय बताया। बद्ध मुक्त और मुमुक्षु—तीन ही प्रकार के जीव होते है। उनमे से मुमुक्षु और मुक्तो को तो कृष्ण-कथायें प्रिय होगी ही, किन्तु ससारी-बद्ध लागो को तो भगवान् की चर्चा रुचिकर ही नही होती। उनको तो विषय वार्तायें ही प्रिय हैं। उनके लिये कृष्ण-कथा कंसे कल्याणप्रद और सुखकर हो सकती है?"

महाराज परीक्षित ने कहा—"हाँ, भगवन्! यह बात सत्य है कि बद्ध जीवो को भगवत् वार्ता नही सुहाती, अवतार-चरित्रो मे उनका मन नही लगता, किन्तु भगवन्! श्रीकृष्ण कथा इसमे अपवाद है। भले ही उन्हे कच्छ, मत्स्य, वराह नृसिंह, वामन, परशुराम आदि कथायें रुचिकर न हो किन्तु ये कृष्ण की कथायें तो ऐसी आकर्षक हैं कि प्राकृत बद्ध जीवो का भी मन हठात् इनकी ओर आकर्षित हो जाता है। रासविहारी ने इन लीलाओ को इतने कौशल के साथ किया है, कि जिसकी जमी भावना होती है, उसे वे वैसी ही दिखाई देती है। ससारी लोगो ने जहाँ गोपियो के नख-शिख का वर्णन सुना, जहाँ कुण्डलो की आभा से दमकते हुए कपोलो कचु से आवृत पीन पयोधरो और काञ्चीकलाप परिरम्भ नितम्बबिम्बो का वर्णन सुना तहाँ वे सब बातें भूल जाते हैं उस रस मे बहने लगते हैं।"

श्रीशुक ने कहा—"यह तो राजन्! कुछ बात नही हुई, सुरापी को सुरापान कराके अपने पक्ष मे कर लेना, उसके व्यसन को और बढाना है। विषयो को विषय-सामग्री प्रदान करके उनक बन्धन को और सुदृढ करना है।"

इस पर राजा बोले—"नही, भगवन्! यह बात नही। विष की ओषधि विष ही है, स्थावर विष जङ्गम विष से नष्ट हो जाता। इसी प्रकार प्राकृत सरसता दिव्य सरसता

नष्ट हो जाती है। इसीलिये तो रास-लीला का श्रद्धा से श्रवण करने का फल जितेन्द्रिय होना है।"

श्रीशुक बोले—"जिनके श्रद्धा न हो, उनकी क्या दशा होगी ?"

महाराज बोले—"न हो श्रद्धा ! मिश्री को अन्धेरे में खाओ, तो भी मीठी लगेगी; अग्नि को अनजान में छूओ, तो भी जला देगी। श्रीकृष्णलीलाओं के तो श्रवणमात्र से ही कल्याण होता है। ये लीलायें इतनी रसमयी है कि सभी प्रकार के प्राणियों के मन को उनके कानों को, अत्यन्त ही प्यारी लगती हैं। उत्तम श्लोक भगवान् वासुदेव के गुणानुवाद केवल पशुघ्न -आत्मघाती-वधिक प्रकृति के लोगों को छोडकर सभी को अच्छे लगते हैं। हतभागियों को छोडकर और ऐसा कौन-सा सहृदय प्राणी होगा, जो उनसे विमुख होगा। श्रीकृष्ण की लीलाएं वैसे तो सभी को प्रिय हैं, वे सभी के आत्मा हैं, किन्तु मेरा तो उनसे विशेष सम्बन्ध है, वे मेरे तो कुल-उद्धारक हैं। मेरे पितामह तो उन्ही के पाद-पद्मों की नौका बनाकर महाभारत रूप समुद्र को ही नही तर गये, इस अपार संसार सागर को भी सहज में ही पार कर गये। आप ही सोचिये भगवन् ! महाभारत कोई साधारण समर थोड़े ही था ! वह अगाध अपार सागर के समान था, जिसमे समस्त विश्व को निगलने की शक्ति रखने वाले भीष्म द्रोण आदि तो तिमि, तिमिङ्गिल, तिमङ्गिलङ्गिल महामत्स्यों के समान थे। इन महारथियो के नाम से इन्द्रादि देव थर-थर काँपते थे। उस समुद्र को मेरे धर्मराज आदि पितामह श्रीकृष्णचरणरूप नौका को पकडकर गोवत्स के खुर के समान लाँघ गये। उन्हें उसमे चढ़ना तक नही पड़ा।"

श्रीशुक बोले—"राजन् ! इतने दूर के सम्बन्ध को कौन

माया मनुष्य माधव की मनोहर, मधुर तथा मधुमय लीलाओ का आप अब वर्णन करे । मेरी कुछ शकाये है, प्रथम उनका समाधान करे, साथ ही श्रीकृष्णचरित का भी वर्णन करे । इस सम्बन्ध मे मैं कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ ।'

श्रीशुकदेवजी बोले—'राजन् ! पहले आप अपनी शकाओ को कीजिये, फिर जो-जो प्रश्न आपको करने हो, वे प्रश्न कीजिये और कुछ जलपान भी कर लीजिये; क्योंकि भूख मे कथा भली भाँति समझी नही जाती । ससार मे सब से बडा कष्ट है वृद्धावस्था का । वृद्धावस्था मे इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है विषयो की भोगने की वासना बनी ही रहती है । यही नही, वह और प्रबल हो जाती है । इन्द्रियाँ भोगो को भोगने मे समर्थ नही होती शरीर-सम्बन्धी आवश्यक कार्य भी नही किये जा सकते । घर वाले भलीभाँति बोलते भी नहीं, सभी घृणा करते हैं । जीवित ही नरक हो जाता है । वृद्धावस्था से भी अधिक कष्ट पुत्र की मृत्यु पर होता है । पुत्र-मृत्यु से बढकर ससार मे कोई दुःख नही । उससे भी बडा दुःख बुभुक्षा का कष्ट है । भूख में मनुष्य सब कुछ भूल जाता है । इस विषय मे एक उपाख्यान है ।

धृतराष्ट्र के जब सौ पुत्र मर गये, तब उन सब के शव एक बेर वृक्ष के नीचे धर्मराज की आज्ञा से एकत्रित किये गये । माता गान्धारी अपने पुत्रो की मृत्यु पर रो रही थी वह श्रीकृष्ण भगवान् को कोस रही थी, कि इन्होने मेरे पुत्रो को मरवा दिया है । ये चाहते तो मेरे पुत्र न मरते ।' उसी समय भगवान् की माया से उसे भूख लगी । इतनी भूख लगी कि उससे रहा नही गया । वहाँ घोर अरण्य मे खाने को क्या रखा था ? पुत्रो के मृतक शरीर सड रहे थे, उनसे दुर्गन्ध निकल रही थी । गान्धारी भूख से

व्याकुल थी। संयोग की बात ! और कोई समीप था नहीं। उसने तनिक पट्टी हटाकर देखा, तो उस बेर के वृक्ष पर पके हुए बेर लग रहे हैं। खड़े होकर उसने बेर तोड़ना चाहा, हाथ पहुँचा नहीं कुछ कसर रह गई। माता ने सोचा— ये लड़के तो अब मर ही गये हैं। ये अब जीवित तो हो ही नहीं सकते। क्यों न दो-चार शवों को रखकर उनके ऊपर चढ़कर बेरों को तोड़ लूँ और अपनी प्रबल बुभुक्षा को शान्त कर लूँ।' यह सोचकर उसने ऐसा ही किया। फिर भी हाथ नहीं पहुँचा। क्रमशः उसने सभी पुत्रों के शव को रखकर बेर तोड़ने का प्रयत्न किया। इतने ही में श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे और बोले— बूआजी क्या कर रही हैं ? आप इतना कष्ट क्यों करती हैं ? कहें तो मैं बेर तोड़ दूँ।"

यह सुनकर गान्धारी लज्जित हुई और बोली—'भगवन् ! आपकी माया विचित्र है। कोई इसका पार नहीं पा सकता। सो, राजन् ! आपको भूख का कष्ट हो रहा होगा। पहिले कुछ खा लें, तब मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा।'

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह सुनकर राजा परीक्षित गम्भीर हो गये और श्रीकृष्ण-चरित सम्बन्धी प्रश्न करने लगे।

छप्पय

तनय रोहिणी देव ! प्रथम बलदेव बताये।
मातुदेवकी पुत्र आठ महँ फेरि गिनाये॥
एक देह तैं द्वै उदरनि महँ जनमे कैसे।
कहँ शेष की कथा भये संकर्षण जैसे॥
घर तजि व्रज महँ दुबकि के बसे अहीरनि वंश क्यौं।
क्यौं भागे रन छोड़ि के, मारे मामा कंस क्यौं॥

महाराज परीक्षित की कथा श्रवण में उत्सुकता

[८१४]

नैपातिदु.सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १ अ०, १३ श्लो०)

छप्पय

नन्द यशोदा त्यागि फेरि क्यौं मथुरा आये?
क्यौं मथुरा तें बन्धु द्वारका लाइ बसाये?
क्यौं अति मधुमय चरित गोप गोपिनिहिँ दिखाये?
क्यौं ब्रज महँ नहिँ लौटि यशोदानन्दन आये?
ब्रज मथुरा अरु द्वारका, महँ जो लीला करी हरि।
पावन परम प्रसङ्ग प्रभु! मोहि सुनावहि कृपा करि॥

जीवन तो ससार मे उनका ही धन्य है, जिनकी रुचि निरन्तर भक्त और भगवान् की कथाओ के श्रवण मे बनी रहती है। अन्य कथायें सब निस्सार हैं। ससारी लोगो के सम्मुख तीन ही कथायें हैं कामिनी, काचन और कीर्ति। इन्ही की प्राप्ति के लिये परनिन्दा, परस्तुति, राग द्वेष कलह, दम्भ, छल, कपट, हिंसा,

---

* महाराज परीक्षित श्रीशुकदेवजी से कह रहे हैं—"प्रभो!, मैंने अन्न और जल का परित्याग कर दिया है, फिर भी मुझे यह दुस्सह क्षुधा पिपासा बाधा नही दे रही है। कारण कि आपके मुख कमल से निकले हरि कथा रूप अमृतका जो मैं पान कर रहा हूँ।"

मात्सर्य, ईर्ष्या आदि मे निमग्न बने रहते हैं। इसमे वे इस लोक को भी बिगाड़ते हैं, परलोक को भी नष्ट करते हैं। उसने ऐसा किया, वह ऐसा है, वह वैसा है। इन कथाओ मे क्या सार है? इनके श्रवण से चित्त मे ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ आदि दुर्गुण ही आते हैं। जिनका चित्त भक्त और भगवान् के चिन्मय चरित्रो के चिन्तन मे ही निमग्न रहता है, जिनके कर्णकुहर कभी कृष्ण-कथा-श्रवण से भरते नही, जिनकी वाणी वनवारी की विरुदावली गाते-गाते थकती नही, उन्होने अपने दोनो लोको को बना लिया। वे इस लोक मे पर-चर्चा रूपी दावाग्नि से बचकर सुख का अनुभव करते हैं और परलोक मे जाकर प्रभु के नित्य पार्षद बन जाते हैं। भागवती कथाओं के श्रवण मे रुचि साधन से नही होती, भाग्य से होती है, भगवान् की कृपा से ही होती है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! जब भगवान् शुक ने राजा परीक्षित से प्रश्न करने को कहा और कुछ जलपान करने की भी सम्मति दी तब हाथ जोडकर बडी नम्रता से महाराज परीक्षित कहने लगे—'भगवन्! आज चार दिन से मैं आपके श्रीमुख से हरि कथा-रूप अमृतरस का पान करके सभी सांसरिक धर्मों को भूल गया हूँ। प्रभो! यह हरिकथामृत तो दिव्य अप्राकृत रस है। इसके सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या! लोग प्राकृत विषयो मे इतने तन्मय हो जाते है कि उन्हे शरीर की सब सुधबुध भूल जाती है। घर मे बेटा बेटी का विवाह हो, तो लोग रात्रि-दिन एक कर देते हैं, न उन्हे भोजन की सुधि रहती है, न शयन की। लोग किसी कर्णप्रिय राग को सुनकर ऐसे तन्मय हो जाते है कि खाना पीना सब भूल जाते हैं। मनुष्यो की तो बात ही क्या, हरिण, सर्प जैसे पशु गायन सुनकर तन्मय हो जाते हैं। वधिक उन्हे उसी तन्मयता की अवस्था मे मार देते है। जार पुरुष अपनी

प्रियतमा के प्रेम मे इतने आत्म-विस्मृत हो जाते हैं कि उन्हें अपने प्राणों का भी मोह नही रहता। कोई पुरुष अपनी प्रियतमा को अत्यधिक प्यार करता था। उसकी पत्नी अपने पिता के घर गई थी। उसके पिता का घर सरिता के उस पार था। रात्रि मे उससे नही रहा गया। भादो की महा नदी प्रबल वेग से बह रही थी, उसी मे वह कूद पडा और एक शव के सहारे उस पार पहुँचा। ससुराल मे जाकर ऊपर देखा कि एक सर्प लटक रहा है। उसे ही पकडकर वह ऊपर छत पर चढ गया। भगवन्! जब ससारी विषयों मे इतनी तन्मयता है, इतनी आत्मविस्मृति है, तो आप तो अप्राकृत रस पान करा रहे है। ऐसी ही एक कथा किसी नायिका की है। वर्षा की अन्धेरी मे अर्धरात्रि के समय किसी घोर वन मे वह अपने जार पति से मिलने जा रही थी। मार्ग मे उसे योगाभ्यास करते हुए एक महात्मा मिले। वे शवासन पर लेटकर ध्यान कर रहे थे। वह स्त्री उनकी छाती पर पैर रख कर निकल गई। मुनि को बडा क्रोध आया। वे स्पर्श से ही समझ गये, किसी स्त्री का पैर है। क्रोध मे भरकर उन्होंने उस पर एक डण्डा जमा दिया। उसने फिर कर साधु को देखा भी नही, अपने उपपति के समीप चली गई।

कुछ काल मे वह उनसे मिलकर, कुछ रात्रि शेष रहने पर, उसी मार्ग से लौट कर आई। साधु ने कहा—"क्यो री दुष्टे! तू मेरी छाती पर पर रखकर निकल गई थी?"

हाथ जोडकर वह बोली—"भगवन्! मुझे तो स्मरण भी नही। कब की बात आप कह रहे हैं?"

क्रुद्ध होकर मुनि बोले—"क्या बात बनाती है? तुझे इतना भी पता नहीं? मैने तो तुझे एक डण्डा कस कर मारा था।"

उस स्त्री ने कहा—"नहीं, मैं सत्य कहती हूँ भगवन्! मुझे

कुछ भी पता नही, कब मैं आपके ऊपर होकर गई और कब आपने मुझे डण्डा मारा।"

इस पर साधु बोले—'हाँ, तुझे क्या पता होगा? तू तो मतवाली हो रही थी। स्वैरिणी कही की।"

स्त्री बोली—"महाराज! अपराध क्षमा हो, आप जिसके प्रेम मे मग्न होकर ध्यान कर रहे थे, उससे तो बढकर मेरा ही प्रेम था। मुझे तो अभी तक पता नही, कब मै आपके ऊपर से निकली, कब आपने मुझे डडा मारा। आपका प्रेम बनावटी है।" साधु यह सुनकर लज्जित हुए और उन्होने स्वीकार किया, मेरा मन अपने प्रेमी मे नही लगा था।

महाराज परीक्षित कह रहे है—"प्रभो! जब ससार मे लोगो को अनुकूल विषय सुख पाकर देहानुसधान नही रहता, तब मुझे तो आप दिव्यातिदिव्य मधुरातिमधुर अमृत पिला रहे है, जिसमे शरीर-धर्मों का कोई अथ नही। ससारी स्त्री-पुरुष जब बैठकर सम्पूर्ण रात्रि प्रेम की बातें कहते कहते बिता देते हैं और पलभर भी नही सोते, तब आप तो परमपुरुष की कथा सुधा मेरे कर्ण-कुहरो मे उँडेल रहे हैं। आपने जो क्षुधा पिपासा को दुस्सह बताया, उसे मै स्वीकार करता हूँ, किन्तु इस समय कृष्ण कथा सुनते-सुनते मुझे भूख प्यास का कुछ भी कष्ट नही है। कृपा करके आप मेरी शकाओ का समाधान करें, मेरे प्रश्नो का उत्तर दें।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीशुकदेवजी बोले—"अच्छी बात है राजन्! पूछिये आपके क्या प्रश्न है। कौन कौन सी आपको शकाये हैं?"

महाराज परीक्षित ने कहा—महाराज सर्वप्रथम तो मुझे यही शका है कि शूर वश का वर्णन करते हुए आपने वसुदेवजी

की तेईस पत्नियो के तथा उनकी सन्तानो के नाम गिनाये। उनमे रोहिणीजी के पुत्रो मे भी बलरामजी की गणना की और देवकी के पुत्रो मे भी उन्हे सातवाँ पुत्र बताया। एक ही बलराम जी, एक ही शरीर से दो माताओ के उदर से कैसे उत्पन्न हुए? यदि दूसरे जन्म की बात होती या दो देह रख लेते, तब तो यह समझ भी था। वे एक देह से एक साथ दो माताओ के उदर में कैसे रहे? मेरी एक तो यह शका है। दूसरी यह है, कि जब श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् थे, तब व अपने पिता के घर को छोडकर छिपकर जाकर व्रज मे क्या बसे? क्यो उन्होने माता-पिता का परित्याग किया?

इन शकाओ के अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के सभी चरित्रो को सुनाइये। उन यादवेन्द्र ने अपने बन्धुओ तथा कुल के लोगो के सहित कहाँ-कहाँ निवास किया? भगवान् ने व्रज मे रहकर गोष्ठ मे, वनो मे तथा निकुञ्जो मे कौन-कौन सी लीलाये की? वे व्रज से पुन. मथुराजी क्यो गये? वहाँ उन्होने क्या-क्या किया? कस तो उनके मामा थे, न मारने योग्य अपने माम को उन्होने क्यो मारा? आप ही सोच, अपनी माता का भाई कैसा भी क्यो न हो, उसका भानजे के द्वारा वध क्या उचित कह जा सकता है? भानजा तो मामा को पिता से भी अधिक प्या करता है, मामा को देखकर उछल पडता है। पिता तो कभी पु को मार भी देता है, किन्तु मामा तो भानजे को डाँटता भं नही। मान लो मामा क्रूर भी हो, तो भानजे को चाहिये, उसवे घर न जाय। उसे मारना तो पितृ-वध के समान है। माम को माधव ने क्यो मारा, इसका कारण बताकर यह भी बता कि मथुरा मे रहकर उन्होने और कौन-कौन-सी लीलायें की मथुरा का परित्याग करके वे द्वारका क्यो गये? जरासन्ध

भय से भागकर उन्होंने साधारण मानवीय लीला क्यो की ? वे मनुष्य-देह धारण करके यादवो के साथ कितने दिनो तक द्वारावती मे रहे ? द्वारकापुरी मे रहकर उन्होंने कौन-कौन सी लीलायें की ? उनके कितनी पत्नियाँ थी, कितने पुत्र हुए ? इन सब बातो को आप विस्तार मे सुनाने की कृपा करें।''

शुकदेवजी बोले—'राजन् ! आपने तो एक साथ ही इतने प्रश्न कर डाले। मैं तो इतने प्रश्नो को भूल भी जा सकता हूँ। फिर इन सब बातो का यथार्थ उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? ये सब भगवान् की भूतकाल की लीलायें हैं।'

इस पर हँसते हुए राजा बोले—'भगवन् ! आप मुझे बहकावें नही। भगवान् की लीलाओं मे कभी भूत भविष्य, का भेद भाव होता है क्या ? ये लीलायें तो नित्य है सदा सर्वदा होती ही रहती हैं। हम अल्पज्ञ प्राणी उन्हे इन चर्म-चक्षुओ से भले ही न देख सकें, किन्तु प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ है, सर्वविद हैं त्रिकालदर्शी हैं। आपके सम्मुख तो सभी घटनायें हाथ मे रखे आँवले के सदृश प्रत्यक्ष है। ऐसी कौन-सी बात है, जो आपसे छिपी हो ? मैंने जो इतने प्रश्न किये हैं, उससे आप यह न समझ लें कि इतने ही प्रश्नो का उत्तर देना है। यह तो मैंने केवल सकेत मात्र कर दिया है। जो बात मैंने न पूछी हो, उसे भी कहे, जिन-जिन लीलाओ का आप उचित समझें, उन्हें भी कहे। भगवान् की तो सभी लीलाय उचित ही है। उन सब का पार कोई पा नही सकता, मेरे जीवन की अवधि को दृष्टि मे रखकर, फिर आप मेरी योग्यता देखकर, सभी लीलाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।''

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब महाराज परीक्षित ने मेरे गुरुदेव के सम्मुख अत्यन्त भक्तिभाव तथा श्रद्धा-सहित ये प्रश्न

किये, तब भगवतरस के सर्वश्रेष्ठ रसिक परम भागवत भगवान् शुकने राजा की प्रशंसा की, उनके प्रश्नों की सराहना की, तदन्तर स्वस्थ चित्त होकर गद्‌गद् कंठ से, प्रेमाश्रुओं से अपने गोल-गोल कपोलों को भिगोते हुए, कलि के कल्मषों को काटने वाले कृष्ण चरित्रों का वर्णन करने के लिये उद्यत हुए।"

छप्पय

सुनत परीक्षित प्रश्न महामुनि शुक हरषाये।
तनु अति पुलकित भयो अश्रु नयननि महँ छाये॥
अति उत्कण्ठित चित्त नृपति की करें प्रशंसा।
धन्य-धन्य अभिमन्यु-तनय कुरु कुल अवतंसा॥
सफल जनम भूपति भयो, कृष्ण-चरन महँ भई रति।
अन्त समय हरि-कथा महँ, उमग्यो अस अनुराग अति॥

श्रीशुक द्वारा परीक्षित-प्रश्नों की प्रशंसा

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥*
(श्री भा० १० स्क० १ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

राजन् ! हरि की कथा गङ्ग-सम सब कूँ तारे।
जो पूछै जो सुनै प्रेम तें जो उच्चारे॥
मज्जन दरशन परश बालु मिट्टी अथवा जल।
नाम, श्रवण-गुण-कथन सबहिं मेटैं मन के मल॥
अथवा नियमित देश महँ, ही श्री गङ्गाजी बहहिं।
किन्तु कथा मन्दाकिनी, नर सबई थल पै लहहिं॥

सुख दुख सम्बन्ध स होता है। जो जितने ही महान होंगे, उनके सम्बन्ध से उतना ही महत्ता होगी, अत महत्पुरुषो से कैसे भी सम्बन्ध क्यो न हो जाय, उसका परिणाम सुखद ही होगा। जिसके शरीर मे सुगन्धित द्रव्य लगे हैं, वह जहाँ बैठ जाय, वहाँ के लोगो की इच्छा न होने पर भी उन्हे सुगन्धि प्राप्त होगी। गध की दूकान के सम्मुख होकर निकलने पर ही सुगन्धि आ जायगी। भगवान्नाम कीर्तन जहाँ हो रहा हो, वहाँ जाने से, दूर से सुनने

---

* "श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् वासुदेव की कथा का प्रश्न, कहने वाले, पूछने वाले और सुनने वाले– इन तीनो को पवित्र करता है, जैसे भगवान् का पादोदक गङ्गा-जल समस्त पुरुषों को पवित्र कर देता है।"

अथवा अनुकरण करने से भी जिस प्रकार कल्याण ही होता है, उसी प्रकार कृष्ण कथा से कैसे भी, किसी प्रकार भी, प्राणी का सम्बन्ध हो जाय, तो वह तर ही जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब महाराज परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से भगवान् की कथा के सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न किये, तब उनकी प्रशंसा करते हुए श्रीशुक बोले—"हे राजर्षि श्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम्हारे माता-पिता धन्य हुए, तुम्हारा पावन कुल आज परम पावन हुआ, जिसमें तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न हुए। राजन्! जो बुद्धि वनवारी के विषय में विचार करती है, वही बुद्धि श्रेष्ठ है। वही वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति है, जिसने कृष्ण कथा श्रवण करने का निश्चय कर लिया हो। मृत्यु के समय अत्यन्त भाग्यशाली पुरुषों की ही श्रीकृष्ण कथा में अभिरुचि होती है। अपने भगवान् की कथा का प्रश्न करके अपने को ही पावन नहीं बनाया, मुझे भी पावन बना दिया। इन सुनने वाले समस्त श्रोताओं को भी कृतकृत्य कर दिया। जैसे जाड़े में एक ही आदमी ईंधन लाकर अग्नि को जलाता है, एक के जलाने से आस-पास के सभी लोगों का शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे भगवान् की कथा-सम्बन्धी प्रश्न करने से पूछने वाले, कहने वाले और सुनाने वाले—"सभी तर जाते है, जैसे भगवान् के चरणों का जल तीनों को तारता है।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी भगवान् के चरण का जल, तीनो मे किसको तारता है, इसे स्पष्ट करें।"

सूतजी बोले—"महाराज! मेरे गुरुदेव कहीं-कहीं ऐसी सूक्ष्म बात कह देते हैं कि उसकी व्याख्या करें, तो चाहे जितने अर्थ लगा लो, फिर भी यह नहीं कह सकते, इसका यही अभिप्राय

है। उन्होंने इतना ही कहा कि भगवान् की कथा-वार्ता वक्ता, श्रोता और प्रश्नकर्ता—तीनों को ही पवित्र कर देती है, जैसे भगवान् का चरणोदक। अब भगवान् का चरणोदक एक तो साक्षात् गङ्गाजी ही है, दूसरा शालग्राम आदि के भगवद्-विग्रह स्नान कराने से जो तीर्थ होता है, वह भी चरणोदक होता है। ये दोनो ही तीनो को तार देते हैं। इन तीनो के बहुत अर्थ हैं।"

शौनकजी बोले—'कुछ तो सुनाइये सूतजी ! कथा की और गङ्गाजल की उपमा तो अनूठी है। कथा के विषय में तो समझ लिया कि श्रोता, वक्ता और प्रश्नकर्ता–इन तीनों को तारती है। अब गगाजी के सम्बन्ध मे सुनाइये, वे किन्हें तारती हैं।"

सूतजी बोले—'सुनिये महाराज ! गगाजी ने तीनो को तार दिया कमण्डलु में रखने वाले ब्रह्माजी को, सिर पर धारण करने वाले शिवजी को और पृथ्वी पर लाने वाले भगीरथजी को, अथवा पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग—तीनो लोको को उन्होने अपनी तीन धाराओं से तार दिया। अथवा जन्हु के कुल को, भगीरथ के कुल को और हिमालय के कुल को-इन तीनों कुलों को तार दिया, अथवा महाराज प्रदीप को, शन्तनु को और भीष्म को-इन तीनो को तार दिया, अथवा गंगाजी स्नान करने वाले, दर्शन करने वाले तथा आचमन करने वाले–तीनों को ही तार देती है। अथवा दूरसे गंगा-गंगा कीर्तन करने वाले, गङ्गाजी को जायँगे, ऐसे ध्यान करने वाले और मरने पर हड्डी पड़ने वाले, गगाजी तक आने में असमर्थ लोगों को भी गंगा तार देती है। अथवा गगाजी के किनारे रहने वाले उन्ही का जल पान करने वाले, उन्ही के तट पर जीवन भर रहकर मरने वालों को तार देती हैं। अथवा गङ्गाजी में स्नान करने वालों के मातृकुल, पितृकुल तथा अपने निज कुल के तीनो वंशो को गंगा तार देती हैं। अथवा गंगाजी सात्त्विक प्रकृति

वाले, रजोगुण और तमोगुण प्रकृति वाले—सभी प्रकार के लोगों को तार देती है, अथवा स्नान करने वाले के तीनों गुणों को नष्ट कर के उसे निस्त्रैगुण्य बना देती है। अथवा गङ्गाजी स्त्री, पुरुष, नपुसक—सभी को परमपद तक पहुँचा देती हैं। अथवा भगवान् का चरणोदक स्नान कराने वाले, करने वाले और उसका पान करने वाले—तीनो को पवित्र बनाता है। अब कहाँ तक अर्थ करूँ। आप सक्षेप में यही समझे कि गङ्गाजी का जिस प्रकार भी सम्बन्ध हो जाय, साक्षात् न हो, परम्परा से हो जाय, तो भी वह प्राणियो को पवित्र करती हैं। जो गङ्गाजी के किनारे रहते हैं, गङ्गा स्नान करते हैं, उनके पुण्यो के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या! जो दूर से गङ्गा-गङ्गा नाम लेते हैं, वे भी तर जाते हैं। इस विषय के पुराणो मे अनेक दृष्टान्त हैं, उनमे से कुछ मैं यहाँ बताता हूँ। इससे आप समझेंगे कि विष्णु-पादोदक की कितनी महिमा है।

एक राजा थे अत्यन्त ही क्रूर, दुराचारी, दंभी पापी और नीच प्रकृति के। वैसी ही उनकी रानी थी। मरने पर यम के दूत उन्हे यमराज के यहाँ ले गये। यमराज ने अपने लिखिया चित्रगुप्त को बुलाकर पूछा— 'इनका कोई पुण्य है?" लिखिया महाशय ने अपनी बहुत सी बहियो को उलट-पुलट कर देखा और कहा—"प्रभो! इन्होने तो जीवन-भर पाप ही पाप किया है। कभी गङ्गाजी के दर्शन भी नही किये।" यमराज ने क्रोध मे भरकर कहा—"इन्हे नरको मे डाल दो।"

यमराज की आज्ञा पाकर वे नरको मे पचते रहे। अन्त मे राजा मेढक हुए और रानी मेढकी। किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हे पुरानी सभी बातें स्मरण बनी रही। किसी सन्त से उन्होने गङ्गाजी की महिमा सुनी। दोनों ने बड़े उत्साह से

निश्चय किया कि "हम गङ्गाजी चले गे।" ऐसा निश्चय करके वे चल दिये। उनके मार्ग मे एक सर्प देवता मिले। वे दोनो को खा गये। मरते समय उन्होने गगा-गगा कहा। इसी से वे स्वर्ग गये। वहाँ स्वर्ग के सुखो को भोगते हुए अन्त मे वे वैकुण्ठलोक मे चले गये। यह तो गगाजी के नाम स्मरण का माहात्म हुआ।

अब गगाजल के स्पर्श का भी माहात्म्य सुनिये। एक बडा ही दुराचारी क्रूर ब्राह्मण था। वह ससार मे जितने पाप कर्म हैं, सभी को करता था। अन्त मे उस दुष्ट को किसी ने मार डाला। मरकर वह विन्ध्य पवत के समीप भूत हो गया। वह भूख प्यास से दुखी होकर एक शमी वृक्ष पर रहने लगा। एक दिन एक सदाचारी ब्राह्मण तीर्थराज प्रयाग से स्नान करके जा रहा था। दैवयोग से वह थक कर उस शमी वृक्ष के नाचे बैठ गया। भूत भूख-प्यास से दुखी होकर रोने लगा। ब्राह्मण ने समझ लिया, यह कोई दुष्कृत पुरुष है, अपने पापकर्मों से यह भूत हो गया है। उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर उन्हे उस पर दया आ गई। उनके पास कावर मे गगाजल था। उन्होने गगाजल लेकर उसके ऊपर छिड़क दिया। गगाजल के स्पर्श होते ही वह तुरन्त प्रेतयोनि से छूट गया। उसी समय स्वर्ग से विमान आया और वह दिव्य रूप रखकर ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके स्वर्गलाक को चला गया। बहुत दिनो तक स्वर्गीय भोग भोगकर वह एक सदाचारी ब्राह्मण के कुल मे उत्पन्न हुआ। उसे गंगा जी की महिमा स्मरण था। अत: वह घर छोडकर गगाजी के किनारे आकर बस गया और वही भगवान् का भजन करता हुआ, अन्त मे वैकुण्ठवासी हुआ। यह गगा जल के स्पर्श का माहात्म्य हुआ। अब गगाजी के स्नान का माहात्म्य सुनिये।

दक्षिण देश मे एक बहुत ही रूपवती वेश्या थी। उसने बड़े-

बडे धनिकों के पुत्रों को भ्रष्ट किया था। रात्रि-दिन व्यभिचार सुरापान और मांस आदि के भक्षण मे ही उसका समय व्यतीत होता था। एक बार उसे बड़े वेग से ज्वर आया। उसके शरीर मे फोडे हो गये। पकी हुई देह से दुर्गन्ध आने लगी, नौकर-चाकर धन लेकर भाग गये। जो उसके रूप पर मरते थे, वे अब उसके पास भी नही फटकते थे उसे कोई पानी देने वाला भी नही था। अत्यन्त दुःख मे वह तडप रही थी। उसी समय कोई दयालु मुनि उसके समीप आये और बोले—"तू गगा-गगा कह। दुःखी तो वह थी ही गगा गगा कहने लगी। गंगाजी की कृपा से उसका दुःख दूर होने लगा। उसे कुछ चेत हुआ। जब वह चलने योग्य हुई, तो शनैः-शनैः अपना घर छोडकर चल दी। लोग पूछते "कहाँ जा रही हो ?" वह रोकर कहती, मैं गगाजी जा रही हूँ।' अब उसका शरीर अच्छा हो गया। मार्ग मे जो भी कुछ मिल जाता उसे वह खा लती। कुछ न मिलता तो वह भूखी ही रह जाती। इस प्रकार गंगा जी के नाम का कीर्तन करती हुई वह बहुत दिनो मे प्रयागराज आ पहुँची। आकर उसने भक्ति भाव से त्रिवेणी मे स्नान किया। स्नान करते ही गंगा जी मे उसका शरीर छूट गया। तुरन्त ही विमान आया और वह ब्रह्मलोक मे जाकर दिव्य अप्सरा हो गई। यह गगा स्नान का फल हुआ। अब गगाजी मे अस्थि पडने का जो माहात्म्य है, उसे श्रवण कीजिये।

स्वर्ग में एक पद्मगन्धा नामकी बड़ी ही सुन्दरी अप्सरा थी। उसे अपने रूप यौवन का अत्यन्त ही गर्व था। वह बडी मानिनी, रतिप्रिया और मोहक थी। इन्द्र उसके ऊपर अत्यधिक अनुरक्त थे। एक दिन इन्द्र एकान्त में उसके साथ थे। उसी समय सोलहो शृंगार करके इन्द्राणी शची वहाँ आईं। वे देखकर भौचक्की रह

गई। तीनों लोकों के राजा समस्त देवताओं के स्वामी शत-क्रतु इन्द्र उस पद्मगन्धा अप्सरा के चरणों में बैठे उसके तलवों को सुहला रहे हैं और उन स्वर्ण के पात्रों में लपेटे पान खिला रहे हैं। यह देखकर शची ने अपने पति देवेन्द्र को घुड़का और कहा—'प्राणनाथ! आप तीनों लोकों के स्वामी होकर भी यह कैसा अन्याय कर रहे हैं। बड़े बड़े देवता ऋषि महर्षि आकर, आपके चरणों में अपना सिर रखते हैं। आप इस क्षुद्र अप्सरा की चरण सेवा कर रहे हैं। यह बहुत ही अनुचित कार्य है। इस कुलटा को लज्जा भी नहीं आती, जो आप से ऐसी सेवा ले रही है। इस दुष्टा को अपने रूप-यौवन का बड़ा गर्व है। यह दासी होकर भी मेरी शैय्या पर शयन कर रही है।"

यह सुनकर पद्मगन्धा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वह शची को झिड़ककर सिंहनी की तरह गरजकर बोली—"चल, हट। आई कहीं की स्वामिनी बनकर! तू भी देवेन्द्र की दासी है, मैं भी हूँ। मुझमें और तुझमें क्या अन्तर? तूने कुछ महाराज को मोल तो ले ही नहीं लिया है? वे मुझसे प्यार करते हैं तो तेरे हृदय में क्यों शूल चुभते हैं? तू ईर्ष्या के कारण क्यों मरी जाती है? तेरे शरीर में अग्नि क्यों लग रही है? मुझ से सुरेन्द्र प्यार करते हैं, मैं उनसे चाहे जो कराऊँगी। तुझे मैंने मना तो किया ही नहीं तू भी करा सकती हो, तो करा! मैं लल्लो-चप्पो की बातें नहीं जानती। यदि तू ही महाराज पर अपना अधिकार समझती है, तो ले मैं चली।" यह कहकर वह क्रुद्ध सर्पिणी के समान फुफकार छोड़ती हुई वहाँ से जाने लगी। देवेन्द्र तो उसके अधीन हो गये थे, वे तो पल भर भी उसका वियोग नहीं सह सकते थे, अतः उन्होंने दौड़कर पद्मगन्धा के पैर पकड़ लिये और दीनता दिखाते हुए बोले—'प्राणेश्वरी! तुम उसकी बातों

पर ध्यान न दो, मुझ दीन हीन की ओर निहारो। मैंने तो तुम्हारे प्रति कोई अपराध नहीं किया। मैं शची को अभी निकालता हूँ, तुम शयनागार से बाहर मत जाओ।" यह कहकर इन्द्र उसकी नाना प्रकार की अनुनय-विनय करने लगे और जैसे तैसे उसे मनाकर लौटा लाये।

शची रानी यह सब दृश्य देख रही थी। उन्होंने व्यङ्ग के स्वर मे कहा—"अरे, पापिनी क्रौंची! और तू भोग ले कुछ दिन इस सौभाग्य को। अन्त मे तो तेरा पतन अनिवार्य ही है।" यह कह कर शची लौटकर अपने महलो मे चली गईं।

यह बात सुनकर पद्मगन्धा को बडी चिन्ता हुई। उसका समस्त रूप-यौवन का मद उतर गया, ईर्ष्या जाती रही। देवेन्द्र से आज्ञा लेकर वह अकेले ही शची के महलो मे गई और उनके पैर पकडकर बोली—"जीजी! तुम कृपा करके मुझे यह बताओ कि तुमने मुझे क्रौंची क्यो कहा।

यह सुनकर शची रानी का भी क्रोध जाता रहा। वह बोली—"बहन! यहाँ की हम सभी अप्सरायें किसी बड़े पुण्य के कारण ही पृथ्वी मे आकर स्वर्ग मे देवाङ्गनायें बनी है। तू पूर्व जन्म मे एक क्रौंच पक्षी की स्त्री क्रौंची थी, मांस खाती थी और वृक्ष कोटर मे निवास करती थी। एक महत्पुण्य के प्रभाव से तुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमे तेरे रूप पर मुग्ध हो कर देवेन्द्र मेरा भी तिरस्कार करते हैं।"

पद्मगन्धा बोली—"जीजी! मैं किस पुण्य के प्रभाव से इतनी सुन्दरी अप्सरा हुई हूँ, कृपा करके मुझे बता दें।"

शची बोली—"तेरा इतना ही पुण्य है, कि जिस वृक्ष के कोटर में रहती थी, वह गंगा तट पर था। गगाजी की पवित्र वायु तुझे लगती थी, वह गगाजल का पान करती थी। एक दिन

एक सर्प तेरे कोटर मे घुस आया। उसने तुझे डँस लिया, तेरे मास को खा गया। पतली-पतली हड्डियाँ तेरी गगाजी मे गिर गई। वे पक्षी की पतली हड्डियाँ जब तक गगाजी मे रहेगी, तब तक तू स्वर्ग मे ऐसा ही ऐश्वर्य भोगेगी। जहाँ वे गल गई, कि फिर तू मर्त्यलोक मे चली जायगी। अब वे तेरी हड्डियाँ गलने ही वाली है।'

यह सुनकर पद्मगन्धा को बडा सोच हुआ। उसने कुछ कहा नही। वह अन्यमनस्क भाव से इन्द्र के साथ रमण करने लगी। एक दिन देवेन्द्र ने कहा—'प्रिये! आजकल तुम बडी उदास रहती हो, मुझे इसका कारण बताओ।

उसने कहा—"कुछ नही, वैसे ही मेरा मन ऐसा हो गया है।"

देवेन्द्र ने कहा—'देखो मैं तुम्हारे मुख कमल को म्लान देखना नही चाहता। तुम जो भी चाहोगी, वही मैं तुम्हें दूँगा। तुम मुझसे इच्छानुसार वरदान माँग लो।"

पद्मगन्धा ने कहा—' सत्य कहते हो पीछे नटोगे तो नही?'

यह सुनकर इन्द्र ने तीन बार कहा—सत्य कहता हूँ सत्य कहता हूँ। पुन पुन सत्य कहता हूँ। तुम मुझसे जो भी माँगोगी वही तुम्हे मै दूँगा।'

पद्मगन्धा ने कहा—"अच्छा यदि आप प्रसन्न है, तो अबके मेरा जन्म पृथ्वी पर गगा-किनारे हथिनी का हो।"

देवेन्द्र न कहा—'यह तुमने क्या वरदान माँगा? मैं तो तुम्हारे बिना पलभर भी नही रह सकता।

पद्मगन्धा ने कहा—'देव! मुझे कुछ दिन हथिनी-योनि मे रहने दीजिये, पुन मैं आकर आपकी जैसे अब सेवा करती हूँ वैसे ही करूँगी। मैने हथिनी-योनि क्यो माँगी इसका पीछे बताऊँगी।"

जैसे तैसे देवेन्द्र ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। वह गगा किनारे बडे डीलडौल की हथिनी हुई। हथिनी होकर भी उसे स्वग की वे सब बाते याद थी। अब वह अपने शरीर पर यथेष्ट गगाजी की कीच लपेटती। गगाजी की कीच मन की कीच को धा देती है। उसके पय का पान मातृ पय पान से पृथक कर देता है। गगा का दर्शन ससार का दर्शन हटा देता है। उसमें भीतर बुडकी मारने म ससार मे अधोगति नही होती।

कुछ दिनो के पश्चात् हथिनी आहार छोड दिया, वह गगा जी मे खडी होकर उपवास करने लगी। उपवास करते करते वह अत्यन्त कृश हो गई और अन्त मे गगाजी के बीच ही मर गई। उस लेने स्वय देवेन्द्र आये और वह पहले से भी सहस्रो गुनी सुन्दरी हो गई। तब एक दिन प्यार से देवेन्द्र ने पूछा—"तुमने मुझम हथिनी की योनि क्यो मांगी?"

इस पर वह अप्सरा बोली—"प्रभो! जब इच्छा न रहने पर स्वाभाविक पक्षी की हड्डा गगाजी मे पडने पर मुझे इतना सोभाग्य प्राप्त हुआ था तब इच्छा पूर्वक हड्डी पडन पर न जाने कितना सौभाग्य प्राप्त हो। पक्षी को हड्डी ता कुछ दिनो नष्ट हा जाती है किन्तु हथिनो की हडडी तो चिरकाल तक रहेगी। तब तक मैं आपके साथ आनन्द-विहार करती रहूँगी। अत अपने पुण्य को सौभाग्य को, स्थाई बनाने के लिये मैंने हथिनी की योनि मांगी थी।'

यह सुनकर देवन्द्र परम प्रमुदित हुए, उस दिन से वे भी गगाजी की महिमा को भली भांति समझने लगे। यह मैंने गगा जी मे हडडी पडने का माहात्म्य बताया। अब आप विष्णु-चरणोदक का माहात्म्य श्रवण कर।

एक बडा ही हिंसक, क्रूर, परधन लोभी ब्राह्मण पृथ्वी पर

मरने पर जब उसे पकडकर यमदूत सयमनी-पति यम के समीप ले गये, तब यमराज ने नियमानुसार चित्रगुप्तजी को बुलाया और उनसे इस ब्राह्मण के पुण्य पाप का लेखा पूछा।

चित्रगुप्तजी ने तुरन्त वर्णो के क्रम से लगे हुए इसके खाते को खोला और उलट-पुलट कर बोले—प्रभो! इसने तो पाप ही पाप किया है, पुण्य तो इसका अणुमात्र भी नही है।"

तब यमराज ने कहा—'अच्छी बात है, इसे रौरवादि नरको की यातना दो।'

यमराज की आज्ञा से उसे अनेक नरको मे पकाया गया। जब उसके कुछ पाप शेष रह गये, तब उसे पृथ्वी पर काक योनि मे डाल दिया गया। काक होकर वह अखाद्य वस्तुओ को खाता हुआ अपनी आयु के दिन बिताने लगा। एक दिन वह उडता हुआ भगवान् के मन्दिर के ऊपर चला गया। उसे बहुत प्यास लग रही थी। तुलसीजी के थामरे पर भगवान् का चरणामृत रखा था। कौआ आकर तुलसी-चबूतरे पर बैठ गया और उस सम्पूर्ण चरणामृत को पी गया। चरणामृत के पान करते ही उसके प्राण पखेरू उड गये। उस समय स्वर्ग से विमान आया और वह देवता बनकर स्वर्ग को चला गया।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! भगवान् के चरणामृत का—गगाजल का कहाँ तक माहात्म्य बताऊँ। गगाजल मरते-समय प्राणियो के मुख मे पड जाय, तो पापी भी पावन हो जाते हैं। गगाजी के तट पर रहकर भी जो अन्य जल का पान करता है। उससे अभागा ससार में कौन होगा? गगाजी के तट पर रहते भी जिसका शरीर ग्राम्य श्मशान में जलाया जाय, उससे बढकर उसका दुर्भाग्य क्या होगा? गगाजल के रहते हुए भी शरीर पर अन्य उपलेप लगाता है उससे बढकर मोहग्रस्त कौन होगा

गंगाजी नहाने वालो को तो पवित्र करती ही हैं, नहाने वालों के संसर्गियों को भी पवित्र कर देती हैं। मेरे गुरुदेव ने भगवत्-कथा को गंगाजल की उपमा देकर एक अत्यन्त ही साहित्यिक चमत्कार दिखाया है। जलरूपी गंगा से बढ़कर यह कथा-रूपी गंगा है क्योंकि गंगा तो एक सीमित देश में ही रहती हैं, किन्तु, कृष्ण कथा रूपी गंगा तो सर्वत्र सुलभ हैं, जहां चाहे, वहीं इन्हें प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार राजा के प्रश्नों की प्रशंसा सुनकर मेरे गुरुदेव ने जिस प्रकार भगवान् के अवतार का कारण बताया, उस कथा को मैं आपको आगे सुनाता हूँ, आप सावधान होकर उसे श्रवण करें।"

छप्पय

अब नृप ! उत्तर देहुँ करे जो प्रश्न जगतहित।
प्रभु अवतार-निमित्त कहहुँ चित करहु समाहित॥
बाढ़े भू पै असुर वेष भूपति को धारें।
करें यथेच्छाचार साधु-गो-विप्रनि मारें॥
प्रकटे अगनित असुरगन, अवनि अधिक पीड़ित भई।
धेनु- रूप धरि दुखित है, अज चतुरानन ढिग गई॥

भगवान् के अवतार के निमित्त

[८१६]

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥*

(श्री भा० १० स्क० १ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

अश्रु विमोचन करति दुखित मन महँ पछितावति ।
कमलासन ने लखी विकल भूदेवी आवति ।
अज प्रनाम करि कहें मातु ! क्यों अश्रु बहाओ ।
निज दुख कारन जननि मोइ अविलम्ब बताओ ॥
वसुधा बोली वत्स बहु, बोझ बढ्यो भारी भई ।
सहशीलता नृप बने, असुरन मेरी हरि लई ॥

भगवान् के अवतार का कारण उनकी क्रीडा ही है। जब उन्हे अपने निज जनों को विचित्र-विचित्र लीला दिखाने की स्वय

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—' राजन् ! जब राजाओं के रूप मे अनेक उन्मत्त दैत्यगण पृथ्वी पर यथेच्छ अत्याचार करने लगे, तब उनके भार से अत्यन्त पीड़ित होकर पृथ्वी गौ का रूप रखकर, नेत्रों म अश्रु भरकर तथा खिन्न होकर करुण स्वर मे क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजी की [illegible] गई । वहाँ जाकर उसने उनको अपने कष्टों की कहानी कह [illegible]

कुछ कुतूहल करने की इच्छा होती है, वे-अवनि पर अवतरित होते हैं। साधारण जीवों की तो शक्ति ही नहीं कि उनकी ओर आँख भी उठाकर देख सकें; फिर उनके साथ विहार शय्या, आसन, भोजन, युद्धादि व्यापार कैसे कर सकते हैं ? अत: वे अपने परिकर को भी साथ लाते हैं। क्रीडा करने के पूर्व-अवतरित होने के प्रथम-वे ऐसा वायु मण्डल उत्पन्न कर देते है कि सभी उन्हे पुकारने लगें, सभी आर्त होकर उनके अवतार की प्रार्थना करने लगें। वे अपनी माया-शक्ति की प्रेरणा से तमोगुण की अभिवृद्धि कर देते है, तम-प्रधान असुरो मे प्रवेश करके उन्हें बढ़ाते है। इससे सत्त्व-प्रधान सुर घबडा जाते है, असुरो का बल बढ जाता है। प्रबल हुए असुर देवी-शक्ति को नष्ट करने लगते हैं। यदि वे विशुद्ध पापी ही हो, तब तो वे अपने पाप से ही नष्ट हो जायँ, शाप से ही भस्म हो जायं, किन्तु वे क्रूर, हिंसक, बली होने पर भी तपस्वी होते हैं, दानी तथा धर्माचरण करने वाले भी होते हैं। ऐसे लोगो पर ऋषि मुनियो का तेज भी काम नहीं आता, उनके लिये तो सत्त्वमूर्ति भगवान् को ही अवतरित होना पडता है। पहले वे तमोगुण मे प्रवेश करके उसे बढा रहे थे, अब सत्त्वमूर्ति रखकर उसका नाश करते हैं। वे जब जैसा काल देखते हैं, तब तैसे ही गुण मे प्रवेश करके उसे बढा देते हैं। स्वय ही बाध्य, स्वय ही बाधक। इसे उनकी लीला के अतिरिक्त क्या कहें उसमें हेतु क्या बतावें ? फिर भी किसी को निमित्त बनाकर ही वे क्रीड़ा करते हैं।

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कह रहे हैं—"राजन्! अब मैं आपके पावन प्रश्नो का यथामति उत्तर देता हूँ। सर्वप्रथम मैं यह बताऊँगा कि भगवान् ने अपने अवतरण के निमित्त कारण क्या बनाया था। पृथ्वी पर बहुत से असुर राजाओं के

रूप में उत्पन्न हो गये। वे बडे वली थे। सब के सब ऐश्वर्य, बल, पराक्रम तथा तप के मद में उन्मत्त होकर महान अत्याचार करने लगे। उनके भार मे भू-देवी दब-सी गई। उस भार को उतारने के लिये अच्युत अवनि पर अवतरित हुए।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् के अवतार का इतना ही छोटा-सा एक कारण है। सर्वशक्तिमान भगवान् को इस तनिक-सी बात के पीछे ही इस आधि-व्याधि, जरा तथा दु:खपूर्ण संसार मे आना पडा। महाभाग! वे चाहते, तो अपने सकल्पमात्र से असुरो का नाश कर देते, उन्हे उत्पन्न ही न होने देते। क्या किसी की उत्पत्ति भगवान् की इच्छा के बिना हो सकती है? यदि नही, तो असुरों को उन्होने उत्पन्न ही क्यों होने दिया, जिन्हे मारने उन्हे नर-रूप धारण करना पडा? उन्हे मनुष्य बनकर मानवीय दु:खो को भी सहना पडा। इस विषय मे हमे बडा संदेह है। इसका समाधान कीजिये, तब आगे की कथा कहिये।'

यह सुनकर सूतजी हंस पड़े और बोले—"भगवन्! आप तो ऐसे प्रश्न करते हैं, मानो कुछ जानते ही नही। महाराज! भगवान् के किसी भी चरित्र के सम्बन्ध में यह नही कहा जा सकता कि यह इसलिये ही हुआ। यही कहा जा सकता है, यह भी कारण हो सकता है। भगवान् के अवतार के अनेक कारण शास्त्रों मे बताये हैं जय-विजय को जब सनकादि मुनियो ने शाप दिया, तब भगवान् ने कहा—"तीन जन्मो तक मैं तुमसे क्रीडा करूंगा। तीसरे श्रीकृष्ण-जन्म में मैं तुम्हारा उद्धार करूंगा।" इसलिये उनके उद्धार के निमित्त भगवान् अवतरित हुए। कोई कहते हैं—"दण्डकारण्य के मुनि श्रीराम के अद्भुत रूपलावण्य को देखकर विमोहित हो गये। उनके मन में भगवान् के

रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। भगवान् ने कहा—"यह तो मेरा मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है। आगे मैं एक लीलावतार धारण करूँगा, तब तुम स्त्री होकर मेरे साथ रमण करना।" अत उनकी इच्छा पूर्ति के लिये मैंने यह भुवन मोहन श्रीकृष्णावतार धारण किया।" कोई कहते हैं—' जब अगस्त्यादि ऋषियों ने आकर लक्ष्मणजी की बडी प्रशसा की और कहा, मेघनाद को वही मार सकता है, जो बारह वर्ष बिना खाये, बिना सोये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे।" श्रीराघव को बडा आश्चर्य हुआ। वे बोले—"लक्ष्मण तो मेरे साथ नित्य ही फल खाता था, उसने मेघनाद को कैसे मारा?" लक्ष्मणजी बुलाये गये। भगवान् ने पूछा—"क्या तुमने बारह वर्ष भोजन नहीं किया?"

लक्ष्मणजी ने कहा—'नहीं प्रभो! मैंने न भोजन किया, न निद्रा ली।"

भगवान् बोले—"तुम तो स्वय फल लाते थे और मैं तीन भाग करके तुम्हें दे देता था। तुम खाते नहीं थे क्या?'

अत्यन्त आश्चर्य के साथ भगवान् ने कहा—"अरे, भैया! हमे तो पता भी नहीं, तुम उन फलो को क्या करते थे?"

लक्ष्मणजी ने कहा—"महाराज! मै आपके दिये हुए फलों का अनादर कैसे करता? उन्हे सुखाकर रख लेता। अवसर मिलने पर उन्हें वाण द्वारा अवध भेज देता। वे सब फल मेरे पास अभी यहाँ रखे है।" कुतूहल के साथ भगवान् ने कहा—"अच्छा, लाओ उन फलो को।"

लक्ष्मणजी सब फल ले आये। गिने गये, तो चार दिन के कम निकले। भगवान् ने कहा—"चार दिन के कम क्यो हैं?"

लक्ष्मणजी ने कहा—"महाराज! पहिले दिन तो शृ गवेरपुर मे हम लोगो ने कुछ खाया ही नहीं था। जिस दिन पिता के

परलोक-गमन का समाचार मिला, उस दिन न मुझे आपने फल लाने की आज्ञा दी, न उस दिन किसी ने खाया ही। जिस दिन सीताजी का हरण हुआ, उस दिन किसी ने कुछ खाया ही नहीं; आपको अपने शरीर की भी सुधि नहीं थी। एक दिन उस दिन नहीं खाये, जिस दिन मुझे शक्ति लगी थी। उस दिन मैं दिन भर मूर्च्छित पड़ा रहा, आप रोते रहे उस दिन भी कुछ नहीं खाया था। इसलिये चार दिन के कम हैं।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भैया! यह तो बड़ी भूल हो गई। बड़ा बनना तो बहुत बुरा व्यापार है! बड़े लोग सेवकों से काम लेना ही जानते हैं। वे इस बात की सुधि नहीं रखते कि हमारे सेवक ने खाया या नहीं, उसे कुछ कष्ट तो नहीं है। देखो, मैं तो अपनी प्रिया के साथ वनों में भी आनन्द-विहार करता रहा। तुमने कुछ खाया भी नहीं। इस अपराध का यही प्रायश्चित्त है कि अब के मैं छोटा बनूंगा, तुम बड़े बनना। अब के मैं तुम्हारी सेवा करूंगा।" इसलिये श्रीकृष्ण छोटे बने और शेषावतार सङ्कर्षण को बड़ा बनाया, किन्तु, छोटे बनकर भी ये बड़े ही रहे। अब बड़े कहाँ तक छोटे बनें!

कोई कहते हैं—"भृगुजी के एक पुत्री थी, जिसका नाम लक्ष्मी था। उन्होंने विष्णु भगवान् के साथ उसका विवाह कर दिया, दहेज में एक गाँव दिया। पीछे भृगुजी ने उस गाँव पर अपना अधिकार जमा लिया। विष्णु भगवान् ने कहा, यह मेरी बहू का है। इसी पर तू-तू, मैं-मैं हो गई। बड़ा न्यायालय तब तक स्थापित नहीं हुआ था। भृगुजी ने शाप दे डाला—"जाओ, तुम्हें दस बार पृथ्वी पर अवतार लेना पड़ेगा। इसलिये ससुर के शाप से वे उत्पन्न हुए।"

कोई कहते हैं—"भृगुजी ने इन्हें यज्ञ की रक्षा का काम सौंपा

था। इसी बीच देवताओं पर असुरों ने चढ़ाई कर दी। विष्णु भगवान् चक्र लेकर भाग गये। उसी बीच असुरों ने आकर भृगु के यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर भृगुजी ने कहा—"तुमने जामाता होकर भी मेरी आज्ञा-पालन में प्रमाद किया, अतः जाओ, तुम्हे दस बार पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा।"

कोई कहते हैं— 'असुर देवताओ को मारकर भृगु की पत्नी के यहाँ छिप जाते थे। देवता वहाँ जा नही सकते थे। इस पर चक्र लेकर भगवान् ने उसका सिर काट दिया। इस पर भृगुजी ने उन्हे शाप दे दिया।"

कोई कहते है—"जाम्बवान की युद्ध से तृप्ति नहीं हुई, तब भगवान् ने उन्हे वर दिया कि श्रीकृष्णावतार लेकर हम तुमसे युद्ध करके तुम्हारी तृप्ति करेंगे।"

कोई कहते हैं—"नन्द-यशोदा पूर्वजन्म मे द्रोण वसु और धरा थे। उनसे ब्रह्माजी ने कहा—"तुम पृथ्वी पर उत्पन्न हो।" उन्होने कहा—"भगवन् मे हमारी अविरल भक्ति हो, वे बालरूप से हमारी क्रोड में क्रीडा करें, तो हम पृथ्वी पर उत्पन्न हों।" भगवान् ब्रह्माजी ने कहा—"ऐसा ही होगा।" तब द्रोण-धरा ही नन्द-यशोदा के नाम से अवतीर्ण हुए। भगवान् भी ब्रह्माजी के वचनो को सत्य करने के लिये, बलरामजी के सहित, व्रज में रह कर उन दोनो को सुख देते रहे।"

कोई कहते हैं—"सुतपा और प्रश्नि ही वसुदेव-देवकी-रूप मे अवतीर्ण हुए। उनके वर को सत्य करने भगवान् श्रीकृष्ण-रूप मे उत्पन्न हुए।"

कोई कहते है—"श्रुतियो ने, अप्सराओं ने, ऋषियो ने नित्य परिकर की सहचरियो ने भगवान् के साथ वृन्दावन में रास करने की इच्छा की। उनको इच्छा-पूर्ति के लिये, रास-विलास-

करने के लिये, भगवान् नन्द-नन्दनरूप से व्रज मे प्रकट हुए।"

कोई कहते हैं—"बहुत से असुरो ने वर माँगे थे कि हम पृथ्वी पर राजा रूप से उत्पन्न हो, तो हमारी मृत्यु भगवान् के देखते-देखते हो, इसीलिये भगवान् ने अवतार लिया।"

कोई कहते हैं—"इन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र हो तो उसकी आप रक्षा करें। अत इन्द्र के वर को सत्य करने, एकमात्र अर्जुन की रक्षा करने के लिये भगवान् ने यह रूप धारण किया।"

कोई कहते हैं—'भगवान् जब पृथ्वी को वराह रूप से ला रहे थे, तब भगवान् के स्पर्श से पृथ्वी के शरीर मे सात्त्विक भाव उत्पन्न हो गये। इसी से पृथ्वी के एक पुत्र-भौमासुर-उत्पन्न हो गया। पृथ्वी ने प्रार्थना की, कि इसकी मृत्यु भगवान् के अतिरिक्त किसी से न हो। भगवान् ने तथास्तु कह दिया। अब तो वह असुर अपने को अजर-अमर और अजेय समझकर अत्यधिक अत्याचार करने लगा। अब भगवान् के पुत्र को कौन मारे? इसीलिये उसे मारने को भगवान् अवतीर्ण हुए।"

सूतजी कहते हैं—"महाराज! कहाँ तक गिनावें! जैसे भगवान् अनत हैं, वैसे ही उनके अवतार के सम्बन्ध मे अनेकों कारण बताये जाते हैं। इन सब कारणों को सुनकर भी सब में से एक ही सामान्य ध्वनि निकलती है, कि भगवान् अपने आश्रित भक्तों को सुख देने-उनकी इच्छा पूर्ण करने-के निमित्त कमनीय क्रीडा करने के लिये ही आते हैं। इसीलिये हम किसी एक कारण को उनके अवतार का निमित्त कारण बताकर उनके अवतार की भूमिका बाँधते हैं। आप यह न समझें कि उनके अवतार का यही एकमात्र कारण है। सच पूछा जाय, तो उनके अवतार का कुछ भी कारण नहीं, वे अकारण वैसे ही बालक्रीडा के सदृश,

मनोविनोद के लिये, स्वेच्छा से अवतरित होते हैं। ... सुख देने–उनके सकेत पर कठपुतली की भाँति नाचने–से, ... स्वरूप होने पर भी, उन्हें अत्यधिक सुख होता है। अतः भक्त को सुख देने–अपने सुख स्वरूप को प्रकाशित करने–वे अवनि पर आते हैं। कथा प्रसङ्ग चलाने को यह भूमिका बाँधी गई है कि जब पृथ्वी पर कालनेमि, अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक सुन्द, बाण, भौम, तथा (हिरण्यकशिपु दन्तवक्त्र) हिरण्याक्ष शिशुपाल आदि अनेकों असुर राजाओं के रूप में तथा अन्यान्य रूपों में उत्पन्न होकर पृथ्वी के भारभूत हो गये, तब भू का भार उतारने भगवान् ने अवतार धारण किया।"

इस पर शौनकजी ने कहा— 'सूतजी! जब यही बात है, तब असुरों को मारने को तो उनके एक केश का भी अवतार हो जाता तो वह ही सब दैत्यों का नाश करने में समर्थ था; या किसी और में ऐसी शक्ति दे देते।"

सूतजी बोले—"महाराज! ये साधारण पापी नहीं थे। साधारण पापी तो अपने पाप से ही नष्ट हो जाता है। ये वैसे तो बड़े धर्मात्मा थे। जरासंध को ही ही देखिये, कितना ब्राह्मण-भक्त था! कोई ब्राह्मण किसी समय भी आ जाय, वह उसका उसी समय सत्कार करता था। जो भी ब्राह्मण उससे याचना करता, वह उसे वह वस्तु उसी समय देता। ऐसे धर्मात्मा असुर को भगवान् के अतिरिक्त कौन मार सकता था? इन सब में सहस्रों लाखों हाथियों के समान बल था। ये ब्रह्मादि देवताओं से भी नहीं जीते जा सकते थे। रही केशावतार की बात, सो इन्हें मारने को तो भगवान् ने केश का ही अवतार धारण किया। भूमा पुरुष के श्वेत और कृष्ण केश से ही श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। नर-नारायण ने भी अवतार धारण किया, विष्णु

भगवान् ने भी अवतार धारण किया–ये सब कला अंशादि अवतार आकर परिपूर्णावतार श्रीकृष्ण के विग्रह मे अन्तर्भूत हो गये। खल निग्रह गीतोपदेश आदि लोक कल्याण कारक कार्य इन्ही अश कला अवतारो द्वारा हुए। परिपूर्णतम अवतार तो राग भोग मे ही निमग्न रहकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप से भक्तों को–आश्रितो को–सुख देता रहा। इन सब विषयो का विस्तृत विवेचन समय समय पर होता रहेगा। आप मुझे कथा कहने दें। ऐसी शकायें करते रहेंगे, तो कथा का प्रवाह ही रुक जायगा। ये भगवान् तर्क से प्राप्त नही होते। इनको प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है—प्रेम श्रद्धा भक्ति के सहित इनके चारु चरित्रो का श्रवण करना, मनन करना, विचार करना, कथन करना प्रचार करना प्रसार करना तथा स्वर सहित गान करना।"

शौनकजी बोले— अच्छी बात है सूतजो! अब आप कथा ही कहे।"

सूतजी बोले —"जैसे मेरे गुरुदव ने महाराज परीक्षित को भगवान् के अवतार का निमित्त कारण बताया उसे ही अब मैं कह रहा हूँ। पृथ्वी पर जब असुर अत्यधिक बढ गये और उनके बोझ को सम्हालने मे वह असमर्थ हो गई तब वह अत्यन्त दु खी होकर गौ का रूप रखकर, आखों मे आँसू भरकर अत्यत खिन्न होर दीन स्वर से विलाप करती हुई ब्रह्मा जी के पास चली।

ब्रह्माजी का घर तो ब्रह्मलोक में है कि तु वे सातों भुवनो के स्वामी हैं, अत सातो भूवनो के बीच ध्रुवलोक म ऊपर सुमेरु शिखर पर उन्होने अपनी एक सभा बना रखी है, ताकि ऊपर के मह जन, तप और सत्यलोक के भी लोग आ सकें और नीचे

के भू, भुव और स्वर्ग लोक के भी लोग आ सकें। सात पाताल तो भू के विवर ही कहे जाते हैं, इनकी गणना तो भूलोक में ही की जाती है। यह ब्रह्माजी की सभा स्वर्गलोक से ऊपर तथा महर्लोक से नीचे है। शासक को अपने राज्य के बीच में ही राज सभा बनानी चाहिये। जब ब्रह्माजी की सभा लगती है, तब उसमें सभी के अधिष्ठातृदेव पहुँचते हैं, जैसे नदियाँ दिव्य रूप रखकर जाती हैं, पर्वतों के अधिष्ठात देव ग्राम नगरों के देव, असुर, गन्धर्व, गुह्य, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच– सारांश समस्त जीवों के प्रतिनिधि ब्रह्माजी की सभा में उपस्थित होकर अपना दुख-सुख सुनाते हैं। धर्म भी रहते हैं, अधर्म भी रहते हैं। ब्रह्माजी को सब की सुननी पड़ती है, सब का प्रबन्ध करना पड़ता है। जिनको भी कोई दुःख होता है, वे वहीं जाकर रोते हैं। पृथ्वी भी गौ का रूप रख कर उनकी सभा में पहुँची।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने मना तो कर दिया है, कि तर्क मत करना, किन्तु बिना पूछे हमसे रहा नहीं जाता। पृथ्वी ने गौ का ही रूप क्यों रखा?"

सूतजी बोले—"अब महाराज! यह बात तो आप पृथ्वी से पूछें। हमने तो पुराणों में पृथ्वी का जहाँ भी वर्णन सुना है, गौ रूप से ही सुना है। जैसे गौ के शरीर में सब देवताओं का निवास है, वैसे ही पृथ्वी भी सबका आधार है। गौ का इसलिये भी रूप रखा होगा कि गौ अत्यन्त भोली होती है, उस पर सभी लोग दया करते हैं। कन्या और गौ—दोनों के भोलेपन को देख कर सब हृदय द्रवीभूत हो जाते हैं। पृथ्वी को सबके हृदय में दया उत्पन्न करनी थी, इसीलिये वह गौ बनकर ब्रह्माजी के पास गई।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! एक तनिक सी शङ्का और रह

गई। अच्छा, पृथ्वी तो जानती थी, ब्रह्माजी कुछ नहीं कर सकते। करने धरने वाले तो श्रीहरि ही हैं। पृथ्वी का भगवान् से परिचय न होता तब तो ब्रह्मा जी की सहायता की अपेक्षा भी थी पृथ्वी रानी तो भगवान् की बहू ही हैं। फिर वे सीधे भगवान् के पास क्यों नहीं गईं, उन्होंने इतना चक्कर क्यों लगाया ?"

यह सुनकर सूतजी बहुत खिलखिला कर हंस पड़े। इस पर शौनकजी ने शङ्कित होकर कहा— सूतजी ! हमारा प्रश्न कुछ गडबड हो गया क्या ? हमने कुछ भूल कर दी क्या ?' हँसते हुए सूतजी बोले— 'महाराज ! जान बूझकर भूल नहीं की। प्रश्न में भूल हुई ही, किन्तु यह भूल गृहस्थी न होने से स्वाभाविक ही है। आप तो जन्म से ही बाबाजी बन गये हैं, गृहस्थियों के सदाचार को क्या जानें ! भगवन् ! स्त्री को जब पति से कोई बात सबके सामने कहनी होती है तब वह बीच में पुत्र पुत्री को बिठाकर कहती है। भूदेवी विष्णु भगवान् की बहू ठहरी। बहू भी निर्लज्ज कलियुगी नहीं सतयुगी सती साध्वी ठहरी। वे अकेले भगवान् के पास कैसे जाती ? घूंघट खोलकर कैसे बातें करती ? अत: चार मुह वाले अपने बेटे को साथ ले कर जाना उन्होंने उचित समझा। उनका एक मुख पिता के सम्मुख रहता एक मां के सम्मुख। मां घूंघट में से उनके कान में जो कह देतीं, वही वे भगवान् से निवेदन करते। मुझे तो यही कारण प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कोई कारण हो तो उसे आप जानें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार पृथ्वी देवी ब्रह्माजी की भरी सभा में गईं। सब देवता इन्हें देखकर चकित रह गये। ब्रह्माजी ने यथोचित उनका स्वागत सत्कार किया कुशल क्षेम

पूछा। माता ने अपना सब दु ख रो रोकर उन्हें सुनाया। ब्रह्मा जी सब सुनकर चिन्तित हुए। वे पृथ्वी देवी को आगे करके सब देवताओं को साथ लिये हुए शिवजी के समीप पहुँचे। शिव ने सब सुनकर कहा—'मैं क्या कर सकता हूँ, करने धरने वाले तो वे ही श्रीहरि हैं। उनकी शरण मे सब चल।' शिवजी की सम्मति मानकर सब क्षीरशायी श्री विष्णु के समीप चलने को प्रस्तुत हुए।

छप्पय

सुरगण करहु उपाय भार मेरो उतरे सब।
जाउँ रसातल चली वहन की शक्ति नहीं अब॥
सुनि कें भू की बात सुरनि मक्षा उकसाये।
सुनि बोले अज असुर अवनिपै अगनित आये॥
गङ्गाधर शिव ढिग चलहु, वे कछु युक्ति बतायँगे।
फिर उनकूँ हू सग लै, कमलापति ढिँग जायँगे॥

श्रीहरि द्वारा भू और देवों को आश्वासन

[८१७]

गिरं समाधौ गगने समीरिताम्,
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

ब्रह्मादिक सब देव अवनि सँग शिव ढिँग आये।
पुनि अज, हर, सुर अन्य क्षीरसागरहिँ सिधाये॥
देखि अपार पयोधि विष्णु कूँ खोजें सब सुर।
परि दरशन नहिं भये अधिक चिन्ता व्यापी उर॥
है अधीर श्रद्धा सहित, लगे करन विनती सबहिं।
अज आयसु हरि की सुनी, बोले देवनि तैं तबहिं॥

सर्वज्ञ भगवान् काल के भी काल हैं। विश्व ब्रह्माण्ड काल के अधीन है, किन्तु काल भगवान् के अधीन है। भगवान् काल के

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—' राजन् क्षीर सागर पर ब्रह्माजी को समाधि में आकाशवाणी सुनाई दी। उसे श्रवण करके उन्होंने इन्द्रादि देवताओं से कहा—"अमरगण! मैंने जो भगवान् की भविष्यवाणी सुनी है, उसे तुम सब सुनो और सुनकर उसके अनुसार तुरन्त कार्य करो। इस विषय में देर करने का काम नहीं है।"

अधीन होकर कोई कार्य नहीं करते, किन्तु काल को ही आज्ञा कर देते हैं कि अमुक समय पर हमारे यहाँ उपस्थित हो जाना। भगवान् के सकेत पर काल जब आकर उपस्थित होता है, तब भगवान् योग निद्रा से उठकर हाथ मुँह धोते हैं और फिर क्रीडा करने लगते हैं। क्रीडा करते-करते जब इच्छा होती है, वे सो जाते हैं। सोना और खेलना—ये ही बालमुकुन्द भगवान् के दो कार्य हैं। भगवान् 'जिस लोक मे भी सोवें, उसी लोक के आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी-रूप कगले याचक उन्हे आकर दीन वचन सुनाते हैं। इन खटमल और मच्छर रूपी स्वार्थियो मे बचने के लिये भगवान् दुग्ध के समुद्र के बीचो बीच शयन करते हैं। सबसे सुन्दर चिकनी गुदगुदी सर्प की दह होती है। वे उमी को सुन्दर शय्या बनाते है, उस पर महत्तत्व गुदगुदा गद्दा बिछाते है त्रिगुणो के तकिये लगाते है और आँखे बन्द करके चुपचाप सो जाते हैं। उनकी बहूरानी भगवती कमलादेवी अपनी अत्यन्त कोमल जङ्घाओ पर उनके चरण कमलो को रखकर कमल से भी कोमल अपने कमनीय करो से शनै शनै सुहलाती रहती हैं। उनके सुखद स्पर्श से योग निद्रा आने से श्रीहरि के नयन उन्मीलित हो जाते हैं। वे झपकियाँ लेने लगते हैं। उनका शयन स्थान वसे ही एकान्त तथा गुप्त है। प्रथम तो वहाँ कोई पहुँचता ही नही, कोई भूला भटका। अधिकारारूढ सेवक पहुँच भी जाय, तो भगवान् असमय मे उन्हे दर्शन नही देते, किसी अधिकारी से कहला देते हैं अभी मिलने का तो समय नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब पृथ्वी देवी ने अपने दुःख को मिटाने के निमित्त चतुरानन भगवान् ब्रह्माजी से प्रार्थना की, तब वे शिवजी के समीप गये, फिर सबने मिलकर सम्मति की। सर्वसम्मति से यही निश्चय हुआ कि कर्ता, धर्ता सब श्रीहरि ही हैं।

सब को एक साथ मिलकर भगवान् की शरण में जाना चाहिये। अब यह प्रश्न उठा कि भगवान् तो वैकुण्ठ मे, श्वेत द्वीप में, क्षीर सागर मे, और जाने कहाँ-कहाँ, रहते हैं; किस स्थान मे चलना चाहिये। इस पर ब्रह्माजी बोले— देखो' भाई! यदि भगवान् वैकुण्ठ मे या श्वेत द्वीप मे इस समय होते, तो उन्हे आर्त प्राणियो का क्रन्दन सुनाई अवश्य देता। प्रतीत होता है, वे गहरी निद्रा मे कही सो रहे है। सोते हुए पुरुष को किसी की चिन्ता नही रहती, वह अपने आनन्द मे मग्न रहता है। भग-वान् के सोने का स्थान क्षीर सागर है। वहां अनेक बार मैं गया हूँ। मैंने उन्हे योगनिद्रा मे, नेत्र बन्द किये, शेष-शैय्या पर शयन करते हुए, निहारा है। अब वहीं चलने से काम चलेगा।"

सब ने कमलासन की बात का साधु-साधु कहकर समर्थन किया। गोरूपा पृथ्वी को आगे करके समस्त ब्रह्मादि देव क्षीर सागर की ओर चल दिये। वहाँ जाकर सब ने देखा कि दूध का समुद्र हिलारें मार रहा है। बड़े-बड़े दुग्ध के झाग किनारे पर लगे हुए हैं। जयन्त ने अपने एक नेत्र से, देवताओं ने अपने दो नेत्रो से, ब्रह्माजी ने अपने आठ नेत्रो से शिवजी ने अपने दश नेत्रो से, स्वामी कार्तिकेय जी ने अपने बारह नेत्रो से, और सहस्राक्ष देवेन्द्र ने अपने हजार नेत्रो से, चारों ओर आंख फाड़-फाड़ कर देखा, किन्तु भगवान् दिखाई ही न दिये। तब तो देवता बडे निराश हुए कि उनका आना ही व्यर्थ हुआ। भू देवी भी रुदन करने लगी। सब को सान्त्वना देते हुए बूढे ब्रह्मा जी बोले—"अरे देवताओ! तुम चिन्ता मत करो। भगवान् तो स्तुति से प्रसन्न होते हैं। सब मिलकर एक मन से, एक स्वर से, गद्गद कण्ठ होकर स्तुति करो। देखो अभी भगवान् प्रकट होते हैं।"

"बाबा वाक्यं प्रमाणम् ।" बूढे बाबा जो कह दें, वही ठीक। सब पक्तिबद्ध, हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, छाती निकालकर खडे हो गये और पुरुषसूक्त से करने लगे स्तुति, प्रिय भगवान् की स्तुति !

कोलाहल सुनकर भगवान् ने नेत्र बन्द किये ही कहा—"यह कौन कोलाहल कर रहा है ?"

एँड़ी को अपने दोनों कर-कमलों से दबाती हुई लक्ष्मी जी बोली—"प्राणनाथ ! देवता गण आये हैं, वे आपकी स्तुति कर रहे हैं।"

भगवान् बोले—'देवता बड़े अनाडी हैं। उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि जब पट बन्द हो, शयन हो गया हो, तब न श्री विष्णु मन्दिर की प्रदक्षिणा करनी चाहिये, न वहाँ खड़े होकर स्तुति ही। इनको किसने सिखाया है ?"

लक्ष्मी जी बोली— 'चतुरानन आये है और साथ ही वसुधा जी भी हैं। किन्तु, आज तो वे बडे-बडे सीगो वाली गौ बन रही हैं, लहँगा-फरिया कुछ नहीं पहनी है, ऐसे ही नङ्ग धडङ्गी खड़ी हैं।" अपनी धर्मपत्नी के आगमन को सुनकर भगवान् के मन मे प्रेम तो हो ही गया। पुत्र के आगमन से क्रोध भी जाता रहा किन्तु, वे लक्ष्मी जी के सम्मुख अपना प्रेम प्रकट कैसे करें ? लक्ष्मी जी तनिक-सी बात में तुनक जाती हैं। अतः भगवान् बोले—"मेरे बेतार के तार वाले यन्त्र को मुख पर लगाओ। ब्रह्मा से कहो—"आँख बन्द करके अपने हृदय के यन्त्र को मेरे यन्त्र से मिला लें, अभी मेरे उठने का समय नहीं हुआ। ये कामार्थी कङ्काल हम जहाँ जाते हैं, वही पहुँच जाते हैं। मैं लेटे-लेटे ही ब्रह्मा को निकट सब बातें सुना दूँगा।"

लक्ष्मी जी ने भगवान् की आज्ञा का पालन किया। भगवान् ने ब्रह्माजी के हृदय मे कहा—"क्यो हल्ला मचाया है?"

दीनता के स्वर में ब्रह्माजी ने कहा—"प्रभो! पृथ्वी माता बडी दुखी हो.."

बीच में ही भगवान् ने कहा—"बहुत बाते करने की आवश्यकता नही। हमे सब पता है। हम ऐसे नही सोये हैं कि सब को भूल जायें। हमे सबकी रत्ती-रत्ती बात मालूम है। पृथ्वी के दुख हमसे अविदित नही हैं। अभी हमे ऐसे ही कुछ और पडे रहना है। तब तक देवताओं से कहो, वे कुछ कार्य करे। स्वर्ग मे ही पडे-पडे आनन्द न उडाते रहे।"

डरते-डरते ब्रह्माजी ने कहा—'देवताओं के लिये क्या आज्ञा है। उन्हे क्या करना होगा?"

भगवान् ने कहा—देवता सब जाकर पृथ्वी पर यदुकुल में अवतार लें। वे तब तक पृथ्वी पर रहे, जब तक मैं अपनी काल शक्ति से पृथ्वी का भार नष्ट करते हुए भूलोक मे विहार करूँ। मैं स्वय वसुदेव जी के यहाँ अवतरित होऊंगा। देवताओं की स्त्रियाँ भी व्रज मे मेरी प्रसन्नता के लिये उत्पन्न हो। मेरे कलारूप स्वय प्रकाश सकर्षण सहस्रवदन शेषजी भी मेरा प्रिय करने के लिये मुझसे प्रथम अवतीर्ण होगे। जिन मेरी परम ऐश्वर्य शालिनी योगमाया ने सम्पूर्ण चराचर जगत को मोहित कर रखा है, वह भी मेरी आज्ञा से मेरा काय करने के निमित्त अपने अश से प्रकट होगी। अब जाओ भाग जाओ, मुझे सोने दो!'

हृदय मे भगवान् का आदेश पाकर ब्रह्माजी उठकर खडे हो गये। देवता वाणीसे तो स्तुति कर रहे थे किन्तु क्षीर सागर मे चारो ओर आँख फाड-फाडकर देख रहे थे, कि कब भगवान् प्रकट होते हैं। जब ब्रह्माजी खडे हो गये, तब सभी अकबका

कर उनके मुख की ओर निहारने लगे और निराशा के स्वर मे पूछने लगे—' प्रभो ! अभी तक भगवान् के दर्शन नही हुए। भगवान् कब प्रकट होगे ?"

ब्रह्माजी ने गम्भीर होकर कहा—"इस समय भगवान् योग-निद्रा मे हैं। वे इस समय दर्शन न दे गे। उन्होने मेरे हृदय मे आप सब के लिये सदेश दिया है।"

अत्यन्त उत्सुकता के साथ देवताओ ने पूछा—' भगवान् ने हमारे लिये क्या उपदेश दिया है प्रभो ?"

ब्रह्माजी बोले —' देखो, समाधि अवस्था मे मुझे आकाशवाणी सुनाई पडी। उसे मैं आप सब को सुनाता हूँ। उसे सुनकर आप सब उसके अनुसार अविलम्ब कार्य करे, देर मत करे।"

देवता बोले— हाँ, भगवन ! हमे आज्ञा करे। हम आपकी आज्ञाओ का यथाशक्ति पालन करे गे।"

ब्रह्माजी बाले—"भगवान् ने कहा है—मैं तमोगुणी निद्रा मे सो नही रहा हूँ। मुझे सब पता है। मैं, मेरे अशावतार शेष तथा मेरी भुवनमोहिनी माया-शक्ति-सब अवनि पर अवतरित होगी। देवाङ्गनाओ के साथ देव भी यदुकुल मे जाकर पृथ्वी पर उत्पन्न हो। मैं वसुदेव के घर जन्म लेकर भू का भार उतारूंगा।'

यह सुनकर पृथ्वी प्रसन्नता के साथ कान खड़े करके अपने सींगो को हिलाने लगी, पूंछ फटफटाने लगी। देवता हर्ष मे भरकर जय ध्वनि करने लगे।

ब्रह्माजी ने कहा—"भैया ! अब देर करने का काम नहीं। तुम लोग स्वर्ग मे जाओ और तुरन्त यादवो के यहाँ नन्द के व्रज मे अवतीर्ण हो। सुर सुन्दरियाँ भी सुन्दर वेश बनाकर श्यामसुन्दर को रिझाने को, उनसे क्रीडा कराने को, उत्पन्न हों।

मैं भी अब अपने सत्यलोक को जाता हूँ। मेरा बहुत काम पड़ा होगा। ये पृथ्वी माता' भी अपने यहाँ जायँ। अब तो ये भगवान् के चरण कमल की पराग पड़ने से पावन होने पर भी परम पावन बन जायँगी।'

सूतजी कहते हैं—मुनियो! ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सभी अपने-अपने लोकों को चले गये। ब्रह्माजी भी सत्यलोक में आ गये।"

छप्पय

होवें यदुकुल माहिँ शीघ्र अवतरित मुरारी।
हरि तें अविदित नहीं विपति की बात तुम्हारी॥
प्रभु प्रकटें बल सहित योग माया हू आवे।
पूजित जग महँ होहि असुर संहार करावें॥
यदुकुल गोकुल माँहिँ सब, सुर-सुरललना देह धरि।
प्रकटि करहु सुरतनु सफल, ऐसी आयसु दई हरि॥

वसुदेवजी का विवाह

[८१८]

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥
तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥*

(श्रीभा १० स्क० १ अ० २८, २९ श्लो०)

छप्पय

हरि-सन्देश सुनाइ धरा कूँ धीर बँधायो ।
ब्रह्मलोक अज गये सबनि को मन हरषायो ॥
निज ललननि के संग अवनि पै जनमे सुरगन ।
जिन सौंप्यो सर्वस्व कृष्ण कूँ निज तन-मन-धन ॥
सुनहु कथा पावन परम, श्री मथुरा की मधुर अब ।
शूर-तनय वसुदेवजी, के विवाह को वृत्त सब ॥

विवाह एक परम धार्मिक कृत्य है। विवाह न हो, तो जीवन मे सरसता नही, सृष्टि की उत्पत्ति नही, वृद्धि नहीं संग्रह नही, संयम नही नियमन नही। मिथुन होने की, एक से

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! उन दिनों समस्त यदुवंशी राजाओं की वह मथुरापुरी ही राजधानी थी, जिसमें सर्वदा ही श्रीहरि विराजमान रहते हैं। एक बार की बात है कि उसी नगरी में कभी शूर के पुत्र वसुदेव जी नया विवाह करके अपने घर जाने के लिये अपनी नई बहू के साथ रथ पर सवार हुए।"

अनेक होने की, जीवमात्र की स्वाभाविक इच्छा होती है। स्वाभाविकी इच्छा टाली नहीं जा सकती। उसे संयत किया जा सकता है। जिनके मन में इच्छा नहीं, कामना नहीं, उन्हें तो संयत करने की आवश्यकता नहीं। जिस भवन में बिछौना, चौकी, चित्र, पात्र, फल फूल, आदि साज-शृङ्गार के समान हैं ही नहीं, वहाँ तो उन्हें यथा स्थान लगाने का प्रश्न ही नहीं। किन्तु, जहाँ ये सब सामग्रियाँ हैं और उन्हें वैसे ही अस्त-व्यस्त रूप से भवन में ठूँस-ठूँसकर भर दिया है, वहाँ यह भवन और वस्तुओं का दुरुपयोग है। इसी प्रकार स्वाभाविक वासना को संयत करने, उसे नियमानुसार सजा-बजाकर रखने का ही नाम धर्म है। संसार में कोई वस्तु बुरी नहीं, कोई अच्छी नहीं, उनका उपयोग ही भला-बुरा है। घृत को अमृत कहा है, किन्तु घृत को मर्यादा से अधिक खा लो, तो वह विष का काम करेगा। ताँबे के पात्र में खाओ, तो वह हानि करेगा। बराबर मात्रा में शहद में मिलाकर खाओ, तो वह मारक हो जायगा। इसी प्रकार मिथुन होने की इच्छा को शास्त्रीय पद्धति से धर्म पूर्वक विवाह करके पूर्ण करना यह भगवान् का स्वरूप है। तभी तो नव वर-वधू के दर्शन को लक्ष्मीनारायण का दर्शन कहा है। जब नव वर-वधू नवीन विवाह करके आते हुए दिखाई दें, तो खड़े रोकर उन्हें प्रणाम करना चाहिये, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हो।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! ब्रह्मादिक देवताओं के चले जाने के अनन्तर भगवान् ने अपने कमल नयनों को पुनः बन्द कर लिया, किन्तु अब उन्हें निद्रा नहीं आयी। उन्होंने एक ही बार इधर-उधर करवटें बदली। लक्ष्मीजी ने कहा—"क्यों? नींद उचट गई क्या?"

भगवान् यह सुनकर हँस पड़े और बोले—"प्रिये ! तुम सब जानती हो। यह बहू-बेटी की चिन्ता ऐसी होती है, कि पुरुषों को न भोजन अच्छा लगता है, न निद्रा ही आती है। चिन्ता के समय निद्रा भाग जाती है। मेरी इच्छा अवतार धारण करने की है।"

लक्ष्मीजी ने कहा—"तो, महाराज ! मैं यहाँ अकेली बैठी-बैठी क्या करूँगी ? मैं भी आपके साथ ही पृथ्वी पर अवतार लूँगी।"

भगवान् बोले—"देखो, हमारा तुम्हारा अवतार साधारण मनुष्यों के यहाँ तो नहीं हो सकता। तुम तो विदर्भाधिप महाराज भीष्मक के यहाँ अवतार धारण करो; क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा, मत्परायण, सरल और सदाचारी हैं। संसार में उनके अतिरिक्त तुम्हारा पिता बनने के योग्य दूसरा पुरुष नहीं है। मैं शूरसेन-सुत श्री वसुदेव जी के यहाँ जगन्माता देवकी के उदर से अवतीर्ण हूँगा। वे ही दम्पति परम धर्मात्मा तथा सर्वगुण सम्पन्न हैं। उनके अतिरिक्त अवनि पर अन्य पुरुष मेरे माता पिता कहलाने के योग्य नहीं हैं।"

लक्ष्मीजी ने कहा—"अच्छी बात है, महाराज ! किन्तु फिर आप मेरे साथ विवाह कर लेना। कहीं ऐसा न हो, मैं आपकी बाट ही देखती रहूँ। यहाँ तो चारों ओर समुद्र है, बीच में अकेली मैं हूँ। आप मुझे प्यार करते हैं। वहाँ तो बहुत-सी स्त्रियाँ होंगी। सब देवाङ्गनायें अवतीर्ण होंगी। मुझे भूल मत जाना, भला ?"

भगवान् ने लक्ष्मीजी की ठोडी ऊँची करते हुए कहा—"प्रिये ! तुम ऐसी बातें क्यों कह रही हो ? भला तुम्हें कभी भूल सकता हूँ ? तुम्हारे बिना तो मुझे नींद भी नहीं आती। अच्छा

बात है। तो मैं भूमि के अपने नित्य धाम श्री मथुरापुरी मे प्रकट हूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् ने श्री महालक्ष्मी जी के साथ ऐसा निश्चय कर लिया। अब जिनके यहाँ भगवान अवतरित होंगे, उन वसुदेव जी का भी वृत्तान्त सुनिये।"

महाराज देवमीढ के पुत्र शूरसेन हुए। वे बडे धर्मात्मा और प्रजावत्सल थे। वे माथुर मण्डल तथा शूरसेन देश के राजा थे। उनके पुत्र वसुदेवजी थे। उनका विवाह सात्वतवशीय महाराज उग्रसेन के भाई देवक की छ पुत्रियो के साथ हुआ। उनके छ पत्नियाँ पहिले थी। इस प्रकार बारह विवाह तो उनके हो चुके थे। अब महाराज देवक की सबसे छोटी पुत्री देवकी और रह गई थी। उसे राजा अत्यन्त ही प्यार करते थे। वह लडकी क्या थी साक्षात् जगदम्बा का ही स्वरूप थी। जो भी कोई उसे देखता, वही उनके ओज, तेज, रूप, लावण्य, प्रभाव तथा कान्ति को देखकर नतमस्तक हो जाता अपने आप उसका श्रद्धा से नत मस्तक हो जाता। महाराज देवक चाहते थे, मेरी पुत्री को कोई सर्वगुण सम्पन्न पति मिले और वह मथुरा मे ही हो, क्योंकि मथुरा की बेटी मथुरा मे ही विवाही जाय, तभी उसकी शोभा है। एक कहावत भी है—

मथुरा की बेटी, गोकुल की गाय। भाग्य फूटे तो बाहर जाय।" यही सब सोच-समझकर उन्होने निश्चय किया—'वसुदेवजी सर्वगुण सम्पन्न हैं। ससार मे खोजने पर भी देवकी के लिये ऐसा दूसरा पति कही नही मिलेगा। इसकी छ बडी बहिन भी वसुदेव जी के साथ ही विवाही गयी हैं। वे सब देवकी को प्राणो से भी अधिक प्यार करती हैं। बाहर कही गई, तो न जाने कैसी देवरानी-जिठानी मिलें। देवकी तो स्वयं न लड़ेगी,

किन्तु दूसरी द्वैरानी, जिठानी, ननद, सास लडती हैं, तो मन में कुछ न कुछ दुःख होता ही है। वसुदेव जी के यहाँ सभी बातें अपनी समझी-समझाई ही हैं, अपना घर ही है। वहीं इसका विवाह करना उत्तम होगा।" यह सोचकर उन्होने गर्ग जी द्वारा वसुदेव जी के यहाँ सगाई भिजवा दी। वसुदेवजी तो यह चाहते ही थे। उन्होने सगाई स्वीकार कर ली और नियत तिथि पर वर बनकर बाजे-गाजे के साथ बरात लेकर देवकजी के द्वार पर जा पहुँचे। देवकजी ने बडे उत्साह के साथ बरात की आगमनी की, द्वार पूजन हुआ, जनवासा दिया गया। नियत लग्न में बडी धूमधाम से, ब्राह्मणो के वेद-घोष के साथ, वसुदेव जी ने देवकी जी का पाणि-ग्रहण किया। दोनो ओर से हर्ष का ठिकाना नही था। शङ्ख दुन्दुभि, भेरी, नगाडे, आदि बाजे बज रहे थे। आकाश से देवता पुष्पो की वृष्टि कर रहे थे। इस प्रकार अत्यन्त उत्साह के साथ विवाह की विधि सम्पन्न हुई। दो-चार दिन बरात और ठहरी। अन्त मे विदाई का दिन आया। वसुदेव जी मौर बाँधकर घर मे बहू को विदा कराने गये। सास-सरहजो ने उन्हे समझाया, सरसता से सनी बातें कहीं, घी-दूध खिलाया। कुकुमदधि का तिलक किया, अक्षत लगाये और देवकी को समझा-बुझाकर विदा किया। लडकी की विदाई के समय बडा कारुणिक दृश्य उत्पन्न हो जाता है। घर के सभी लोगो के नेत्र मे जल भरा रहता है। सभी आर्द्र हृदय से अत्यन्त प्यार के साथ लडकी को विदा करते हैं।

देवकी रोती-रोती वसुदेवजी के पीछे-पीछे जा रही थी। उस की माता बहने उसे पकडे हुए थी। वह कभी किसी की छाती से चिपटकर रोने लगती कभी किसी के कन्धे से कन्धा सटाकर बिलखने लगती। स्त्रियाँ उसे समझाती, चुप कराती। बाहर

लडकी को विदा करने पुरुष खडे थे। देवकी अपने ताऊ उग्रसेन के गले लगाकर रोने लगी। महाराज उग्रसेन ने उसके सिर पर हाथ रखा और समझाते हुए प्यार पुचकार कर कहने लगे—"अरे बेटी! ऐसे भला कोई रोते है। तू कहो दूर थोडे ही जा रही है। हम जब चाहे तुम्हे बुला लेंगे। वहाँ तेरी सब बडी बहने हैं, रोने की कोई बात नही। जा अब, तुम्हे शीघ्र ही हम बुला लेंगे।" यह कहकर उन्होने अपने आंसुओ को पोछा। फिर देवकी अपने पिता से मिली। वह अपने बडे भाई कंस से लिपट कर रोने लगी।

अपनी बहन को रोते देखकर क्रूरकर्मा कस का हृदय भी भर आया। बहन का स्नेह होता ही ऐसा है। बहन साक्षात् दया की मूर्ति होती है। वह सजीव करुणा की प्रतिमा होती है। भाई से तो साधारण लोग भी विरोध कर सकते हैं, किन्तु बहन से विरोध तो नृशस, आत्मघाती, पापी, दुराचारी ही करेंगे, जिन्हें धन का, प्राणो का, अत्यधिक मोह होगा। वस वैसे बडे उग्र स्वभाव का था, किन्तु विदा होते समय बहन के रुदन को देखकर उसका भी हृदय पानी-पानी होगा। उसने गुडिया के समान सजी-धजी अपनी नव विवाहिता छोटी बहन को प्यार दुलार तथा ममत्व के सहित पकड कर रथ पर चलाया। वसुदेव जी भी चुपचाप रथ पर बैठ गये। देवकी भैया भैया कहकर पुकार रही थी। स्नेह भरित हृदय से खडे-खडे कस यह सब देख रहा था। सूत सफेद चार घोडो की रश्मियो को पकडे हाथ मे तोत्र लिये कस की आज्ञा की प्रतीक्षा मे था, कि कब उसे आज्ञा मिले और कब वह रथ को हांके। सहसा कस को भगिनी के स्नेह के कारण एक सुमति सूझी। उसने सोचा—"मैं स्वय ही रथ को हांक कर देवकी को उसकी ससुराल तक पहुँचा आऊँ। इससे

वह बडी प्रसन्न होगी कि मेरे भाई मुझसे कितना प्यार करते हैं।' इस विचार के आते ही उसने सूत को हटने की आज्ञा दी।" सूत एक ओर हट गया। उछलकर कस सूत के स्थान मे वैठ गया और घोडो की रश्मियो को हाथ मे लेकर वहन की प्रसन्नता के लिये स्वय रथ हांकने लगा। उसके रथ के पीछे सुवर्णमण्डित बहुत स रथ चल रहे थे।

महाराज देवक अपनी पुत्री देवकी को अत्यधिक प्यार करते थे। पुत्री की प्रसन्नता के लिये उन्होने बहुत सी वस्तुएँ दहेज मे दी थी। सुवर्ण की मालाओ से विभूषित, पर्वत के समान डील-डौल वाले, अच्छी जाति के सुन्दर शिक्षित चार सौ हाथी उन्होने दिये थे, और पन्द्रह सहस्र उत्तम वर्ण के, दर्शनीय, वायु के समान वेग वाले, छरहरे सिन्धु देशीय घोडे, सुवर्ण मण्डित, सुदृढ मनोहर अठारह सहस्र रथ, उन्होंने पुत्री के पीछे-पीछे कर दिये थे। सुता की सेवा करने के लिये सुन्दर स्वभाव वाली, सुशीला सुन्दरी नवयुवती विचित्र वस्त्राभूषणो से विभूषित, दो सौ दासियाँ उन्होने दी थी। इन सब दहेज की वस्तुओ को लिये, गुडमुडी मारे विवाह के वस्त्रो मे समीप वैठी हुई अपनी बहू के साथ रथ मे बैठे हुए वसुदेव जी अपने घर के लिये चले। उनका साला कस बडे स्नेह से रथ को हांक रहा था। सब लोग मन ही मन उसके भगिनी-प्रेम की प्रशसा कर रहे थे। विदाई के बाजे बज रहे थे। शङ्ख तूर्य, मृदङ्ग दुन्दुभि आदि अनेक मङ्गल मय वाद्य एकसाथ बजकर एक विचित्र प्रकार की शोभा का विस्तार कर रहे थे। वर वधू की विदाई के समय के सभी कृत्य हो चुके थे।

देवकी की विदाई के बाजे ब्रह्मलोक को पार करके वकुण्ठ-लोक तक मे सुनाई दिये। भगवान् ने देखा, अरे जिस माता के उदर में जन्म लेना है उसी की विदाई के तो ये बाजे बज रहे हैं।

किन्तु, जिस यदुवंशी राजा बने कालनेमि मामा को मुझे मारना है, उसका यदि अपनी बहन के प्रति ऐसा ही वात्सल्य बना रहा, तो मैं भला कैसे उसे मार सकूँगा ? असुरों के हृदय मे भी यदि स्नेह उमड आया, तो वे मेरे द्वेषी, क्रोधी अनुगत कैसे हो सकते है ? इसीलिये किसी प्रकार इसका बहन से विरोध करा दो।'

भगवान् को बैठे ठाले एक न एक उत्पात सूझना ही रहता है। इस विचार के आते ही, उन्होंने कस को सचेत करने के लिये आकाशवाणी की। उस आकाशवाणी के सुनते ही रङ्ग मे भङ्ग हो गया। सबका उत्साह शिथिल पड गया। स्नेह के स्थान मे द्वष छा गया, प्रसन्नता के स्थान मे भय का साम्राज्य हो गया। आनन्द और उल्लास का स्थान शका, शोक और चिन्ता ने ग्रहण कर लिया।

इस पर शौनक जी ने पूछा—'सूतजी ! वह आकाशवाणी क्या थी ? उसमे कस को इतना भय क्यों हुआ ?''

सूतजी बोले— अजी महाराज ! प्राणिमात्र को अपने प्राण प्यारे होते हैं। सभी उपाय करके मनुष्य जीवित रहना चाहता है। आकाशवाणी ने जो कुछ कहा, उसे मैं पीछे कहूँगा। कथा कहते-कहते मेरा कण्ठ कुछ सूख सा गया है। तनिक आचमन कर लूँ, फिर आपको इस पुण्यप्रद प्रसग को सुनाऊँगा।'

छप्पय

श्री वसुदेव विवाह देवकी के संग कीन्हों।
देवक अधिक दहेज विदा बेला महँ दीन्हों॥
रोवत-रोवत चली देवकी पीछे वर के।
अश्रु विमोचन करत गये रथ तक सब घर के॥
सब परिजन रोवन लगे, नेह कस हिय हू जग्यो।
करथो सारथी दूर रथ, स्वयं हरषि हाँकन लग्यो॥

कंस को आकाशवाणी

[८१६]

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥*
(श्रीभा० १० स्क० १ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

पथ महँ सहसा सुनी कंस ने नभ तें बानी ।
"जा कूँ लैकें जाइ प्रेम ते ओ ! अज्ञानी ॥
ताको अष्टम पुत्र पकरि के तोइ पछारै ।
भरी सभा महँ खेंचि मञ्च तें निश्चय मारै ॥
कंस सुनत अति कुपित है, चल्यो देवकी वध करन ।
लखि उद्यम वसुदेवजी, सहमि सरल बोले वचन ॥

समस्त प्राणियों के सभी कर्म, सभी चेष्टायें, सभी व्यापार इसी उद्देश्य से होते हैं, कि हम सुख पूर्वक सदा जीते रहें। इस बात को सभी जानते हैं, कि जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। जिसकी उत्पत्ति है, उसका विनाश भी है। फिर भी प्राणी मरना नहीं चाहता। मृत्यु को टालना चाहता है। मन्त्र, तन्त्र, ओषधि,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! अपनी बहन देवकी को पहुँचाने के लिए पथ में जिस समय कंस रथ हाँक रहा था, उसी समय उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी—अरे, मूर्ख ! तू जिस बहन को रथ में बिठाकर ले जा रहा है, इसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक तुझे मारने वाला होगा।"

बल पुरुषार्थ सभी लगाकर वह अपने को काल-कवलित होने से बचाना ही चाहता है। इसीलिये वह दूसरो से डरता है दूसरो को मारकर स्वय जीना चाहता है। यही मोहन की मोहनी माया है। यही अखिलेश की अनिर्वचनीय अनादि अविद्या है। अपरोक्ष ज्ञान से, अहैतुकी भक्ति से ही इस माया का इस अनादि अविद्या का, आत्यन्तिक नाश हो सकता है, कंसारि की कृपा के अतिरिक्त इससे पार होने का अन्य उपाय नही हैं।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! रथो की गड़गड़ाहट, अश्वो की टापो की तड़तड़ाहट, हाथियो के घन्टो की घनघनाहट, नूपुर पाजेब, करधनी तथा चूडियो की खनखनाहट, तथा भेरी शङ्ख मृदङ्ग आदि वाद्यो की सुमधुर ध्वनियो के बीच कंस बडे उल्लास के साथ देवकी के रथ को हाँके हुए जा रहा था, कि सहसा मार्ग मे ही उसे आकाश से एक बडी ही सुस्पष्ट गम्भीर वाणी सुनाई दी। वह वाणी कहाँ से आ रही हैं, कुछ पता नही कौन कह रहा है, कुछ ज्ञात नही। वह अशरीरी वाणी थी। कंस को ही सम्बोधित करके वह कही जा रही थी। कंस के कान खडे हुए। वह एकाग्र चित्त से ध्यान लगाकर वह वाणी सुनने लगा। आकाशवाणी कह रही थी—"अरे मूर्ख ! तू जिस अपनी बहन को इतने प्यार-दुलार मे रथ मे बिठाकर पहुँचाने जा रहा है इसी के आठवें गर्भ से एक बालक उत्पन्न होगा, जो तेरा काल होगा, उसी के द्वारा तेरी मृत्यु होगी '

कहाँ तो बहन की विदाई के समय हर्ष से उसका हृदय भर रहा था, कहाँ अनुराग और करुणा के कारण उसका अन्त करण आर्द्र हो रहा था, कहाँ सहसा मृत्यु की बात सुनकर उसकी क्रूरता जाग उठी। प्रेम का स्थान प्रति हिंसा ने ग्रहण कर लिया 'अरे, इसी छोकरी का छोकरा मुझे मार डालेगा ? तब तो इस

विष की बेलि को स्वयं ही सींचना है। विषधर सर्पिणी को गले में डालकर उसके विष की वृद्धि करनी है। जब इसी का लड़का मुझे मारने वाला होगा, तब लड़का होने के पूर्व इसे ही मैं क्यों न मार डालूं ? बेलि के बढ़ने के पूर्व ही उसकी जड़ को क्यों न काट दूं ? चोर के उत्पन्न होने के पूर्व उसकी माँ को ही क्यों न मार दूं ? कार्य होने के पूर्व कारण का ही क्यों न नष्ट कर दूं । न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। इस देवकी का ही क्यों न मार दूं। जब यह रहेगी ही नहीं, तब इसका आठवाँ गर्भ कहाँ से होगा ? हत्या की जड़ को ही काट दो, गर्भाशय को ही समाप्त कर दो। बीज को ही भुनकर निर्जीव कर दो। अभी तो यह मेरे वश में ही है। उपस्थित को छोड़कर आगे की आशा क्या रखनी ! इस पर दया करना उचित नहीं।"

यही सब सोच-समझकर उसने रथ को रोक दिया। सारथी से कहा—"रश्मियों को शीघ्र ही सम्हालो।" हाथ उठाकर बाजे वालों से उसने कहा—"बाजे बजाना रोक दो।"

कंस की आज्ञाओं का अविलम्ब पालन हुआ। बाजे बन्द कर दिये गये। पीछे के रथ रुक गये। सारथी ने शीघ्रता से घोड़ों की रश्मियों को थाम लिया। कमर में लटकती हुई करवाल (तलवार) को कंस ने सड़ाक से खींच लिया। वसुदेव जी की बगल में बैठी देवकी की काली-काली मालती के पुष्पों की मालाओं से गुही सर्पिणी के समान लम्बी चोटी उसने उसका घूँघट हटाकर बायें हाथ से कस कर पकड़ ली और दायें हाथ से तलवार घुमाकर उसने ज्यों ही उसके सिर को धड़ से पृथक् करना चाहा, त्यों ही बीच में ही वसुदेवजी उस भोजकुल-कलङ्क महापापी निर्लज्ज कंस से बोले—"राजन् ! आप यह क्या कर रहे हैं ?"

कस ने लाल-लाल आँखें निकालकर क्रोध के स्वर में कहा—"इसे यम सदन पठा रहा हूँ।"

वसुदेवजी ने धैर्य के साथ कहा—"क्यों क्यों ? क्या बात है ? क्यों आप ऐसा महान निन्दनीय क्रूर कर्म करना चाहते हैं ?

कस ने क्रोध मे भरकर कहा—"यह क्या क्रूर कर्म है ? क्या तुमने आकाशवाणी सुनी नही ?"

गम्भीर होकर वसुदेवजी बोले—"राजन् ! मैंने सब कुछ सुना हैं। फिर भी आप जैसे यशस्वी, तेजस्वी, शूर-वीर व्यक्तियों को ऐसी क्रूरता शोभा नही देती। आप कोई साधारण पुरुष तो हैं नही, भोजवश की कीर्ति को बढाने वाले हैं। समस्त शूर-वीर आपके गुणो की भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं। ऐसे परम-प्रख्यात शूरवीर होकर भी आप एक नही तीन-तीन महापाप करने को उद्यत हो रहे हैं।"

कस ने देवकी की चोटी को पकड़े ही पकड़े कहा—"मैं कौन से तीन-तीन पाप कर रहा हूँ ?"

वसुदेवजी बोले—"सुनिये, विवाह मङ्गल का उत्सव है। जो किसी के विवाह मे विघ्न डालता है, वह रौरव आदि नरको में जाता है। इसलिये शक्ति भर दूसरो के विवाह मे सहायता देनी चहिये। विघ्न तो कभी डालना ही न चाहिये। नव वरवधू को कभी कुवाच्य भी न कहना चाहिये। एक तो आप विवाह मे विघ्न डाल रहे हैं। शास्त्रकारो ने स्त्री को सदा अवध्या बताया है। स्त्री से चाहे जैसा अपराध हो जाय, उसका बध कभी न करना चाहिये। आप स्त्री-वध कर रहे हैं। स्त्री भी सामान्य नही हैं-आपकी छोटी बहिन है सीधी और सरल है, अभी-अभी उसका विवाह हुआ है। दूसरा स्त्री-वध का पाप आप कर रहे हैं। तीसरा पाप यह कि आपके पिता चाचा सब खड़े

हैं। ये अपनी पुत्री को प्रेमपूर्वक विदा कर रहे हैं। आप इनका अपमान कर रहे हैं। सन्तान पिता की आत्मा ही कही गई है। इसलिये आप देवकी का वध नहीं कर रहे हैं, अपने पितृव्य देव का वध कर रहे हैं। अतः हे वीर ! आप ऐसा निन्द्य, क्रूर कर्म करने का कभी स्वप्न मे भी साहस न करें।"

कुछ सम्मल कर कंस बोला—"वसुदेवजी आप बात तो यथार्थ कह रहे हैं। किन्तु देखिये, अपने प्राण सबको प्यारे होते हैं। सम्मुख मृत्यु दिखाई देती हो, तो बुद्धिमान को यथाशक्ति उसे हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं मानता हूँ, यह मेरी बहन है। किन्तु अपने ही शरीर का कोई अंग सड जाय, और उससे अन्य अंगों को हानि की सम्भावना हो, तो बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उस अंग को काट कर अन्य अंगो को रक्षा करे। जब इसका लडका मुझे मारने वाला होगा, तो मैं ही इसे पहिले से क्यों न मार दूँ। इससे आपकी कोई विशेष हानि भी नहीं। बारह पत्नियाँ तो आपके हैं ही, एक न सही।"

वसुदेवजी ने कहा—"भाई ! देखो, सुनो हमारी बात। तुम चाहते हो, तुम्हारी मृत्यु कभी न हो। यह असम्भव बात है। जिसने जन्म लिया, वह अवश्य मरेगा। हिरण्यकशिपु ने मृत्यु से बचने के लिये कितने उपाय सोचे, कितने वर माँगे। अन्त मे उसकी भी मृत्यु हुई ही। एक असुर ने वर माँगा, पृथ्वी मे कहीं भी मेरी मृत्यु न हो', तो उसे एक पक्षी उडा ले गया आकाश मे उसकी मृत्यु हुई। एक असुर ने वर माँगा, मेरी मृत्यु पृथ्वी पर न हो, समुद्र में हो, इसीलिये वह कभी समुद्र के समीप नहीं जाता था, पर्वत पर रहता था। सहसा वहीं समुद्र उमड आया पहाड डूबने लगे। उसे एक बडा भारी द्वीपाकार कछुआ दिखाई दिया। जल से बचने को वह उसकी पीठ पर चढ

गया। तुरन्त कछुआ जल में डूब गया और वह असुर मर गया। इस प्रकार एक नहीं, उसके असंख्य दृष्टान्त हैं। संसार में जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। प्राणी जब उत्पन्न होता है, मृत्यु को साथ लिये ही उत्पन्न होता है। समय आने पर कोई न कोई निमित्त बन जाता है। बिना मृत्यु के कोई किसी को मार नहीं सकता। जब मृत्यु आ जाती है, तब किसी को उससे बचा नहीं सकता। महाराज नहुष को जन्म के समय ही हुण्ड दैत्य अपना मारने वाला समझ कर उठा ले गया था, किन्तु वह उन्हें मार न सका। जिस रसोइये को उसने उसे मार कर बनाने को दिया था, वह उसे वशिष्ठ जी के आश्रम पर छोड़ आया। महाराज सगर जब गर्भ में थे, तभी उनकी माता की सपत्नियों ने उसे विष दे दिया था, कि गर्भस्थ बालक मर जाय। किन्तु उनकी तब मृत्यु नहीं थी, वे गर के सहित ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुए। इसलिये उनका नाम सगर रखा गया। वे महान प्रतापी हुए। जब उनका समय आया, तब वे भी काल-कवलित हो गये। महाराज प्रियव्रत, मान्धाता पृथु, बलि रावण ये एक-से-एक बली राजा हुए हैं। मृत्यु ने उनको भी नहीं छोड़ा। आज हो अथवा सौ वर्ष के पश्चात्, प्राणियों की मृत्यु तो निश्चित ही है। प्राणी तो कर्मों के अधीन है। जिस देह का प्रारब्ध कर्म समाप्त हो गया, फिर वह लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं टिक सकता। इस शरीर को त्याग कर उसके अभिमानी जीव को अपने कर्मानुसार विवश होकर पुनः अन्य देह ग्रहण करनी पड़ती है। अतः मृत्यु के भय से अनर्थ करना, पाप करना, उचित नहीं।"

कंस ने कहा—"महाराज वसुदेव जी! प्राणि-मात्र मृत्यु से बचने का यथासाध्य प्रयत्न करता है। मैं तो मनुष्य

हूँ, क्रूर हूँ, । आप एक चींटी को उँगली से दबाइये, वह शक्ति-भर बचने की चेष्टा करेगी, काट खायगी और शरीर में प्राण रहते बचने के उपाय काम में लायेगी। पुरुष को पता लग जाय कि इस कारण मेरी मृत्यु बदी है, तो वह उस कारण को मिटाने का यथासाध्य प्रयत्न करेगा ही। जब मुझे पता लग गया, कि इसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक से मेरी मृत्यु है तब मैं इस झझट को अभी क्यों न काट दूं ? रोग के मूल को ही क्यों न मेट दूँ, जिससे उपद्रव उठे ही नहीं ?"

वसुदेव जी ने कहा—"राजन् ! मृत्यु को मेटने की सामर्थ्य किसमें है ? जीव तो मरने के पूर्व ही अपने लिये दूसरी योनि तैयार कर लेता है, शरीर त्याग के पूर्व ही उसका दूसरा शरीर बन जाता है, जैसे हम पिछले पैर को तब उठाते हैं, जब अगले को जमा लेते है। आपने तृणजलूका नाम एक कीड़ा देखा होगा—वह जब अगले पर को एक डाल पर जमा लेता है. तब पहली डाल को छोडता है। उसी प्रकार जीव अपने कर्मानुसार एक देह से दूसरी देह मे जाता है। नये शरीर से नरक स्वर्ग भोगता है।"

कंस ने कहा—"आप यह कैसी बातें कह रहे हैं ? किसी ने जिस देह से पाप-पुण्य किया है, वह देह तो वहीं पड़ी रह जाती है। उसके किये दुख सुख को भोगता है दूसरा शरीर। यह तो वही बात हुई कि देवदत्त ने किसी का वध किया, यज्ञदत्त को फाँसी पर लटका दिया। दुख-सुख उसी देह को होना चाहिये, जिससे पाप-पुण्य किया।"

वसुदेव जी ने कहा—भैया, तुम सोचो, क्या भला-बुरा कर्म शरीर करता है ? शरीर तो जड है, उसमे स्वयं भला बुरा करने की शक्ति कहाँ है। सुख-दुख तो कर्ता के अभिमान से होता है।

राजा की सेना की जय पराजय तो राजा की ही मानी जाती है। इसका तो तुम नित्य ही सोते समय अनुभव करते हो। स्वप्न में हमे जाग्रत के संस्कारो के कारण देखे सुने पदार्थ दिखाई देते है। स्वप्न मे कोई बन्दर आता है, हमे काट लेता है तो बडा दुःख होता है। अब आप सोचे। स्वप्न मे जो बन्दर आया है, उसके देह नही है हमे जो उसने काटा है, उसका चिन्ह भी हमारे जाग्रत के शरीर मे कहा नही है। फिर भी हमे दुःख तो होता ही है। जागने पर भी चित्त धडकता रहता है। इससे अनुमान होता है कि जीव ने वह दुःख स्वप्न शरीर से भोगा। दुःख-सुख, चाहे स्वप्न-शरीर से भोगो या जाग्रत शरीर मे, स्थूल शरीर से भोगो या सूक्ष्म शरीर से, भोक्ता तो जीव ही है। इस स्वप्न शरीर मे जाग्रत शरीर के सदृश आत्म भाव हो गया था। उसे भी जीव 'मेरा ही शरीर' कहता था। उस समय वह अपने जाग्रत काल के शरीर को भूल गया था। इसी प्रकार इस शरीर का अन्त काल उपस्थित होने पर यह विविध प्रकार के विकारो वाला मन अपने प्रारब्ध कर्मों की प्रेरणा से जैसी भावना करता है वैसा ही बन जाता है। माया द्वारा पचभूतो के विविध प्रकार के निर्मित शरीरो मे वह जिस-जिसकी ओर दौडता है, उनमे जिस-जिसको उपलब्ध करता है, उसी-उसी मे आत्म भावना करके वह जन्म ग्रहण करता है।"

कंस ने कहा—"जीव अपने आप कर्म करके बन्धन मे क्यो फँस जाता है? इन ससारिक विषयों मे आसक्त होकर वह चौरासी के चक्कर में क्यो पड जाता है?"

वसुदेवजी ने कहा—"जीव का स्वभाव तो बँधन का नही है। वह तो नित्य है। किन्तु माया से रचे हुए इन मायिक विषयों के ससग से चञ्चल-सा प्रतीत होता है। जैसे किसी

परात मे जल भरा है, उसमे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड रहा है। परात को जलवायु लगने से हिल रहा है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा भी हिल रहा हो। सरोवर के जल मे वायु लगने म हिलोरे उठती हैं, तो उसमे प्रतिबिम्ब सूर्य भी लहरो के साथ हिलता हुआ सा दिखाई देता है। वास्तव मे सूर्य-चन्द्र मे तथा उनके प्रतिबिम्ब म चञ्चलता नहीं है। यह तो जलवायु के ससग स प्रतीत होती है। उसी प्रकार जीव मे चञ्चलता नहीं, वह माया रचित पदार्थों के ससर्ग स मोहित -सा हो जाता है। जीव मरने से डरता है। आप ही सोचिये, जीव को कौन मार सकता है। वह तो अमर है। रही शरीर की बात। सो वह तो स्वत ही क्षणभगुर है। इन्ही सब बातो को सोचकर कल्याणेच्छुक जीव को कभी किसी से द्वेष न करना चाहिये। जो दूसरो से द्वेष करता है, उसे स्वय दूसरो से भय रहता है। मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। इसलिये भैया, तुम अपनी इस बहन के वध स निवृत्त हो जाओ। राजन्! सोचिये छोटी बहन की कभी हत्या की जाती है! देखो, यह कैसी भोली भाली है देखने मे कठपुतली के समान, सजी-सजाई गुडिया के समान, दिखाई देती है। छोटी बहन तो पुत्री के समान मानी गई है। आप तो क्षत्रिय हैं। जो प्राणियो को दुख से बचावे, दीनो की रक्षा करे वही क्षत्रिय है। यह बेचारी बालिका कैसी कृपिणा है! अभी अभी इसका विवाह हुआ है। यह वैवाहिक माङ्गलिक चिन्हो से युक्त है। वीर होकर ऐसी बच्ची का वध? छि-छि! यह तो अत्यन्त ही घृणित काय है। आप ऐसा पाप मत करे, इस अबला को न मारे।'

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! इस प्रकार वसुदेवव जी अनेक युक्तियो से शाम, दाम और भेदादि नीति का अवलम्बन

करके कस का विविध प्रकार से समझाया, किन्तु वह तो खल था, शरीर को ही सब कुछ समझने वाला असुर था। वह अपने निश्चय से हटा नहीं। जब उसने देवकी के वध का निश्चय बदला नहीं, तब वसुदेव जी ने दूसरी युक्ति उस दुष्ट के हाथ से देवकी को बचाने की सोची।

छप्पय

शूर कुलीन प्रवीन भोज कुल भूषन सज्जन।
क्यों कायरता करहु बहिन कूं मारो राजन॥
अरे जीव तू नित्य देह क्षणभंगुर नश्वर।
जनम्यो सो ध्रुव मरे देर महँ अथवा सत्वर॥
भगिनी भोली भययुता, अबला दुहिता के सरिस।
थर-थर काँपति देहु अब, अभयदान तजि द्वेष रिष॥

वसुदेव जी की प्रतिज्ञा

[८२०]

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद् वागाहशरीरिणी।
पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥*

(श्रीमा० १० स्क० १ अ०, ५४ श्लो०)

छप्पय

कंस कहे—'वसुदेव! सुनी नहीं नभ की बानी?
कौन मृत्यु कूँ प्यार करे प्रानी अज्ञानी?
सुनि बोले वसुदेव—'देवकी तें नहिँ कछु डर।
अष्टम सुत तें मृत्यु कही सोई भय को घर॥
अच्छा, हौं यह प्रन करहुँ, अष्टम सुत की का कथा।
जन्मत सुत सौंपों सबहिँ, होहि न तुम कूँ अब व्यथा॥

जो बात बीत गई वह तो बीत ही गई। उसके लिये सोच करना व्यर्थ है। जो होने वाली है, वह अभी भविष्य के गर्भ मे निहित है। उसकी चिन्ता करके दुःखित होना मूर्खता है। मनुष्य को तो सदा वर्तमान की चिन्ता करनी चाहिये। मन मे कोई पाप करने की प्रबल इच्छा हो जाय, तो जैसे बने तैसे, उस

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब कंस किसी प्रकार भी देवकी के वध से निवृत्त नहीं हुआ, वसुदेव जी उससे बोले—'हे सौम्य! आकाशवाणी ने जो कुछ भी कहा, उसके अनुसार तुम्हें देवकी से तो साक्षात् कोई भय है ही नहीं। तुम्हें तो उसके पुत्र से भय है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि एक ही पुत्र को नहीं, देवकी के सब पुत्रों को मैं तुम्हें दे दूँगा।'"

समय को टाल देना चाहिये। इसी प्रकार पुण्य करने की इच्छा हो और अपने पास द्रव्य हो तो उसे तत्काल कर देना चाहिये। फिर यह विचार करे, कि अभी हम सब व्यय कर देंगे, तो आगे क्या होगा। भगवान् के यहाँ कुछ कमी तो है ही नहीं, जो उसका भण्डार चुक जाय। जिसने अब दिया है वह आगे भी देगा। साराश यही है कि बुद्धिमान व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यह है कि वर्तमान को बना ले भूत भविष्य से शिक्षा ग्रहण करे चिन्ता न करे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब वसुदेव जी कंस को सब प्रकार समझाकर हार गये, किन्तु उस दुष्ट की बुद्धि में एक भी बात न बैठी तब वे सोचने लगे- 'यह दुष्ट अब समझाने बुझाने से तो मानने का नहीं। इसने अपनी बहन की एक हाथ से चोटी पकड़ रखी है, दूसरे हाथ में नग्न तरवार है। वैसे तो यह मानेगा नहीं। जैसे भी माने तैसे इससे अब मना लेना चाहिये। इस तत्काल आई हुई वर्तमान विपत्ति को जैसे बने तैसे टाल देना चाहिये। होगा तो वही, जो होने वाला होगा।"

मनुष्य का अधिकार तो कर्म करने में है। कंस भी अनुचित ही कर रहा है। बुद्धिमान पुरुष का जहाँ तक वश चले, जहाँ तक उसका बल पुरुषार्थ साथ दे, तहाँ तक उसे आई हुई मृत्यु को टालना ही चाहिये। प्रयत्न करने पर भी यह न टले तो फिर उसमें किसका दोष है?

अब एक ही उपाय है। मैं इससे यह प्रतिज्ञा करूँ कि देवकी के गर्भ से जो पुत्र होंगे, उन सबको मैं तुम्हें दे दिया करूँगा। मेरा विश्वास है इस बात को यह स्वीकार कर लेगा। इसमें उसे कुछ आपत्ति न होगी। इसके अतिरिक्त

उपाय है भी तो नहीं। इस समय आगे की नहीं सोचनी है, मुख्य कार्य इस अबला के प्राण बचाना है।

कौन जानता है, जब तक देवकी के पुत्र हो, तब तक यह दुष्ट कंस मर ही जाय। न मरे तो इसकी बुद्धि ही बदल जाय, बहिन भानजो पर दया ही आ जाय।

अथवा मेरे पुत्र ही उत्पन्न न हो। सम्भव है कन्या ही कन्या उत्पन्न हो जायें।

आकाशवाणी अन्यथा भी नहीं हो सकती। सम्भव है, मेरे पुत्र उत्पन्न होकर इसे मार ही डालें, तो समस्त यदुकुल का कोढ ही धुल जाय, सब का सङ्कट हो कट जाय।"

इन्हीं सब बातों को सोच-विचार कर वसुदेव जी बोले—"अच्छा, राजन्! हमारी एक बात सुनें। आप इस बेचारी देवकी को क्यों मारना चाहते हैं? इससे तो आपको कोई भय नहीं। आकाश-वाणी ने यह तो नहीं कहा कि देवकी आपका वध करेगी।"

सूखी हँसी हँसते हुए कंस ने कहा—"अजी, इसके पुत्र से तो भय है! यह तो एक बात हुई—चाहे बेल से भय अथवा उसके फल से भय। बेल ही न रहेगी, तो उस पर विषयुक्त फल ही न रहेंगे।"

वसुदेव जी ने कहा—राजन्! बेल घनी हो छाया वाली हो और उसके फल विषैले हो, तो बुद्धिमान को उनके फलो को नष्ट कर देना चाहिए। इसी प्रकार आप देवकी के आठवें पुत्र को मार डालें। आपको तो आठवें पुत्र से ही भय है। किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, इसके गर्भ से जितने भी बालक होंगे, मैं उन सब को लाकर आपको दे दिया करूँगा। फिर चाहे आप उन

सब को मार डालें, चाहे उनमे से आठवें को ही मारें। यह तो आपकी इच्छा के ऊपर निभर है।

भावी की प्रबलता! यह युक्ति कस के मन मे बैठ गई। उसने सोचा— 'वसुदेव जी सत्य ही तो कहते हैं। इस बेचारो बच्ची ने तो मेरा कुछ बिगाडा नही है। आकाशवाणी का तो कथन है कि इसका आठवां पुत्र मुझे मारने वाला होगा। मैं उसे पैदा होते ही मार दूंगा। यह कहो कि वसुदेव जी से कही छिपा लेंग सो पहले तो वसुदेव जी कभी असत्य भाषण करते नही। मानलो, छिपाने का प्रयत्न भी करें, तो क्या मुझसे कोई कुछ छिपा सकता है? इसलिये वसुदेव जी का प्रस्ताव युक्ति युक्त है' यही सब सोच समझकर उसने करवाल को कोश मे रख लिया। देवकी की चोटी उसने छोड दी और बोला— देखो, जीजाजी, गडबडी न हो। समय-समय पर मुझे सुतो को समर्पित करते रहना।'

वसुदेव जी न सरलता के स्वर मे कहा—'ना, भैया! गड बडी क्यो होगी! क्या तुम्हे मेरा विश्वास नही?'

कस ने कहा— 'आप पर मुझे विश्वास न होता तो मैं अपनी मृत्यु की जननी इस देवकी को छोडता ही क्यो। किन्तु पुत्र स्नेह से ऐसा होता है कि मनुष्य सब प्रतिज्ञायें भूल जाता है। मैंन तो आपकी बात मान ही ली।''

वसुदेव जी उसकी प्रशसा करते हुए बोले—'क्या कहना है आपकी सज्जनता का? आपके सदृश उत्तम पुरुष और कौन होगा? भगवान् आपका कल्याण करें।'' यह कहकर वसुदेवजी देवकी को साथ लेकर उसी रथ पर अपने घर चले आये। कस वही से उदास मन, दूसरे रथ पर चढकर अपने घर लौट आया। इधर काल क्रम से सर्व देवमयी देवकी देवी ने अपने गर्भ

से प्रत्येक वर्ष एक-एक करके आठ और एक कन्या को जना दिया।'
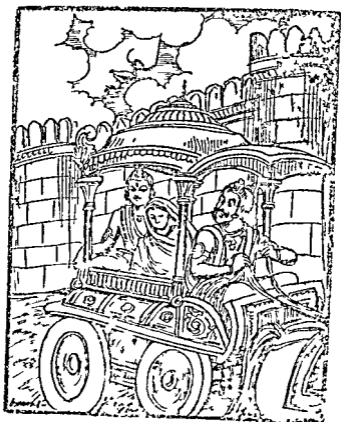
इस पर शौनक जी ने कहा सूतजी! क्षमा करें, हमें एक शंका है। आप तो पीछे कह आये हैं, कि उस समय पृथ्वी पर वसुदेव जी के समान सदाचारी धर्मात्मा पुरुष दूसरा कोई था ही नहीं किन्तु हमें तो इस बात में सन्देह होता है। देखिये बारह पत्नियाँ तो उनके घर में थीं, सैकड़ों पुत्र भी होंगे, बहुत

से विवाह योग्य भी होगे। फिर भी सिर पर मौर बांधकर जामा पहिनकर, दूल्हा बनके, तेरहवाँ विवाह करने वे आ धमके। इससे हम उन्हे कैसे जितेन्द्रिय और सदाचारी समझें। जब वे यह बात जानते थे कि देवकी के जो पुत्र उत्पन्न होगे, कंस मार ही डालेगा तब फिर उन्होने देवकी जी से पुत्रो को उत्पन्न ही क्यो किया ? दो चार वर्ष मे पुत्र हो जाता, सो भी बात नही। कोई वर्ष नही गया जिसमे देवकी जी ने पुत्र पैदा न किया हो। अब हम ऐसे आदमी को कैसे सदाचारी और जितेन्द्रिय कहे ?"

यह सुनकर सूतजी हँस पडे और बोले—"बडी सुन्दर शका आपने की भगवन् ! ये कलयुगी अल्पवीर्य क्षुद्र प्राणी ऐसी ही शका करते है। इनका हृदय इतना क्षुद्र होता है कि ये उससे ऊँची बात सोच ही नही सकते। भगवन् ! पहले लोगो मे अमित वीर्य होता था उसका अनुमान ये कलियुगी अल्प वीर्य प्राणी नहीं कर सकते। इन लोगो को एक पत्नी को सन्तुष्ट करना ही कठिन हो जाता है। पहले लोगो के सैकडो सहस्रो पत्नियाँ होती थी और वे सभी को सन्तुष्ट रखते थे। मर्यादा और सिद्धान्त की बात तो दूसरी है किन्तु नियमानुसार एक पुरुष की बहु पत्नियाँ हो सकती हैं लेकिन एक पत्नी के बहु पति नही हो सकते। एक स्त्री एक वर्ष मे एक ही सन्तान उत्पन्न कर सकती है। वरदान आदि इसके अपवाद हैं किन्तु सामर्थ्यवान पुरुष एक वर्ष मे तीन सौ साठ और इससे अधिक भी सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है। फिर वसुदेव जी जैसे पराक्रमी अमोघ वीर्य व्यक्ति के यहाँ तेरह पत्नियाँ थी, तो इसमे बुराई की बात ही कौन सी थी ?"

रही सन्तान न उत्पन्न करने की बात। सो, गृहस्थी के लिये

ऋतुमती भार्या के समीप गमन न करना एक बड़ा भारी पाप है। सन्तान की इच्छा वाली ऋतुमती भार्या के समीप उसे जाना ही चाहिये। वेद की आज्ञा है "ऋतौ भार्यामुपेयात्।" ये तीन शब्द हैं—ऋतुकाल भार्या, और जाना। तीनों मे एव लगाओ। अर्थात् ऋतुकाल मे ही भार्या के समीप जाना चाहिये, अन्य समय मे नहीं। अपनी ही भार्या मे गमन करना चाहिये अन्य मे नहीं। जाना ही चाहिये, ऋतुकाल को व्यर्थ न बनाना चाहिये। गर्भ रहें न रहे, यह ईश्वरेच्छा है।

वसुदेव जो अमोघवीर्य थे, उनका गमन कभी व्यर्थ तो होता ही नहीं था। इसीलिये उनके इतनी सतानें थीं और इसी वेद वाक्य की आज्ञा से वे ऋतुकाल मे गमन करते थे, उसी से देवकी जी के नौ सन्तानें हुईं।'

शौनक जी ने कहा—"सूतजी! हम यह पूछते हैं कि अच्छा, उनका पुत्रोत्पादन धर्म था फिर भी उन्होंने देवकी जी को बचाया क्यों? आठ पुत्रों को देकर एक पत्नी को बचाना यह कहाँ का न्याय है?"

सूतजी ने कहा—"अब महाराज इस विषय मे तो हम क्या कहें! वसुदेव जी ने तो उपस्थित मृत्यु को ही टाला। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि मुझे पुत्र देने ही होंगे। उन्होंने अनेक कल्पनायें की थीं फिर सोचा—"यह कंस समस्त यादवों को यातना देगा। इसके बदले मेरे आठ पुत्र ही मारे जाएँ तो सब का भला होगा। कंस का वध सभी यादव चाहते थे। वह दुष्ट था खल प्रकृति का था। कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं था। यदि पुत्रों को देकर भी जाति का भला हो तो पुत्रों की बलि देना श्रेष्ठ है। वसुदेव जी का तो अत्यन्त उच्च आदर्श रहा होगा।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी! इस प्रकार का आदर्श

तो सराहनीय है। फिर भी एक शका हमारे मन मे रह ही गई। देखिये ससार म पुत्र शोक सबमे बडा बताया गया है। स्वाभाविक मृत्यु से भी जिसका पुत्र मर जाता है उसे भी कितना क्लेश होता है। सो, वसुदेव जी तो अपने छ-छ पुत्रो को अपने हाथ से मारने को दे आये और कस ने उनके सामने—उनके देखते-देखते—उनका वध किया। इस इतनी भारी विपत्ति को आठ-आठ बार वसुदेव जी ने सहन कैसे किया ?"

इस पर सूतजी बोले—' महाराज, धर्म मे बडी शक्ति होती है। धार्मिकता सहनशीलता ही तो सिखाती है ? जो धर्म पर दृढ है, वे धर्म रक्षा के लिये कौन से कठिन से-कठिन दुखो को नही सह सकते ? अर्थात् वे धम के लिये सब कुछ सह सकते है।"

शौनक जी बोले—' सूतजी वसुदेव जी को तो आशा लगी ही रहती होगी, कि कस सम्भव है, मेरे इस बच्चे को छोड दे या कोई दया करके छुडा दे।'

सूतजी बाले "महाराज जिनकी तत्त्वाधान मे पूर्ण निष्ठा हो गई है वे किसी भी बात की अपेक्षा नही रखते।"

इस पर शीघ्रता से शौनक जी ने पूछा—'अच्छा, सूतजी ! हम एक बात पूछते है। कस अन्ततोगत्वा मनुष्य ही तो था। वह अपनी बहन के सद्य.जात छोटे-छोटे निरीह बच्चों को सहसा मार कैसे डालता था ? क्या उस दया नही आती थी ? वह ऐसे क्रूर कर्म मे कैसे प्रवृत्त होता था ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! आप खलो की कुछ न पूछें। ससार मे ऐसा कौन-सा कुकर्म है, जिसे नीच पुरुष न कर सकते हो। वे अपने माता-पिता, भाई, पुत्र, सगे सम्बन्धी, गुरुजन, इष्टमित्र—सभी का निर्मम होकर वध कर सकते है, उन्हे विष दे सकते है, शूली पर चढा सकते है, माता, बहन-

बेटियों और पुत्र-बन्धुओं के साथ गमन कर सकते हैं, ब्रह्महत्या, सुरापान तथा जो भी नीच से नीच कार्य हैं, उन्हें इन्द्रिय सुख, जीवन तथा राज्य के लिये प्रसन्नता पूर्वक कर सकते हैं।"

शौनक जी ने फिर कहा—"सूतजी ! मुझे तो भगवती देवी देवकी के ऊपर दया आती है। वे अपने हृदय के टुकडे को अपने ही हाथ वध कराने को कैसे देती होंगी ?"

सूतजी आह भरकर बोले—"महाराज, यदि देवी देवकी में इतनी ही क्षमता न होती, यदि उन्होने अपनी इन्द्रियो पर इस प्रकार विजय प्राप्त न कर ली होती, तो उन्हे भगवान् की जननी बनने का देव दुर्लभ पद कैसे प्राप्त हो सकता था ? जितेन्द्रिय पुरुषो के लिये किस वस्तु का त्यागना कठिन है ! वे तो सत्य के लिये, धर्म के लिये, पुत्र परिवार तथा प्राणो तक का परित्याग करने मे आगा पीछा नही करते।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो सूतजी ! हमे सब कथा सुनाइये। वसुदेव जी ने किस प्रकार अपने पुत्र ला-लाकर कंस को दिये ?"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! अब मैं उसी कथा को सुनाता हूँ। जिस प्रकार वसुदेव जी ने कंस को अपने पुत्र प्रदान किये थे, वह भी सुनाता हूँ।"

छप्पय

कंस कर्यो विश्वास बहिन निज फिर नहिँ मारी।
आये घर वसुदेव देवकी दुखित विचारी॥
प्रथम पुत्र वसुदेव देवकी जाया जायो।
भयो न मन महँ मोद, हरष हिय महँ नहिँ छायो॥
अति कोमल अति सरल शिशु, सुन्दर सरसिज-सम वदन।
सुमिरि कंस पन मातु को, अति ई कातर भयो मन॥

वसुदेव जी द्वारा कंस को पुत्र प्रदान

[८२१]

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १ अ० ५७ श्लो०)

छप्पय

बोले श्रीवसुदेव—प्रिये ! मत मोह बढ़ाओ ।
निज पन पूरन करूँ कुमर कूँ अबई लाओ ॥
बिलखि हिये तें लाइ प्याइ पय सुत मुख चूम्यो ।
कंपित कर है गये मातु को माथो घूम्यो ॥
बिलखत जाया छोड़ि सुत, लयो अंक वसुदेव पुनि ।
क्रूर कंस के गये ढिँग, बिहँस्यो सुत को जन्म सुनि ॥

साहित्य मे जहाँ भाव और विभाव का वर्णन है वहाँ एक भाव-सन्धि बताई गई है। दो विरोधी भाव एक साथ ही हृदय मे आ जायँ, उसे भाव सन्धि कहा है। पुत्र का जन्म हो और उसकी जननी की दशा चिन्ताजनक हो तो पिता के मन मे पुत्र-जन्म का हर्ष जन्य भाव भी है और पत्नी के रुग्ण होने का शोक भी है। किन्तु भावी दुःख का प्रथम ही पता हो तो वह सुख भी अत्यधिक दुःख का ही हेतु हो जाता है, उससे भावो की सन्धि न होकर वह सुख दुःख का ही बढाने वाला होता है।

---

* श्री शुकदेव जी कहते है—'राजन् ! वसुदेव जी ने अपना कीर्तिमान् नामक प्रथम पुत्र चित्त मे अत्यन्त दुःख मानकर भी झूठ से अत्यन्त डरने के कारण कंस को दे दिया।'

जैसे किसी को प्रथम से ही ज्ञात हो जाय, कि अमुक लडकी विवाह होते ही विधवा हो जायगी तो उसका विवाह-जन्य सुख, दुःख की ही वृद्धि करता है। वह विवाह कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से भले ही किया जाय, किन्तु उसके करने मे कोई आनन्द नही, विवाह सम्पन्न होने पर एक निश्चिन्तता का अनुभव नही, वह तो जान बूझकर विपत्ति के मुख मे प्रवेश करना है। ऐसे दु खजनक कार्य भी कर्त्तव्यवश, धर्म के भय से, समाज के आतक से, मनुष्य-स्वभाव वश करने ही पडते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी-दोनो को ही ऐसी स्थिति मे से होकर निकलना पडता है, अन्तर इतना ही है, अज्ञानी रो-रोकर दु ख को और बढाते हैं, ज्ञानी अपने ज्ञान के द्वारा चित्त को समझा लेते है।

श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वसुदेव जी देवकी को विवाह करके अपने घर ले आये। समय आने पर भगवती देवकी ने गर्भ धारण किया। प्रथम गभ धारण कर लेने पर घर की स्त्रियो को, पति-पत्नी को, दोनो के परिवार वालो को तथा अन्य सगे-सम्बन्धियो को कितनी प्रसन्नता होती है! स्थान स्थान से गर्भिणी के लिये उपहार आने लगते हैं। आठवें-नवें महीने से ही उत्सव आरम्भ हो जाता है गर्भिणी के मातृ गृह से सुन्दर-सुन्दर मिठाइयाँ, बच्चे के लिये खिलौने आदि आने लगते है। प्रीतिभोज होता है और मन मे कितना उत्साह, कितनी उमङ्गें कितनी आशायें, कितनी अभिलाषायें होती हैं, इन्हें बिना गृहस्थ बने, केवल सुन पढकर कोई अनुभव नहीं कर सकता। स्त्री अब तक तो पत्नी थी भार्या थी अब वह जाया हो जायगी। उसका पति उसके पेट से स्वय पुत्र बन कर उत्पन्न होगा। अब उसका मान-सम्मान, अधिकार—सब बढ जायेंगे। अब वह माता हो जायगी। उसका पति भी उसे अब ब्याज से, पक्षान्तर से, माता

कहने लगेगा। वह मेरी घरवाली, मेरी पत्नी, या मेरे घर से, न कहकर लल्ला की माँ कहेगा। बच्चे से यह न कहकर कि जा मेरी पत्नी के पास जा, यही कहेगा—"माँ के पास चला जा। माँ को पुकार।" इसीलिये मातृ-पद को अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण बताया है। जो पत्नी माता बन गई, अब वह लम्बा घू घट नही मारती, पति से डरती भी नही। अब तो वह जननी हो गई। प्रथम गर्भ धारण करने पर स्त्रियो को अत्यन्त प्रसन्नता होती है, उसी प्रसन्नता मे तो वे गर्भ धारण के विविध कष्टो को, प्रसव की असह्य पीडा को, सहर्ष सहन करती है, किन्तु भगवती देवकी को प्रथम गर्भ धारण करके भी प्रसन्नता नही हुई। वे जानती थी, "मेरे पति सत्य-प्रतिज्ञ हैं। जो बात वे एक बार मुख से कह देंगे, उसका प्राणो से पण लगाकर पालन करेंगे। उस प्रण से वे कभी भी विचलित न होगे। मेरे जो सन्तान होगी, उसे वे बिना माँगे, मेरे भाई कस को दे आवेंगे। वह इतना क्रूर और निर्दयी है कि वह बच्चे को देखते ही मार डालेगा। वह असुतृप -असुर है। प्राणो का उसे अत्यन्त मोह है। मृत्यु से बचने के लिये वह सब कुछ कर सकता है। उससे कुछ अच्छी आशा रखना निराशामात्र ही है। इन्ही सब बातो को सोच सोचकर देवकी देवी दु:खी बनी रहत । इस प्रकार शनै: शनै: नौ महीने बीत गये। दशवें महीने मे उन्होने एक अत्यन्त ही सुन्दर पुत्ररत्न का प्रसव किया।

दासी ने वसुदेव जी से बाहर आकर कहा—"बधाई है महाराज ! छोटी रानी जी के यहाँ पुत्ररत्न का जन्म हुआ है।"

अन्यमनस्क भाव स वसुदेव जी ने कहा—"काहे का बधाई है, हमारी तो लोकहँसाई है। सब मुझे बुरा कहग, कि यह पुत्रघाती है। किन्तु, करूँ क्या, कर्त्तव्य का पालन तो करना

ही पडेगा। प्रण तो निभाना ही होगा। अब विलम्ब करने की आवश्यकता नही। जितना ही विम्लब होगा, उतना ही मोह बढेगा।" यह कहकर उन्होने अङ्गरखा पहना, पगडी धारण की, उस पर चीरा बाँधा, कलँगी लगाई, दुपट्टा कन्धे पर डाल कर वे भीतर गये और बोले—'प्रिये ! क्या समाचार है ?'

देवकी देवी ने कष्ट के साथ कहा—'प्राणनाथ ! पुत्र उत्पन्न हुआ है। देखिये, कैसा सुन्दर है, कितना सुकुमार है, कैसा भोला-भाला इसका मुख है। यह रोता नही, हँस रहा है। जन्म से ही इसके मुख मे दात हैं।'

अन्यमनस्क भाव से वसुदेव जी ने कहा—"प्रिये ! मोह मत बढाओ। बच्चे को बहुत मत खिलाओ। श्रीहरि का ध्यान लगाओ, अब विलम्ब न लगाओ, बच्चे को लाओ। मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे कंस राय को दे आऊं।"

देवकी देवी ने अधीर होकर कहा—'प्राणनाथ ! वह मेरा भाई तो बडा क्रूर है, आप उसे इस भोले-भाले बच्चे को दे आवेंगे, तो वह इसे मार डालेगा। इतने सुन्दर भोले-भाले बच्चे को आप जान बूझकर काल के मुख मे क्यो डालना चाहते हैं ?"

वसुदेव जी ने कहा—"प्रिये ! हमने उससे ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी।"

देवकी जी ने अधीर होकर कहा—"आपने उससे इतनी कठिन प्रतिज्ञा क्यो कर ली ?"

वसुदेवजी ने कहा—"यदि ऐसी प्रतिज्ञा न करता, तो तुम्हारे प्राण कैसे बचते ?"

देवकी देवी ने रोते-रोते कहा—"मैं इन प्राणो को धारण करके क्या करूँगी ? पुत्र को मरवाकर ऐसे जीने से क्या लाभ। आपने मुझे क्यो बचाया ?"

वसुदेव जी ने दृढता के साथ कहा— प्रिये! अब इन व्यर्थ की बातों से क्या लाभ! पुत्र तो हमें कंस को देना ही होगा—स्वत न देंगे, वह उसे बलपूर्वक मंगा लेगा। जितनी ही अधिक देर बच्चा रहेगा, उतना ही मोह बढेगा। मैं जितना असत्य से डरता हूँ, उतना मृत्यु से भी नही डरता। मेरे वचन असत्य न होने पावें, मैं कंस के सम्मुख विश्वासघाती न बनने पाऊँ। मेरे ऊपर उसने विश्वास किया है, अत मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा धर्म-पूर्वक पूरी करनी चाहिये। लाओ, पुत्र को मुझे दे दो। यह कह कर वसुदेव जी ने दोनो हाथ आगे कर दिये। देवकी देवी के हाथ काँप रहे थे, हृदय फटा जा रहा था नेत्र बह रहे थे शरीर में रोमाञ्च हो रहा था, वसुदेव जी उनकी ऐसी दशा देख-समझ गये, किन्तु कर्त्तव्य ने उन्हे विवश किया। बलपूर्वक पत्नी की गोद से बच्चे को ले लिया और उसे लेकर चल दिये। देवकी देवी 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहती हुई मूर्छित होकर धडाम से धरती पर गिर पडी। किन्तु, वसुदेव जी ने पीछे फिरकर नही देखा, वे हृदय कडा करके बच्चे को लेकर कंस की राजसभा मे चल दिये।

रथ पर बैठकर वसुदेव जी बच्चे को लिये हुए कुछ ही समय मे कंस के सभा भवन मे पहुँचे। उस समय कंस अपने क्रूर-कर्मा मन्त्रियो के साथ बैठा था। उसी समय बच्चे को लिये वसुदेव जी को आते देखकर अवहेलना की हँसी हसता हुआ कंस बोला— 'आइये वसुदेव जी! आइये। कहिये सब कुशल मङ्गल है न? आज तो बहुत दिनो पर दिखाई दिये? स्वास्थ्य तो अच्छा है न? यह क्या ले आये?''

वसुदेवजी ने सरलता के साथ कहा—'यह बच्चा है, देवकी के गर्भ का यह प्रथम बालक है।''

कंस ने अनजान की भाँति कहा—"अच्छा, देवकी के बच्चा हुआ है ? बड़े मङ्गल की बात है ! आप इसे यहाँ कैसे ले आये ?"

वसुदेव जी ने अन्यमनस्क भाव से कहा—'मैंने तो आपसे प्रतिज्ञा की थी, कि देवकी के सब पुत्रों को मैं आपको दूँगा इसीलिये इसे आपको देने आया हूँ।"

यह सुनकर ठहाका मारकर हँसते हुए कंस ने कहा—"वसुदेव जी ! आप बड़े भोले हैं। अजी, मेरा इस बच्चे से क्या

प्रयोजन ? आकाशवाणी ने तो देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक से मुझे भय बताया था। अत इसे ले जाओ। जो आठवाँ बच्चा हो, उसे लाना इसे लेकर मैं क्या करूँगा ?"

यह सुनकर वसुदेवजी ने कहा— "बहुत अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा। मैं तो अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे लाया था।" यह कहकर वे बच्चे को लेकर पुन अपने घर लौट आये।

इस पर शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! देवकी का प्रथम पुत्र मृत्यु के मुख से सकुशल लौट आया, काल का कवल होने से बच गया। इससे वसुदेव जी को तो बडी प्रसन्नता हुई होगी ?"

सूतजी बोले—"अजी महाराज ! प्रसन्नता क्या होनी थी ! वसुदेव जी तो जानते थे कि कस अव्यवस्थित चित्त वाला है। इसकी प्रसन्नता भी दु ख का ही हेतु है। अभी तो इसने बच्चे को लौटा दिया है। अभी कोई दूसरा आकर विपरीत सम्मति दे दे, तो अभी फिर मँगा कर बच्चे को मरवा डालेगा। यह कोई निश्चय तो है ही नही कि एक बार इसने जो कह दिया वह पत्थर की लकीर बन गई। क्षण मे कुछ क्षण मे कुछ। यह कस महा दुष्ट है अजितेन्द्रिय है इसका मन इसके वश मे नही है। इन्ही सब कारणो से उन्हे प्रसन्नता नही हुई।'

शौनक जी बोले— 'हाँ, तो सूतजी ! फिर क्या हुआ ? कस ने उस वसदेव जी के प्रथम पुत्र जिसका नाम पिता ने कीर्तिमान रखा था उसे किसी के कहने से फिर बुलाकर मार दिया या वह बचा रह गया।"

सूतजी बोले—' बचा कैसे रहता, महाराज ! वह तो मरने के लिये ही पैदा हुआ था। देवर्षि भगवान् नारद की सम्मति से उसने उसे पुन मँगवाकर मार डाला।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! इतने धर्मात्मा भगवद्भक्त

भगवान् के अवतार नारद जी ने कंस को ऐसी विपरीत सम्मति क्यों दी ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! इस सम्मति में भी बड़ा भारी रहस्य है। इस प्रसङ्ग को मैं आगे सुनाता हूँ आप सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

जीजाजी ! तुम दृढ़-प्रतिज्ञ समदरसी ज्ञानी।
शुचिता समता सत्य सरलता तुमरी जानी॥
शिशु कूँ घर ले जाउ काम का मेरो याते।
अष्टम जो हो पुत्र बतायो सुर भय ताते॥
सुनि लौटे वसुदेवजी, दुष्ट वचन नहिं सत गने।
समुझि महा खल कंस कूँ, भये पुत्र लखि अनमने॥

कंस की सभा में देवर्षि नारदजी

[८२२]

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥
एतत् कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० १ अ० ६४ श्लो०)

छप्पय

लौटि गये वसुदेव तबहिँ नारद मुनि आये।
कंस कर्यो सत्कार कहे मुनि–'सुत च्यौं लाये ॥'
कंस कहानी कही बताई नभ की बानी।
नारद बोले विहँसि नीति नृप नहिँ तुम जानी ॥
नन्द और वसुदेव के, बन्धु दार सुत सुहृद्गन।
सुर सुर ललना सबहिँ ये, चहत भार भू को हरन ॥

सद्गुरु का काम होता है जीव को शीघ्र से शीघ्र श्रीहरि के सम्मुख करना। पाप-कर्म भगवद्दर्शन मे अन्तराय है। इसीलिये सद्गुरु सत्कर्म कराकर पापो को नाश कराते है। पाप कर्मों के

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन ! देवर्षि भगवान् नारदजी ने कंस को आकर ये सब बातें कही, कि नन्द और वसुदेव पक्ष के जो भी स्त्री-पुरुष, बन्धु बान्धव तथा सुहृदगण हैं, जो देखने में तुम्हारे सेवक हैं, ये सब प्राय देवता ही हैं। भूमि के भार उतारने तथा दैत्यो का वध करने के लिये ही य सब षड्यन्त्र हैं।"

सदृश कभी-कभी कोई ऐसा पुण्य-कर्म भी होता है, जो भगवद्-दर्शनों-में मुक्ति मे-अन्तराय होता है, कारण कि पाप-पुण्य दानो ही बन्धन के कारण हैं। अतः कभी-कभी सद्गुरु ऐसे कर्मों के नाश के लिये शिष्य से लोक-विपरीति भी काम कराते हैं। गुरु आज्ञा समझकर शिष्य उन कर्मों को सहर्ष अनासक्त भाव से करते हैं, कारण यह है, कि अच्छे-बुरे कर्मों मे हमारी आसक्ति नही। ऊपर से शुभ दिखाने वाला कर्म यदि हमे भगवद्दर्शन से-ससार से पार जाने से—रोकता है, तो ऐसे कर्म को हम पैरो की ठोकर मारकर ठुकरा देगे और जो कर्म ऊपर से अनुचित और लोक-विरुद्ध दिखाई देता है और श्रीगुरुदेव की उसे करने की आज्ञा है तो हम उसे सहर्ष करे गे, चाहे नरक मे ही जाने की आज्ञा क्यो न हो! जसे प्रकृति को पहचानने वाले सद्वैद्य को ही रोग की उत्पत्ति उसके कारण और उसके शमन करने का ज्ञान है, वैसे ही शिष्य के अधिकार और उसकी प्रकृति को जानने वाले सद्गुरु ही इस बात को भली-भाँति जानते हैं, कि कौन सा कार्य करने से इसे लाभ होगा। जैसे भिन्न-भिन्न प्रकृति होने से एक ही रोग को पात्र-भेद से भिन्न-भिन्न चिकित्सायें है, उसी प्रकार साधकों की प्रकृति के अनुसार एक ही साध्य के अनेक साधन है। सब साधनो का सार यही है कि श्यामसुन्दर के चरण सरोरुहो मे चित्त की वृत्ति अटक जाय, किसी भी प्रकार हो, मन मे फँस जाय। काम से हो, क्रोध से हो लोभ से हो, अथवा भय से हो, तो भी उनकी प्राप्ति हो जायगी। यदि प्रेम स उनको सुमिरन हो, तब तो कहना ही क्या।'

सूतजी कहते है—"मुनियो! कस के लौटाने पर वसुदेव जी अपने प्रथम पुत्र को लेकर ज्यो ही राज सभा के द्वार से निकले त्यों ही वीणा बजावत, हरि गुण गावत, चोटी हिलावत, खड़ाऊँ

चटफावत देवर्षि नारद जी वहाँ आ पहुँचे। उन्होने तो वसुदेव जी को पुत्र ले जाते हुए देख ही लिया था, किन्तु वसुदेव जी तो अन्यमनस्क हो रहे थे। अत. उन्होने नारदजी को नही देखा। वे रथ पर बैठकर बच्चे को लेकर चले गये।

इधर नारद जी को आते देखकर कस ने उनका स्वागत-सत्कार किया। पाद्य, अर्घ्य आचमनीय आदि देकर उनकी पूजा की, कुशल पूछा। दानो ओर से कुशल-प्रश्न होने के अनन्तर नारदजी ने पूछा—"राजन्! अभी बाहर जाते हुए मुझे वसुदेव जी दिखाई दिये थे। वे चमकीले वस्त्र मे लपेटे क्या वस्तु लिये जा रहे थे?"

कस ने सहज स्वभाव से कहा—'कुछ नही महाराज! उन का प्रथम पुत्र था। वे मेरे पास लाये थे, मैंने उन्हे लौटा दिया।"

अनजान भोले भाले व्यक्ति की भांति नारद जी ने पूछा—"वे सद्य जात पुत्र को यहाँ क्यो लाये थे?'

कस ने कहा—"अजी, भगवन्! क्या बताऊँ? एक ऐसी घटना घटित हो गई, कि उसके कारण मुझे बडी चिन्ता हो गई है, आप अच्छे आ गये। आप ही मेरी शका का समाधान करें।"

नारद जी ने कुछ बात पर बल देते हुए कहा—"हाँ, हाँ, बताइये, क्या घटना घटित हो गई। आपको किस बात की चिंता हो गई?"

कस बोला—"भगवन्! देवकी का वसुदेव जी से अभी गत वर्ष विवाह हुआ था। विदाई के अवसर पर मैं उसके रथ को हाँक रहा था, उसी समय आकाशवाणी हुई कि "इसका आठवाँ पुत्र तुझे मारने वाला होगा।" मैं उसी समय देवकी को मार डालना चाहा था, किन्तु वसुदेव जी ने यह कहकर उसे बचा लिया कि इसके सब बालको को मैं तुम्हे लाकर दे दिया करूँगा।

वसुदेव जी भले आदमी हैं। आज ही उनके पुत्र हुआ। अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे वे यहाँ लेकर आये थे।'

नारद ने कहा—"फिर आपने उसे लौटा क्यों दिया ?"

कंस ने कहा— 'महाराज, उस बच्चे से मुझे क्या लेना है। आकाशवाणी ने तो अष्टम पुत्र से मुझे भय बताया था। जब अष्टम होगा, तब मैं उसे मार दूँगा।'

नारदजी बोले—"आपको क्या पता, अष्टम कौन है ?"

कस ने कहा—"महाराज, इसमे भी कुछ कहने-सुनने की बात है ? यह तो स्पष्ट है। यह प्रथम पुत्र है फिर द्वितीय तृतीय-ऐसे ही जो इससे आठवां होगा—वही मेरा शत्रु होगा, उसे ही मैं मार डालूंगा।"

यह सुनकर नारदजी हँसे और उन्होने एक गोल वृत्ताकार लकीर खींची। उस पर आठ कंकड़ियाँ रखकर वे बोले— बताइये, इनमे आठवी कौन सी है।"

कस ने अपने सामने की कंकड़ी को गिनकर आठवाँ बता दिया। नारद जी ने कहा—'हम इससे आरम्भ करते हैं।" फिर दूसरी से फिर तीसरी से-ऐसे प्रत्येक को आठवी सिद्ध कर दिया। फिर एक अष्ट दल कमल लेकर कहा—इसमे आठवाँ दल कौन सा है ? ' उन्हें भी सबको आठवाँ सिद्ध कर दिया फिर एक आठ फांक की नारङ्गी को छीलकर पूछा— इनमे आठवो फांक कौन सी है ? उसी प्रकार एक-एक कर गिनकर सबको आठवी सिद्ध कर दिया। एक पात्र मे आठ बूंद पानी डालकर कहा—"इसमे से आठवी बूंद निकालिये।" आठ पेडो को एक मे भर दिया और कहा—इनमे से आठवाँ निकालिये।" आठ अगूरो का गुच्छा लेकर कहा—'इनमे मे आठव अगूर को तोडिये।" कस बार बार गिनता सभी आठवें हो जाते। उसकी बुद्धि चकरा गई, चित्त मे विभ्रम हो गया। नारद जी ने कहा—"राजन् ! मैं तो देवताओ मे ही रहता हूँ। देवता बडे मायावी हैं, उनकी माया का पता नही चलता। न जाने वे किसको आठवाँ सिद्ध कर दे। एक रहस्य की बात आपको और बताता हूँ, आपको उसका पता नही।"

कस ने कहा— 'हाँ, महाराज ! बताइये। मैं तो देवताओ की धूर्तता समझता नही।"

नारद जी बोले—"आप तो भोले हैं। देखिये, ये व्रज में रहने वाले नन्दादि जितने गोप हैं, इन गोपों की जितनी स्त्रियाँ हैं, ये सभी देवी रूप हैं।"

कंस ने कहा—'भगवन्! देवता और देवाङ्गनायें-सब गोप-गोपी रूप मे क्यों प्रकट हुए?"

नारदजी बोले—"भूमि का भार बहुत बढ गया है। उसे ही उतारने ये सब मनुष्य रूप मे प्रकटे हैं। व्रज की बात तो जाने दो, तुम्हारे घर मे भी बहुत से तुम्हें ही मारने को देवता उत्पन्न हुए हैं।"

कंस ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—'मेरे घर मे कौन उत्पन्न हुए।

नारद जी बोले—देखो ये जितने वसुदेवादि वृष्णि-वंशी यादव हैं, उनके देवकी आदि जितनी स्त्रियां हैं, वसुदेव और नन्दादि गोपो के जितने जाति, बन्धु, मित्रगण, सगे सम्बन्धी और प्रेमी है-ये सब देवता है। तुम पूर्व जन्म मे कालनेमि नामक असुर थे। तुम्हारे बहुत से प्रलम्बासुर, अघासुर, बकासुर, शकटासुर, तृणावर्त आदि अनेक साथी असुर भी उत्पन्न हुए हैं। वे सब तुम्हे मिल जायंगे। जितने यादव तुम्हारे यहाँ नौकर-चाकर, सम्मति-दाता, मन्त्री आदि है, ये ऊपर से तो तुम्हारे सेवक बने हुए है। किन्तु ये सब तुम्हारे शत्रु ही हैं। ये सब तुम्हारा नाश करेंगे। अब तुमको जो उचित जान पड़े, सो करो हमने तत्त्व की यथार्थ बात तुम्हें बता दी।" इतना कहकर नारद जी ने अपनी वीणा उठाई और उस पर तान छेड़ते हुए बिना कंस से पूछे ही यह गये-वह गये। अब कंस को बड़ा भारी सोच उत्पन्न हो गया।

वह सोचने लगा—"अरे, मैं तो भ्रम में था। ये सब सुहृद-

रूप में मेरे शत्रु हैं। मेरे कुटुम्बी ही मुझे मरवाने का षडयन्त्र रच रहे हैं। मेरी जाति वाले ही मेरे प्रतिपक्षी हैं। ये यादव सभी देवगण हैं। मुझे मारने वाला देवकी के ही गर्भ से उत्पन्न होगा। यह भी निश्चय नहीं कि आठवाँ कौन-सा है, जो भी आठवाँ हो जाय। इसीलिये मुझे वसुदेव और देवकी को कारावास में रखना चाहिये। देवकी का जो भी पुत्र उत्पन्न हो, उसे ही मार डालना चाहिये।" यही सब बात सोचकर उसने नगर-नायक को बुलवाया और उसे आज्ञा दी—'देखो, तुम अभी मेरी आज्ञा से सेना लेकर वसुदेव जी के घर को घेर लो। फिर वसुदेव और उनकी पत्नी देवकी को पकडकर मेरे समीप ले आओ। जो लोग इसमें विघ्न करें, उनका पक्ष लें उनको भी मार डालो।"

नगर-नायक ने युवराज कंस की आज्ञा सिरोधार्य की। उसने तुरन्त जाकर वसुदेव जी का घर घेर लिया। वसुदेव जी तो यह सब पहले से ही समझते थे। उन्होंने उनका कोई विरोध नहीं किया। देवकी के सहित वे निर्विरोध भाव से कंस के दरबार में चले आये। उन्हें सम्मुख देखकर क्रोध से ओठों को काटता हुआ, अपनी बडी-बडी लाल लाल आँखों को निकालता हुआ, कंस बोला— वसुदेव और देवकी दोनों को जञ्जीरों से जकडवा कर एक सुदृढ किले में बन्द कर दो। उसके आसपास कड़ा पहरा लगवा दो। एक विशेष अधिकारी इसी काम पर नियुक्त किया जाय। देवकी जब गर्भवती हो, उसकी सूचना मुझे दी जाय। जब इसके गर्भ के दिन पूरे हों, उसकी सूचना दी जाय और बच्चा होते ही तुरन्त मुझे बताया जाय। चाहे सर्दी हो, गर्मी हो, वर्षा हो, लू चल रही हो, हिम पड रहा हो, ओले बरस रहे हो, दिन हो, रात्रि हो-सन्ध्या हो-जब भी बच्चा जन्मे, उसी क्षण मेरे पास इसकी सूचना भिजवाई जाय।"

उस क्रूरकर्मा का विरोध करने की किसमे सामर्थ्य थी? सेवक हृदय से ऐसा नही चाहते थे, किन्तु करते क्या? बलवान के सम्मुख बोलने की उनमे सामर्थ्य नही थी। अतः इच्छा न रहने पर भी देवकी और वसुदेव जी को लोहे की जञ्जीरों से जकडकर एक घर मे बन्द कर दिया गया, उन पर पहरेदार बैठा दिये गये। जब भी देवकी गर्भवती होती, उसकी सूचना कस को दी जाती। पहले कीर्तिमान पुत्र को तो उसने मार ही दिया। इसके अनन्तर जो-जो पुत्र होते, कस स्वय जाकर उन सब को मार डालता। इस प्रकार उसने देवकी के छः पुत्रो को मार डाला।

पुत्र उत्पन्न होते ही वसुदेव जो तुरन्त सक्षेप मे जातकर्म करके उनके नाम रख लेते। नाम क्या रखना था, नेगमात्र करना था। इस प्रकार कस ने देवकी जी के गर्भ से उत्पन्न कीर्तिमान, सुषेण, उदारचित्त भद्रसेन, ऋजु, सम्मदन और भद्र इन छः पुत्रो को मार डाला।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! देवकी-वसुदेव इतने धर्मात्मा थे, इनसे एक दो नही छः-छः पुत्र उत्पन्न होते ही क्यो मारे गये?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! भगवान् के विधान को प्राणी ठीक-ठीक समझ नही सकता। उनके प्रत्येक कार्य मे मङ्गल निहित है। हम अपनी क्षुद्र बुद्धि से उनके यथार्थ रहस्य को जान नही सकते। देवकी के इन छः पुत्रो का जन्म लेते ही मार डाले जाने मे कल्याण था। देवकी जी के गर्भ से साधारण जीव तो जन्म ले ही नहीं सकता था। वे सब प्रजापति मरीचि के पुत्र छः ऋषि थे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उन देवतुल्य ऋषियों ने ऐसा

क्या अपराध किया था, जिससे उन्हे जन्म लेते ही असुर के हाथो मरना पड़ा ?"

सूतजी बोले—"महाराज! सबसे बडा अपराध है महत् पुरुषो की अवज्ञा। ससार मे इससे बडा अपराध कोई है ही नही। महापुरुषो मे स्वाभावानुसार कभी कोई नीति विरुद्ध अनुचित कार्य हो भी जाय तो भी उसकी निन्दा न करनी चाहिये क्योकि सभी अपनी प्रकृति से विवश है, सभी भगवत् प्रेरणा से ही पाप पुण्य मे प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य को चाहिये कि दोष देखने हो, तो अपने देखे, गुण देखने हो तो दूसरो के। ससार मे कोई भी ऐसा व्यक्ति नही, जिस मे कोई गुण न हो। ससार मे कोई भी ऐसी वस्तु नही जो किसी न किसी रोग की औषधि न हो। स्वर और व्यञ्जनो मे कोई भी ऐसा वर्ण नही जो मन्त्र न हो। केवल उनकी योजना करना उन्हे समझकर उपयुक्त स्थान मे प्रयुक्त करना ही योग युक्त बुद्धिमान का काय है। अत सदा दूसरो के गुण ही देखे अपने सदा अवगुण देखे। जो दूसरो के अवगुण देखता है, उसमे वे अवगुण निश्चय ही आ जाते हैं, क्योकि जीव तो सकल्पमय है। जो जैसा सकल्प करेगा उसके वैसे ही सस्कार बन गे। युवती स्त्री का सकल्प आते ही चित्त चञ्चल हो जाता है। इसी प्रकार दोषो का स्मरण करते ही वे दोष मन मे आ जाते हैं। भावना ही ससार म प्रधान मानी गई है। भावो स ही पुरुष असुर बन जाता है, और भावो मे ही देवता।

स्वायम्भुव मन्वन्तर मे महर्षि मरीचि के ऊर्णा नाम वाली पत्नी मे देव सदृश स्मर उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृद् और घृणी—ये छ ऋषिकुमार उत्पन्न हुए थे। जिस समय ब्रह्मा जी अपनी कन्या सरस्वती से सगम करने को सन्नद्ध हो गये,

ये छः अत्यन्त ही अवहेलना पूर्वक ब्रह्माजी को दोषी ठहराकर हँसने लगे। इस पर ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध आया कि ये मेरे पौत्र होकर मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। इसलिये उन्होंने तुरन्त उन सब को शाप दिया—"जाओ, मूर्खो! तुम सब असुर-योनि में उत्पन्न हो जाओ।"

ब्रह्माजी का शाप कभी अन्यथा तो हो ही नहीं सकता। वे जाकर हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए। उनका अपराध उतना बड़ा नहीं था। अतः भगवान् ने कृपा करके योगमाया को आज्ञा दी—'इन्हें देवकी के गर्भ में ले जाओ। वे ही मारीचि-पुत्र ये छः थे, पीछे भगवान् की कृपा से ये आसुरी योनि छोड़कर देव-लोक चले गये।"

शौनक जी ने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! फिर क्या हुआ? कंस का अन्य यादवों ने तथा उसके पिता उग्रसेन ने विरोध नहीं किया।'

सूतजी बोले—"उन सब में इतनी सामर्थ्य कहाँ थी? उसने तो सब को वश में कर लिया था, स्वयं राजा बन बैठा था। उसी प्रसंग को अब मैं कहता हूँ, आप सावधान होकर उसे सुनें।'

छप्पय

नभवानी महँ छिपी गूढ़ अतिशय चतुराई।
कमल पुष्प महँ सबई आठवें दल तो भाई॥
यादव तुमरे शत्रु करो इन सब तें कुट्टी।
मुनि ने खल कूँ तुरत पढ़ाई उलटी पट्टी॥
नारद आगि लगाइ कें, गये कंस चिन्ता भयी।
आयसु यादव दमन की, सेनापति कूँ दै दयी॥

कंस स्वयं राजा बन गया

(८२३)

उग्रसेन च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥*

(श्री भा० १० स्क० १ अ० ६६ श्लोक)

छप्पय

मँगवाये पुनि तुरत पकरि वसुदेव देवकी ।
जञ्जीरनि तैं जकड़ि हने सुत महापातकी ॥
पितु पग बेड़ी डारि बनाये बन्दी भूपति ।
सिंहासन पर स्वय विराज्यो पापी खल मति ॥
अनाचार नित प्रति करै, अति दुःखित यादव भये ।
कोशल, कुरु, केकय, निषद, सब देशनि महँ भगि गये ॥

जो केवल जीने के ही लिये, पेट पालने के ही निमित्त इस नश्वर शरीर को पुष्ट करके, इन्द्रिय सुखो के उपभोग के ही निमित्त—जीते हैं, वे देव योनि मे होते हुए भी असुर है। इसके अतिरिक्त जो भगवद् भजन के ही निमित्त जीते हैं भगवद्भक्ति ही जिनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है, वे असुर योनि मे उत्पन्न होने पर भी आसुरी भावो से रहित है देवता है। प्राणी इन प्राणो के लोभ स कितने पाप करता है ? माता पिता भाई सगे-सम्बन्धी तथा सुहृदो का भी निर्दयता पूर्वक वध कर

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—' राजन् ! महाबलवान कंस अपने पिता उग्रसेन को जो यदु, भोज, और अन्धक वंशीय यादवो के अधिनायक थे, बन्दीगृह मे डालकर शूरसेन देश का राज्य स्वय करने लगा।"

देता है। इतना करके भी वह प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता, मरकर अपना अयश छोड़कर रिक्त-हस्त चला जाता है। पूर्व जन्म के संस्कारों से वशीभूत होकर जीव शुभ-अशुभ कर्मों में प्रवृत्त हो रहा हैं। वे नट नागर ही सबको नचा रहे हैं। वे अखिल ब्रह्माण्ड के सूत्रधार ही सबसे भाँति-भाँति अभिनय करा रहे है। जीव उनके ही सकेत पर नाचता है। उन्हो की क्रीड़ा को सुखमय, आनन्दमय, उल्लासमय तथा उत्साहवर्द्धक बनाने को सबकी चेष्टायें है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह कस पूर्व जन्म मे कालनेमि नामक दैत्य था। देवासुर सग्राम मे यह भगवान् के हाथ से मारा गया! अपनी माता के दोष से यह माता के पितृगृह मे ही गर्भ मे आया था और दश वर्ष गर्भ मे रहा। इस कथा को पीछे मैं भोज वश के वर्णन के प्रसङ्ग मे कह ही आया हूँ। पहले तो यह भूला हुआ था, नारद जी ने जब इसे स्मृति दिला दी तब तो इसे पूर्ण विश्वास हो गया, "मैं पूर्व जन्म का असुर हूँ, देवताओ से मेरा वैर है, ये जितने यादव हैं, सभी मेरे प्रतिपक्षी शत्रु है, ये सब मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हैं। यद्यपि मैं बली हूँ, फिर भी मेरे हाथ मे शक्ति नही है। हमारे यदु, भोज अधक तथा वृष्णि-वश मे बहुत से नायक हैं। यदुवशी छत्र-चँवर लगा कर सम्राट के सिंहासन पर तो बैठते नही। एक-एक वश के अधिनायक होते हैं। मेरे पिता उग्रसेन प्रधान अधिनायक हैं। सब ने इन्हे ही बुद्धिमान समझकर अधिनायक का सभापति चुन दिया है। शूरसेन देश का शासन प्रायः ये ही करते है। और अब अधिनायक तो केवल सम्मति मात्र देते हैं। वसुदेव जी भी इस शासन समिति के सदस्य थे। इन्हे मैंने सभा की अनुमति के विरुद्ध पकड़वाकर बन्द कर दिया है। इस पर हमारे

वंश की समिति मे असन्तोष होगा। अतः सर्व प्रथम प्रधान नायक अपने पिता को कारावास मे डालकर शासन की बागडोर मैं अपने हाथ मे ले लूं और वर्तमान सभा को भङ्ग कर दूं। जो सामन्त मेरे पक्ष में हों, उन्हे तो रखू जो मेरे पक्ष का समर्थन न करते हो उन्हे या तो राज्य से भगा दूं या पदच्युत करके कारावास मे डाल दूं। जब तक मेरे पिता इस गणतन्त्र राज्य के सभापति हैं तब तक मै कोई कार्य न कर सकूंगा। पिता ही मेरे मार्ग मे कण्टक हैं। इन्हें निकाल कर मैं निष्कण्टक हो माथुर-मण्डल और शूरसेन प्रदेश का शासक हो सकूंगा।" यही सब सोचकर वह अपने पिता को पकडने का अवसर सोचने लगा। उसने सेवको से यह कार्य कराना उचित नही समझा। स्वय ही उसने अपने हाथो इस कार्य को करना चाहा।'

शौनक जी बोले—"कंस ने अपने पूजनीय पिता को क्यो पकडना चाहा?"

सूतजी ने झुंझलाकर कहा—"महाराज सैकडो बार तो मैं इसका उत्तर दे चुका हूँ। दुष्टो के कोई माता पिता सगे-सम्बन्धी नही होते। ये अपने प्राणो का ही प्रेमपूर्वक पालन करने वाले असुर प्रकृति के नीच पुरुष, तथा लोभ मे फँसे भूपतिगण अपने माता पिता भाई तथा सगे सम्बन्धी, सुहृदो की हत्या कर डालते हैं। इनको कर्तव्याकर्तव्य का विवेक रहता ही नही। जो अपने स्वार्थ मे विघ्न प्रतीत होते, उन्हें वे मार डालते हैं, चाहे वे कोई भी क्यो न हो।

शौनक जी बोले—"तो हाँ सूतजी! फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—'अजी, महाराज! उस धूर्त की धूर्तता तो देखिये। एक दिन उग्रसेन जी प्रातःकाल शय्या से उठे। तभी कंस नहा-धोकर चदन, गंध पुष्प और अक्षत लेकर उनके समीप

पहुँच गया और बोला—"पिताजी! तनिक चरण नीचे तो कीजिये, मैं उनका पूजन करूँगा।"

उग्रसेन जी बडे प्रसन्न हुए। आज इस खल को ऐसी सुबुद्धि कैसे हुई? उन्होने तुरन्त अपने दोनो पैर नीचे कर दिये। कस ने उन्हे धाकर गध, अक्षत पुष्प आदि चढाये और छिपी हुई वेडी को निकाल कर पैरो को जकड दिया, हाथ मे हथकडियाँ डाल दी और बोला—'पिताजी! आप अब बूढे हो गये हैं। अपने दामाद वसुदेव जी के समीप रहकर आप चैन की वशी बजाइये। अब आपको राजकाज के झझटो से कुछ काम नहीं। यह कहकर उसने उन्हे भी वसुदेव जी के समीप ही दूसरे घर मे बन्द कर दिया।

अब उसने पुरानी यादव सामन्त-सभा को भङ्ग कर दिया। अपने मन से ही उसने प्रलम्ब, वक, चाणूर, तृणावर्त, अघ मुष्टिक अरिष्ट, द्विविद, केशी धेनुक आदि को अपनी सभा का सदस्य बनाया यादवो में अक्रूर आदि जो उसके सर्वदा पक्ष के थे, जो उसकी हाँ मे हाँ मिलाते थे, उन्हे भी सभा मे रख लिया। उसने कहा—"हमारे मन्त्रिमण्डल मे स्त्रियो को भी अधिकार मिलने चाहिये। एक मन्त्रिणी स्त्री भी हो।" इसलिये पूतना को उसने मन्त्रिमण्डल मे रखा। और गुप्तचर विभाग उसे सौप दिया। पृथ्वी पर जो दूसरे बलवान असुर प्रकृति के जरासन्ध, बाणासुर, भौमासुर आदि-आदि राजा थे उनसे इसने सन्धि कर ली। इसका पक्ष प्रवल सा गया। सभा मे बहुमत भी इसे प्राप्त हो गया। स्वय सभा का अधिनायक बनकर यह शासन करने लगा। जिन सामन्तों को उसने समझा कि ये मेरे पिता उग्रसेन के पक्ष के हैं, या भीतर ही भीतर उनसे सहानुभूति रख कर मुझे पदच्युत करना चाहते हैं, उनसे उसने गहरी शत्रुता ठान

ली, उनके ऊपर विशेष कर लगा दिये भांति-भांति के प्रतिबन्ध लगा दिये किसी पर असत्य अभियोग ही चला दिया, जिन असुर राजाओं के साथ उसकी सन्धि थी उनके यहाँ अपने असुर राजदूत रख दिये उनको चेतावनी दे दी, हमारे यहाँ का कोई यादव भागकर तुम्हारे राज्य में आवे तो उसकी सूचना हम दे देना।'

इस प्रकार उग्रसेन तथा वसुदेव के पक्षपाती यादवों को वह भाँति-भाँति के क्लेश देने लगा। इतनी बडी सत्ता के सम्मुख बिना किसी शक्तिशाली नेता के साधारण जन तथा सामन्तगण कर ही क्या सकते हैं? अत उन्होंने देश छोडकर जाना ही उचित समझा। उन निष्क्रमणार्थी यादवों को राज्य से बाहर जाने की सुविधा कंस ने कर दी। वे बेचारे अपने घर बार को छोडकर दूसरे-दूसरे राज्यों में जाकर बसने लगे। कोई तो कुरु जाङ्गल देश में चले गये। धृतराष्ट्र जी ने उन सब को बसने की सुविधा दे दी। कोई पांचाल देश में चले गये। महाराज द्रुपद ने उनको सत्कार पूर्वक ठहराया। कोई कोई मथुरा मण्डल से भागकर केकय देश में चले गये। कोई शाल्व विदर्भ, निषध, विदेह तथा कोशल आदि देशों में बस गये। इस प्रकार यादव तथा कोशल आदि देशों में बस गये। इस प्रकार यादव शरणार्थी अपने घरों को छोडकर भिन्न भिन्न प्रदेशों में जाकर बस गये। अब तो कंस खुलकर खेलने लगा। उसने अपने विरोधी पक्ष को एक प्रकार से समूल ही नष्ट कर दिया। उसे जिस पर सन्देह होता कि यह मेरे दल का समर्थक नहीं है उसे ही साम दाम दण्ड तथा भेदनीति का आश्रय लेकर या तो राज्य से बाहर निकाल देता, या कोई झूठा अभियोग लगाकर उसे कारावास में ठूँस देता। सवत्र आतङ्क छा गया। मन ही मन वैसे उससे सब घृणा करते थे किन्तु उनके मुख पर सब उसकी प्रशंसा ही करते थे।

जब उसने अपने कण्टक-रूप विपदियों को अपनी बुद्धि से निर्मूल कर दिया, तब वह किसी बली राजा की कन्या के साथ विवाह करने की बात सोचने लगा। उन दिनों पृथ्वी पर मगध का राजा जरासन्ध सबसे श्रेष्ठ सम्राट समझा जाता था। उसके पास अगणित सेना थी। उसकी धन सम्पति का कोई वारापार नहीं था, सब राजा उसके नाम से थर-थर काँपते थे। उसके अस्ति और प्राप्ति नाम की दो विवाह-योग्य युवती कन्याएँ थीं। वह उनका विवाह उस राजा के साथ करना चाहता था, जो सर्वश्रेष्ठ बली हो। उसने राजाओं के बल की परीक्षा के लिये एक प्रण रख रखा था कि जो कोई इस पण को पूरा कर दे, उसी के साथ मैं अपनी कन्याओं का विवाह कर दूँ। इस संकल्प से उसने स्वयंवर रचा और पृथ्वी के सभी बली राजा तथा राजकुमार उसमें बुलाये गये। कंस भी उस स्वयंवर मे गया। जरासन्ध से इसकी मैत्रीपूर्ण सन्धि तो हो चुकी थी। अतः जरासन्ध ने इसका भली प्रकार स्वागत-सत्कार किया। सब राजाओं के समक्ष कंस ने जरासन्ध के पण को पूरा किया। अतः उसने सहर्ष अपनी दोनों कन्याओं का विवाह कंस के साथ कर दिया। इससे कंस को बड़ी प्रसन्नता हुई, साथ ही उसका अहङ्कार और भी बढ़ गया। वह सोचने लगा—"अब मेरा कोई कर ही क्या सकता है ? जरासन्ध मेरे श्वसुर है, बाण-भौम जैसे मेरे मित्र हैं। अब किसका साहस है, जो मेरे सम्मुख दृष्टि उठा सके ? इसी अभिमान के वशीभूत होकर वह प्रजा के लोगों पर भाँति-भाँति के अत्याचार करने लगा। जब तक अधिक से अधिक अत्याचार न होंगे, तब तक भगवान् का अवतार कैसे होगा ? ये सब भगवान् के अवतार के ही उपक्रम हैं। जब तक अत्युग्र क्रिया नहीं होती, तब तक उसके विरुद्ध बड़ी प्रतिक्रिया भी नहीं होती। जब

तक घोर अत्याचार नहीं होते, तब तक जीवन का संचार नहीं होता। जो जाति अत्यन्त शक्तिहीन निर्बल हो जाती है, उसी पर अत्याचार होते हैं। या तो उन अत्याचारों से उसका अन्त ही हो जाता है या प्रतिक्रिया उत्पन्न होकर वह सबल शक्तिशालिनी तथा उन्नत बन जाती है। प्रकृति एक दशा में किसी को भी रखना नहीं चाहती। उसका सिद्धान्त है— या तो मरो या आगे बढ़ो।' निष्कय हो दूसरों के मार्ग को रोके रहना उचित नहीं। जब कंस के ऐसे अत्याचार बढ़ने लगे, तब भगवान् से पूर्व उनके तेजोमय अंश संकर्षणावतार शेषजी का अवतार हुआ। वे देवकी जी के गर्भ में आये और रोहिणी के उदर से उत्पन्न हुए।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! महाराज परीक्षित ने यही तो शंका की थी कि बलराम जी देवकी और रोहिणी दोनों के ही पुत्र कैसे हुए। वही शंका हमारी भी है।'

सूतजी बोले—"महाराज वही कथा तो अब मैं कहने जा रहा हूँ, उस कथा में ही इस शंका का समाधान हो जायगा। आप संकर्षणावतार श्री बलराम जी के जन्म का ही प्रसङ्ग अब सुनें।"

छप्पय

तृणावर्त चाणूर पूतना और बकासुर।
धेनुक, केशी द्विविद प्रलम्बहु असुर अघासुर॥
कंस सचिव सब बने करें उत्पात निरन्तर।
कछु यादव बचि गये न पावें परि ते आदर॥
विनय करत सब अति दुखित, होहु अवतरित हे प्रभो!
करहिं असुरगन अघ अमित, हरहु भार भू को विभो॥

शेषावतार श्री बलरामजी का प्राकट्य

(८२४)

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ॥
अन्याश्च कससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।
देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥*

(श्री भा० १० स्क० २ अ० ७,८ श्लो०)

छप्पय

भरचो पाप को घड़ा हिल्यो हरि को सिंहासन ।
आयसु नटवर दई योगमाया कूँ तत्छिन ॥
रहे रोहिणी मातु नन्द बाबा के घर महँ ।
तेजोमय मम अंश देवकी बसै उदर महँ ॥
ताहि रोहिणी गर्भ में, थापित करि प्रकटो तुमहु ।
वासुदेव हम होहिँ तुम, सुता यशोदा की बनहु ॥

जब किसी बात की पराकाष्ठा हो जाती है, तब भगवान् वही

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् ने योगमाया को आज्ञा दी—हे देवि ? तुम गोप और गौओं से अलङ्कृत व्रज में जाओ। हे भद्रे ! वसुदेव जी की स्त्री रोहिणी नन्दजी के ही गोकुल में है। उनकी और भी स्त्रियाँ कंस के भय से भयभीत होकर विवरों में बसती हैं। देवकी के उदर में मेरा तेजोमय अंश से शेष नामवाला है, उसे खींचकर रोहिणी के उदर में स्थापित करो।"

प्रकट हो जाते हैं। साधारण स्थिति मे भगवान् प्रकट नही होते। खा पी लिया, सो गये ससारी विषयो को भोग लिया, समय निकाल के कुछ देर राम-राम भी रट लिया, ऐसी स्थिति में भगवान् प्राय प्रकट नहीं होते। प्राय इसलिये कहा कि भगवान् किसी नियम मे तो बँधे नही। उनकी इच्छा हो जाय, चाहे जिसे दर्शन दे दें परम पुण्यवान् का भी उनके दर्शन न हो, घोर पापी पर भी कृपा कर दे। किन्तु पुण्य की हो, पाप की हो, सुख की हो, दु ख की हो, पराकाष्ठा मे तो वे प्रकट हो ही जाते हैं। सुख की पराकाष्ठा मे सम्भव है न भी प्रकट हो किन्तु दु ख की पराकाष्ठा मे तो वे रह नही सकते क्योकि शरणागतवत्सलता उनकी प्रधान बान है। इसीलिये तो भक्तिमती कुन्ती ने माँगा है—"हमे निरन्तर विपत्ति ही विपत्ति मिलती रहे, क्योकि विपत्ति मे आप सहायता करने आते ही हैं। आप न भी आना चाहे, तो भी आपको आना ही होगा।" यदि विपत्ति बुरी वस्तु होती तो जिनके घर मे विश्व ब्रह्माण्ड के स्वामी उत्पन्न हुगे, जिन्हे अखिल ब्रह्माण्डनायक के माता पिता होन का परम सौभाग्य प्राप्त होगा उन देवकी-वसुदेव को इतनी भारी-भारी विपत्तियो का सामना क्यो करना पडता ? जो विपत्ति भगवद्-दर्शन मे सहायक हो, वह कोटि सम्पत्तियो से श्रेष्ठ है, और जो सम्पत्ति हम बिहारी से विमुख कर दे वह कोटि विपत्तियो से भी दु खकर है। अत भगवद्दर्शन के माग मे जो विपत्तियाँ है, वे तो भक्तो को भूषण हैं। उनसे भगवान् का सिंहासन हिल जाता है और वे स्थिर नही रह सकते।

सूतजी कहते है—' मुनियो! जब कस के अत्याचार अत्यधिक बढ गये और उसने एक-एक करके क्रमश. देवकी के छ बालको को मार दिया, तब भगवान् का भी सिंहासन हिल गया।

यादव रूप मे उत्पन्न हुए देवो का करुण क्रन्दन जब उनके कर्ण-कुहरो मे पड़ा, तब उन्होने देवताओ को दिय हुए अपने आश्वासन की स्मृति हो आई। तुरन्त ही उन्होन अपनी योगमाया को बुलाया और बोले—"देवि ! अब मैं भी मर्त्यलोक मे कुछ ल ला करना चाहता हूँ।"

योगमाया न कहा—"प्रभो, महाराज ! दुःख, शोक आधि व्याधि, तन्द्रा, ग्लानि, राग, द्वेष, हिंसा, मात्सर्य-पूर्ण मर्त्यलोक मे आप क्यो जाना चाहते हैं ? सब लोग आपको जान ले गे, तो यह जगत का खेल ही समाप्त हो जायगा।"

भगवान् बोले—"जगत का खेल क्यो समाप्त हो जायगा ? तुम भी मेरे साथ जन्म लेना। तुम मुझे अपने घूंघट में छिपाये रहना। जब मैं तुम्हारे पट स आवृत रहूँगा, अज अव्यय होन पर भी मूढ मुझे देख न सके गे। भक्तो के सम्मुख तो तुम परदा रख हो नही सकती। भक्त बडे ढीठ होते है। वे परदे का उठा कर मेरे दर्शन कर लते है और कहते है— क्यो, महाराज ! यह घूंघट क्यो लगा रखा है। योगमाया की साडो मे क्यो छिपे हैं ? आपको ऐसी बात शाभा देती है ?" तब मैं हंस जाता हूँ उन्हें छाती से चिपटा लेता हूँ। जो मूढ है वे मेर पास नही फटकते, मेरी निन्दा करते हैं, मुझे माया का चेहरा बताते हैं, विषयी होने का दोषारोपण करते हैं। इसलिय उन अज्ञो द्वारा ससार-चक्र चलता ही रहेगा। मुझे तो अपने आश्रितो को सुख पहुँचाना है। भक्तो को अनुपम दिव्य रस का पेट भर के पान कराना है। द्वेष से भजन वाले असुरो का भी उद्धार करना है, भू का भार उतारना है। ये सब तो गौण प्रासगिक कार्य है। मुख्य कार्य तो व्रज मे मुझे मधुर रस की अखण्ड सरिता प्रकट करनी है।"

योगमाया ने कहा—"यदि मुझे भी उत्पन्न होना है, तो काजर-बेंदी लगा लूं, नये लहंगा, फरिया और चोली आदि वस्त्र पहन लूं।"

भगवान् बोले—"अरे, चटक-मटक की आवश्यकता नहीं। अब के तुम्हें मेरी बहन बन के उत्पन्न होना है।"

योगमाया बोली—"जो चाहो सो बना लो महाराज! बहन हूं, भौजाई बूआ, माता आदि सब सम्बन्ध आपके ही सम्बन्ध से तो है। तो मुझे क्या करना होगा?"

भगवान् बोले—"मुझे भगवती देवकी के उदर से उत्पन्न होना है। मैं उनके आठवें गर्भ से प्रकट हूँगा।"

योगमाया बोली—'इस समय तो महाराज! देवकी के सातवां गर्भ है। अब तक छः पुत्र हुए थे, उन्हे कस ने उत्पन्न होते ही मार डाला। अब सातवें गर्भ का भी आठवां महीना है। एक महीने बाद जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे भी कस मार डालेगा।"

भगवान् बोले—'मार कैसे डालेगा? ये छः तो मारीचि मुनि के पुत्र थे जो ब्रह्माजी के शाप से हिरण्यकशिपु के पुत्र हो कर आसुरी योनि मे उत्पन्न हुए। वे उस योनि से शीघ्र ही मुक्त होने के निमित्त देवकी जी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनका तो उत्पन्न होते ही मरने मे मङ्गल था। अब यह सातवाँ गर्भ साधारण गर्भ नही है। इसमे तो मेरे परम तेजोमय अंश सकर्षणावतार शेष भगवान् ही आये है। रामावतार मे ये मेरे छोटे भाई थे। अब के ये मेरे बड़ भाई बनेंगे। इन्हे कोई मार नहीं सकता किन्तु फिर भी तुम एक काम करो। इनके इस सप्तम् गर्भ को खीचकर श्री वसुदेवजी की दूसरी पत्नी रोहिणीजी के गर्भ मे स्थापित करो। वे आज कल नन्दजी के गोकुल मे छिपकर रहती हैं। वे भी गर्भिणी हैं। उनके गर्भ मे सकर्षणजी

को ले आओ। इससे ये देवकी के भी पुत्र कहावेंगे और रोहिणी के भी। वास्तव मे तो ये किसी के भी पुत्र नही, सब इन्हीं के पुत्र हैं।"

योगमाया ने कहा—"इससे क्या होगा ? आप इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं ? उन्हे देवकी के ही उदर से उत्पन्न हो जाने दो।"

भगवान् डॉटकर बोले—"बहुत बकबक मत करो। हम जो कहते हैं, वही करो। अब हमे रहा नही जाता। भक्तों के दुःख अब देखे नही जाते। अभी तुम नन्दजी के गोकुल मे जाओ, वहीं रोहिणी के गर्भ मे सङ्कर्षण जी को पहुँचा आओ।"

हाथ जोड़कर योगमाया ने कहा—'अच्छा, प्रभो! मैं अभी मथुरा मे गर्भस्थ शेषावतार को ले जाती हूँ और नन्दजी के गोकुल मे—रोहिणी जी के उदर मे-उन्हें पहुँचाती हूँ।" यह कहकर योगमाया चल दी।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—'सूतजी! ये नन्दजी कौन थे ? वसुदेव जी की पत्नी रोहिणी जी वहाँ क्यों रहती थी ?'

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज, नन्दजी कौन थे इसे बताने की मेरी सामर्थ्य नही। जैसे भगवान् नित्य हैं, वैसे ही उनके परिकर पार्षद भी नित्य हैं भगवान् अकेले प्रकटित नहीं होते, वे अपने पार्षदों के सहित ही प्रकट होते हैं। फिर भी कोई नन्दजी को द्रोण-वसु का अवतार बताते हैं, उनकी स्त्री यशोदा को धरा का अवतार कहते हैं। ये वसुदेव जी के भाई थे। कंस के भय से वसुदेव जी की रोहिणी आदि पत्नियाँ इधर उधर गुप्त स्थानों में, गुप्त [illegible] स्थान मे आकर छिप गई। रोहिणी जी नन्दजी के घर मे छिपकर रहती थी।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! वसुदेवजी की बहुतसी [illegible]

थे । और नन्दजी को आप गोप–अहीर–गूजर बताते है फिर ये उनके भाई कैसे हुए ?"

सूतजी बोले—"सुनिये, महाराज ! मैं आपको इसका रहस्य बताता हूँ । प्राचीन काल मे सभी जातियो म बडा सुन्दर सगठन था सभी जातियो मे राजा होते थे । ब्राह्मणो मे जो राजा होते थे, वे प्रधान कहलाते थे । क्षत्रियो मे जो राजा होत थे, वे नरपति भूपति, राजा नरेन्द्र आदि कहलाते थे । राजा के यहाँ बहुत सी स्त्रियाँ होती थी । उनमे ब्राह्मण वर्ण को छोडकर सभी वर्ण की स्त्रियाँ होती था । अपने वर्ण की प्रधान रानी राज-महिषी या पटरानी कहलाती थी । उसका जो बडा पुत्र होता था वह राजकुमार कहलाता था । राजा के पश्चात् वही गद्दी का अधिकारी होता था । उससे जितने छोटे पुत्र होते थे, वे कुमार कहलाते थे । उनको भी दो चार गावो का राज्य मिलता था । पटरानी के अतिरिक्त जितनी क्षत्रिय जाति की रानियाँ होती थी, उनके पुत्र भी मण्डलीक ठाकुर कहलाते थे । शेष जाति की स्त्रियो के पुत्र माता के वर्ण के ही समझे जाते थे । वैश्यो मे जो प्रधान होते थे, वे नगर श्रेष्ठी या श्रेष्ठि प्रवर कहलाते थे । अन्य जातियो के राजा अपनी अपनी जातियो के पति कहलाते थे, जसे निषादो के राजा निषादपति, गोपो के राजा गोपपति । ये सब क्षत्रिय राजाओ के अधीन होते थे । जिन जातियो की जङ्गल से आजीविका चलती है, जैसे निषाद गोप आदि, उनके भिन्न-भिन्न यूथ (ठांडे) होते हैं । उनमे एक-एक व्यक्ति मुख्य पञ्च या चौधरी होता है । ऐसे कई मुख्यो को मिलकर एक समिति (या पचायत) होती थी । जाति के समस्त अभियोगो का निर्णय यह समिति (जाति) पचायत ही करती थी ।

इन सबके ऊपर भी एक प्रधान होते थे। राजा की ओर से बहुतो को 'राय' की उपाधि मिलती थी।

माथुर और शूरसेन देशों का बलपूर्वक स्वय ही वंस राजा बन गया था। उसने समस्त मण्डलीक भूमिपालो को अपने अधीन कर लिया था। जितनी मथुरा के आसपास गोचर भूमि थी, वह गोकुल या ब्रज कहलाती थी। उसमे कई वन थे, जिनमे बारह वन मुख्य थे। उस ब्रज या गोकुल मे स्थान-स्थान पर गोपो के बहुत समूह रहते थे। उनके पास लाखो गौएँ होती थी। गोपालन ही उनका मुख्य व्यवसाय था। गोप जाति मे दो श्रेणियो के लोग होते थे। एक तो जगली जाति के अनार्य, उनको तो पचम वर्ण मे माना जाता था 'आभीराः पचमस्मृताः!' किन्तु दूसरे प्रकार के गोपो की एक जाति होती थी। क्षत्रिय से वैश्य या अम्बष्ट कन्या मे जो लोग होते थे, वे प्रायः गोपराज होते थे। वर्णाश्रमी इन गोपराजो के साथ वैश्यो के सदृश व्यवहार करते थे। क्षत्रिय इनकी कन्याओ के साथ विवाह भी करते थे।"

ब्रज के वनो मे रहने वाले गोपो के राजा श्री जयसेनजी थे। मथुरा से दक्षिण यमुनाजी के पार उनका गोकुल था। उसमे वे अपनी लाखो करोडो गौओ के साथ रहते थे। उन दिनो मथुरा के राजा देवमीढ राज्य करते थे। गोकुल के गोपराज राय जयसेनजी ने अपनी एक परम सुन्दरी पुत्री का विवाह मथुरेश महाराज देवमीढ के साथ कर दिया। महाराज देवमीढ की जो क्षत्रिय पटरानी थी, उससे तो शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुए और इस गोप-कन्या से पर्जन्य नामक पुत्र हुए। महाराज शूर की पत्नी का नाम मारिषा था। उससे दस पुत्र हुए, जिनमे वसुदेवजी बडे थे।

गोपराज जयसेन जी के कोई पुत्र नही था। अत उन्होने अपनी पुत्री के पुत्र पर्जन्यजी को गोद ले लिया। अपने नाना

की गद्दी पर आने से पर्जन्यजी गोपराज हो गये। उनका विवाह एक अम्बष्ठ जाति की वरीयसी नाम की पत्नी से हुआ। यह एक संकर जाति होती है। वैश्यों के सदृश ही इसे समझना चाहिये। गोपराज पर्जन्य के वरीयसी रानी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सनन्द और नन्दन थे।

गोपराज पर्जन्य रायजी जल वृद्ध हुए, तब उन्होंने अपने बड़े पुत्र उपनन्द को अपनी गद्दी दी। इन पाँचो भाइयो मे जो तीसरे नन्दजी थे, वे सबसे बुद्धिमान, चतुर और सर्वगुण सम्पन्न थे। पाँचो भाई उनमे अत्यन्त ही स्नेह करते, और भी जितने गोप थे, उनका अत्यधिक आदर करते। वैसे तो प्रायः यही सदाचार चला आता था, कि बडा पुत्र ही पिता का उत्तराधिकारी हो, किन्तु गणतन्त्र में जहाँ चुनकर प्रधान बनाया जाता है, वहाँ इसका अपवाद भी हो जाता है। सब गोपो की इच्छा थी, नन्द जी ही हमारे राजा हो। उपनन्द जी भी नन्दजी को बहुत प्यार करते थे। अतः जिस दिन पिता ने इन्हें पगडी पहनाई, उसी दिन इन्होंने सभी पचो के सम्मुख भरी सभा मे गोपो से कहा— "देखो, भाई, मुझमे इतनी योग्यता नही कि मैं आप सब पर समुचित शासन कर सकूँ। मेरा यह भाई नन्द अत्यन्त ही बुद्धिमान है, आप सब की सम्मति हो, तो यही हम सब का राजा बने। सब तो यही चाहते भी थे। सब ने एक स्वर से साधु-साधु कहकर उपनन्द जी की बात का समर्थन किया और नन्दजी को पगडी पहना दी गयी। तभी से वे नन्दराय हो गये। समस्त गोपो ने उनकी छत्रछाया मे रहना स्वीकार कर लिया।"

प्रत्येक गोप के यूथ के पृथक्-पृथक् राजा होते थे। वे सब राजा गोकुल के गोपराज को कर देते थे, और गोकुल के गोपराज

मथुरा के राजा के अधीन थे। वे उन्हें वार्षिक कर दिया करते थे। व्रज में एक महराना नामक ग्राम है। वहाँ के गोपराज सुमुख थे। उनकी पत्नी का नाम पटला रानी था। पटला रानी के गर्भ से श्री सुमुखराय के एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या अत्यन्त ही सुन्दरी थी। पुरोहित ने उसका नाम रखा यशोदा। यशोदा शनैं शनैं बढ़कर युवती हो गई। पिता को उसके विवाह की बड़ी चिन्ता थी। उस कन्या के रूप की ख्याति समस्त गोपों में फैल गई थी। उपनन्द जी ने भी उस कन्या की प्रशंसा सुनी। वे स्वयं महरान गये। गोपराज सुमुख ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। कन्या को देखकर उपनन्द जी के रोम रोम खिल उठे। उन्होंने सुमुखराय जी से कहा—"राजन्! मैं आपकी पुत्री यशोदा को अपने भाई नन्द के लिये माँगता हूँ।"

यह सुनकर श्री सुमुखजी के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—'महाराज! मेरी भी यही हार्दिक इच्छा थी किन्तु मैंने संकोचवश यह बात किसी से कही नहीं। मैं सोचता था, मैं एक साधारण गोप हूँ, आप गोपराज हैं, मेरी कन्या को आप क्यों स्वीकार करेंगे। किन्तु आपने कृपा करके स्वयं ही प्रस्ताव किया। मेरे लिये इससे गौरव की क्या बात होगी?'

विवाह की बात पक्की हो गई, नियत समय पर श्री यशोदा जी का विवाह श्री नन्दरायजी के साथ हो गया।

विवाह हुए बहुत दिन हो गये, किन्तु यशोदा जी के गर्भ से कोई बच्चा नहीं हुआ। इससे सभी के मन में उदासी रहती थी। सभी गोप चाहते थे, नन्दजी के एक पुत्र हो जाय। पाँचों भाइयों ने बहुत जप-तप, अनुष्ठान, दान-पुण्य, आदि कराये, किन्तु अभी तक यशोदा रानी गर्भवती नहीं हुई। इस प्रकार होते-होते नन्दजी की आयु नवासी वर्ष की हो गई और यशोदा

रानी की चौरासी वर्ष की। श्री नन्दजी और यशोदा जी को तो पुत्रप्राप्ति की अत्यन्त इच्छा थी ही, किन्तु वे उसे व्यक्त नहीं करते थे। उपनन्द जी अत्यन्त अधीर होते जाते थे।

एक दिन उपनन्द जी ने समस्त गोपों को बुलाया, बूढ़े बूढ़े ब्राह्मणों को बड़े सत्कार से आवाहन किया। पंचायती चौपाल में जाजिमें बिछ गईं। उनके ऊपर गुदगुदे गद्दे बिछाये गये। बड़े बड़े उपबर्हण (तकिये) रखे गये। प्रत्येक गाँव से, ग्राम ग्राम से हाथ में लाठी लिये, पगड़ी बाँधे, रसिया गाते हुए गोप आने लगे। उपनन्द जी ने सब का स्वागत-सत्कार किया। सभा लगी। हाथ जोड़कर उपनन्द जी ने कहा—"आप सब लोगों को मैंने इसलिये कष्ट दिया है कि हमारे जो राजा नन्द जी हैं, उनके कोई सन्तान नहीं। आप सब मिलकर कोई ऐसा जप-तप व अनुष्ठान बतावें कि हमारे ब्रज युवराज उत्पन्न हों।"

यह सुनकर सब अपनी-अपनी सम्मति देने लगे। किसी ने कहा—"तीर्थ करो" किसी ने कहा—"दान करो।" [illegible] किसी ने कहा—"अनुष्ठान करो।" [illegible] अपनी सम्मति दी। इसके अनन्तर [illegible] देखो भाई, हम सब वैष्णव हैं [illegible] रायण हैं। हमें उनका ही [illegible] प्रीति के निमित्त ही उपवास [illegible] एकादशी अत्यन्त प्रिय है। [illegible] समस्त ब्रज के लोग मिलकर [illegible] आज गङ्गादशहरा है। [illegible] नाम निर्जला एकादशी है [illegible] परसों निर्जला व्रत [illegible] पारण करें, उस दिन [illegible]

एक मन एक प्राण होकर इस हरिवासर के व्रत को करें। फिर पुत्र की तो बात ही क्या, स्वय साक्षात् श्रीहरि ही प्रत्यक्ष प्रकट हो जायँगे।"

वृद्ध ब्राह्मण की बातो का सभी ने एक स्वर से अनुमोदन किया। सब ने कहा—"बाबा! हमारे गाँव मे तो एकादशी को चूल्हा जलेगा नहीं।" सब के मन मे था बडा उत्साह, बडी उत्कण्ठा, अत्यन्त ही आह्लाद। सभी हरिवासर व्रत करने की इच्छा करने लगे। स्त्रियो ने कहा—"हम भी व्रत करेंगी।" बच्चो ने ताली पीटते हुए आनन्द मे उछलते हुए कहा—'बाबा! बाबा! हम भी एकादछी ब्नत कलेङ्गे।"

नन्दजी ने प्यार से कहा—"अरे, बेटो! तुम क्या व्रत करोगे। बच्चे व्रत नही करते।"

बच्चो ने हठ करके कहा—"नही बाबा! हम तो कलेङ्गे।"

नन्दजी बोले—'अच्छा, तुम एक दाढ से व्रत करना। एक ओर की दाढ से खा लेना। दूसरी दाढ मे अन्न न लगे, यही बच्चो का व्रत है।"

बच्चो ने कहा—"नही बाबा! हम तो निलजला कलेङ्गे।"

नन्द बाबा ने कहा—"अच्छा, अच्छा, करना। इस प्रकार समस्त व्रज मे एकादशी व्रत करने का उत्साह छा गया। आज से ही तैयारियाँ होने लगी। भगवान् के मन्दिर सजाये गये। दशमी के दिन सब ने एक बार फलाहार किया। एकादशी के दिन सभी निर्जल रहे। रात्रि मे भगवान् के जगमोहन मे कीर्तन हुआ। जब आखो मे कुछ नीद के डोरे दिखाई देने लगे, तब भगवत्-सम्बन्धी अभिनय आरम्भ हुआ। गोपो ने ऐसा सुन्दर अभिनय किया, कि सभी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। किसी को नीद की स्मृति ही नही आई। प्रात काल

सब उठकर यमुना स्नान को चले गये। घर-घर ब्राह्मणो को भोजन कराया गया। ब्रज मे इतने ब्राह्मण न मिले, तो मथुरा जो से बुलाये गये। यथेष्ट बडी और खीर खाकर सब ने हृदय से आशीर्वाद दिया—"बाबा ! तेरे घर मे पुत्र ही नही, परमेश्वर पैदा हो। एक नही, दो भगवान् प्रकट हो।"

हाथ जोडकर नन्दजी ने उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। दक्षिणा सहित ताम्बूल निवेदन किया, एक-एक दुधारु गाय उन्हे दक्षिणा मे दी।

ब्राह्मणो ने कहा— 'बाबा ! हम अभी से गाय नही लेते, तेरे लाला ह्वै जायगो, तब लेंगे।"

बाबा बोले—"ब्राह्मणो ! तब एक गो थोडे ही दी जायगी। तब तो गायो से आपके घरो को भर दूँगा। यह तो द्वादशी पारणा की दक्षिणा है। गोदान के बिना कोई भी कर्म साङ्गोपाङ्ग नही होता।'

यह सुनकर ब्राह्मणो ने उच्च स्वर से कहा—"आप धनवान, पुत्रवान, ऐश्वर्यवान तथा कीर्तिमान हो। आपके अनत पौत्र हो।"

इस प्रकार वर्ष की चौबीस एकादशियाँ ब्रज मे बडी ही धूम धाम से मनाई गई। वही ज्येष्ठ शुक्ला निर्जला एकादशी पुनः आई। सब गोपो ने बडी धूमधाम से एकादशी का उद्यापन किया। ब्रज भर मे आनन्द की लहर छा गई। द्वादशी के दिन, सम्पूर्ण दिन नन्दजी ब्राह्मणो अतिथि अभ्यागतो तथा गोपो को भोजन कराते रहे। सब की अनुमति लेकर उन्होने अपने भाइयो के सहित व्रत की पारणा की।

वे दिन भर के थके थे, तीन दिन के भूखे थे शय्या पर पडते ही उन्हे निद्रा आ गई। प्रात.काल ब्राह्म मुहूर्त मे उन्होने स्वप्न देखा। सामने यशोदा रानी बैठी हुई हैं। उनकी गोद मे श्याम

वर्ण का अति चचल बालक क्रीडा कर रहा है। उसके अग का वर्ण नवीन जलभरे मेघ के समान, गहरी काली दूर्वा के समान अलसी के पुष्प के समान, श्याम तमाल के समान तथा सुचिक्कण नीलकान्त मणि के समान, सरोरुह नीले कमल के समान, दिव्या ञ्जन मिश्रित जमे हुए नवनीत के समान तथा विष्णुकान्ता लता के नव विकसित पुष्प के समान है। कानो तक फैले हुए, कमल के समान खिले हुए उसके बडे ही मनोहर बडे बडे कजरारे नेत्र हैं। यशोदा उस बालक को दुग्ध पिला रही हैं। चचलतावश वह माता स्तन को छोड चकित-चकित दृष्टि से मेरी ओर निहार रहा है। उसके मुख के दोनो ओर मातृ-स्तन का दुग्ध बह रहा है। पोली अँगुली के ऊपर भी फुहारे के समान दुग्ध की बूँदें पडी हुई हैं। उस बालक को देखकर नन्दजी तो प्रेम मे विभोर हो गये। ज्यो ही उन्होने हाथ बढाया, त्यो ही उनके नेत्र खुल गये। तुरन्त उन्होने यशोदा जो को पुकारा।

रानी यशोदा पहले ही उठ पडी थी। वे दही मथने वाली दासियो को दही मथने के लिये कह रही थी। पति की पुकार सुनकर वे तुरन्त उनके पास दौडी गई। वहाँ उन्होने देखा—नन्दजी के नेत्रो से झर-झर अश्रु झर रहे है। उन्हे शरीर की सुधि नही है। वे प्रेम मे विभोर हुए विकल से बने हुए हैं। यशोदा रानी न उनके सिर पर हाथ रखा और वाली— प्राण-नाथ ! चित्त कैसा है ?'

श्री नन्दराय ने नेत्र खोले। रानी को देखते ही उनका हृदय भर आया। पचासो वर्ष की रानी ऐसी लगी, मानो अभी उनका विवाह होकर आया हो। वे अत्यन्त ही स्नेह से बोले—' प्रिये ! मैंने एक स्वप्न देखा है।"

स्वप्न की बात सुनते ही रानी वही पलग के नीचे बैठ गई

और बोली—'महर, आपने क्या स्वप्न देखा है। उसे मुझे सुनाइये।"

नन्द बाबा उठने लगे। बीच मे ही रानी ने पकडकर कहा—"उठो मत, सोते सोते ही उसे सुनाओ।"

नन्दजी बोले—"महरि ! ऐसे बात बनेगी नही, मैं बैठकर ही उसे सुनाऊँगा।"

यह कहकर बाबा तो पलग पर ही बैठ गये। मैया पलंग की पाटी पर अपनी छाती सटाकर निर्निमेष दृष्टि से उनके प्रफुल्लित मुख कमल को देखने लगी। नन्दजी के नेत्रो से निरन्तर अश्रु बह रहे थे वे रुकते ही नही थे। कभी-कभी कोई टप-टप करके यशोदा जी के केश पाशो पर भी गिर पड़ते थे।

यशोदा जी ने कहा—'हाँ, तो सुनाओ क्या स्वप्न देखा था।"

बडे कष्ट से कण्ठ को खाँसकर विशुद्ध बनाकर रुक-रुककर नन्द बाबा बोले—"रानी ! आज मैंने विचित्र स्वप्न देखा। तुम्हारी गोद मे नील मणि के नवनीत के समान अत्यन्त मृदुल अत्यन्त मनोहर, अति सुकुमार, परम चचल, कमल दल लोचन, घनश्याम, कोटि काम से भी लावण्य युक्त एक सुन्दर बालक क्रीड़ा करते तुम्हारा स्तन पान करते, अभी-अभी देखा है। इसे स्वप्न भी नही कह सकता, जागृत भी नही कह सकता, मनोभ्रम भी नही है। मेरी बुद्धि मे नही आती की बात क्या है ! क्या श्री मन्नारायण कभी ऐसी कृपा करे गे ? क्या हमे कभी ऐसा देव दुर्लभ दृश्य दिखाई देगा ? क्या कभी मैं तुम्हारी गोद को भरी हुई देखूँगा ?"

इतना सुनते ही नन्द रानी का हृदय भर आया। इनके भी दोनो नेत्र बहने लगे और वे गद्गद कण्ठ से आँसू पोछते हुए

बोली—"महर ! मैंने भी आज ऐसा ही स्वप्न देखा है। ऐसा ही बच्चा मैंने अपनी गोद में निहारा है।"

अब क्या था, नन्दजी के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। स्नान करके उन्होंने स्वप्न की बात अपने बड़े भाई उपनन्दजी से कही। उपनन्द जी ने तुरन्त अपने बूढ़े पुरोहित जी को बुलाया। पुरोहित जी यमुना स्नान करके आ रहे थे। किसी गोप ने कहा—"पण्डित जी ! बड़े बाबा आपको बुला रहे है।"

बूढ़े पुरोहित जी ने कहा—"अरे भाई, तुम देखते नहीं, अभी तो मैं यमुना-स्नान करके आ रहा हूँ, शालिग्राम भगवान् की पूजा कर आऊँ, तब वस्त्र पहनकर, तिलक छापे लगाकर आऊँगा।"

पुरोहित जी के आने मे देर देखकर उपनन्द जी स्वयं ही चल दिये। उन्हे मार्ग में पुरोहित जी आते हुए मिले। उपनन्द जी ने उनके पैर छुए।

आशीर्वाद देते हुए पण्डित जी ने कहा—"अरे, भाई ! तुम ने क्यों कष्ट किया। मैं आता तो था, तनिक भगवान् की पूजा करने मे देर हो गयी।"

उपनन्द जी ने आग्रह के स्वर में विनीत भाव से कहा—"महाराज तनिक चौपाल से होते हुए निकल जायँ। एक आवश्यक कार्य है। पत्रा है आपके पास ?"

बूढ़े ब्राह्मण आग्रह को टाल न सके, बोले—"अच्छी बात। चलो, पत्रा तो हमारा अस्त्र ही है जैसे क्षत्रिय कभी तलवार को छोड़कर नहीं जाता, उसी प्रकार हम कभी पचाग छोड़कर कहीं नहीं जाते। हाँ पचांग मेरे दुपट्टे में बंधा है।"

यह कहकर ब्राह्मण अपनी सटकिया को टेकते-टेकते चौपाल की ओर चले। हाथ जोड़े हुए बूढ़े उपनन्द भी उनके पीछे चले। सूतो कपड़े पर तो इस समय पुरोहित जी बैठे गे नहीं, इसलिये

उन्होने ऊनी गलीचा नीम के नीचे बिछा दिया। नन्दजी को उपनन्द जी ने सकेत किया। उन्होने पचीस मुहरें पुरोहितजी के चरणो मे रखी। पुरोहित जी ने आश्चय के साथ पूछा—'अरे, भैया! यह किस बात की दक्षिणा है?"

उपनन्द जी कहा—'महाराज! आज इस नन्द और इसकी बहू-दोनो ने स्वप्न मे एक बालक देखा है। पचाग मे देखिये, इस स्वप्न का क्या फल है"

पण्डित जी बोले—'अजो, राजन्! हम बिना ही पत्रा देखे बताये देते हैं—नन्द के लाला होगा। और वह नारायण के सदृश होगा।"

उपनन्द जी ने कहा—'महाराज! ऐसा हमारा भाग्य कब होगा? कब हम बहू की भरी गोद देखेंगे? महाराज! मेरी प्रार्थना है कुछ ब्राह्मणो को अनुष्ठान मे बिठा दें।"

पण्डितजी वाले- अच्छी वात है, ब्राह्मणो को मैं बुलाता हूँ।" अभी तो सूर्य नारायण भी उदय नही हुए। आज कुछ ब्राह्मणो को वरण कर दो।"

ब्राह्मणो ने जब सुना कि नन्द बाबा बेटा के निमित्त कोई अनुष्ठान बठाना चाहते हैं, तब सभी प्रसन्न हुए और आकर बोले—'बाबा! हमे तेरी दक्षिणा नही चाहिये। हम तो अपनी ओर से व्रज नवयुवराज के उदय के निमित्त अनुष्ठान करेंगे।"

नन्दजी ने कहा— ब्राह्मणो! मेरा क्या है? मैं तो बूढा हो चुका। आपके आशीर्वाद से सब कुछ हो सकता है। आप चाहे जसे अनुष्ठान करें।"

ब्राह्मणो ने कहा—'हे ब्रजेश्वर! हम प्रतिज्ञा करते है जब तक तुम्हारे पुत्र न होगा, तब तक हम यमुना-किनारे

अनुष्ठान करते ही रहेंगे।' यह सुनकर सभी गोपों को बड़ी प्रसन्नता हुई। नन्दजी ने एक-एक सुवर्ण मुद्रा वरण में दी और कह दिया— 'महाराज! दूध, चीनी, घी, आटा, दाल, चावल— सब के लिये सेवक पहुँचा आया करेंगे। आप निश्चिन्त होकर अनुष्ठान करें।''

यह ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी की बात है। नन्दजी ब्राह्मणों से यह कह ही रहे थे, कि उसी समय सबने देखा, खड़ाउँओं की खटखट सुनाई दी। सबका ध्यान उस ओर गया। सब ने आश्चर्य के साथ देखा, एक अत्यन्त ही तेजस्विनी वृद्धा माता चली आ रही है। बगुले के पङ्खों के समान उनके सिर के समस्त बाल सफेद थे। शरीर का वर्ण गोर था, मुख मण्डल पर दिव्य तेज प्रकाशित हो रहा था। वे सफेद धोती पहने हुए थी, कण्ठ मे तुलसी जी की मालायें पड़ी थी। हाथ मे सुमिरिनी थी। उनके साथ एक अत्यन्त ही सुन्दर छोटा सा बालक था। बालक बड़ा चचल और हँसमुख था। वह लगोटी लगाये था। हाथ मे पलाश का दड लिये हँसता हुआ ऐसा लगता था मानो मूर्तिमान विनोद हो।''

समस्त गोप उस वृद्धा माता के तेज को देखकर स्तम्भित हो गये। सब ने उनके चरणो मे प्रणाम किया। वृद्धा माता ने हाथ उठाकर सब को आशीर्वाद दिये।

तब उपनन्द जी ने पूछा—''भगवती! आप कौन हैं? कहाँ से पधारी हैं? किस कारण आपने कृपा की? हम आपको क्या सेवा करें?''

वृद्धा ने कहा—'मैं अवन्तिकापुरी की रहने वाली हूँ। वैसे तो हम रहने वाली काशी के हैं, किन्तु मेरा एक पुत्र अवन्तिका-पुरी मे बच्चो को पढाने के लिये आ गया है। मुझे लोग पौर्णमासी

कहते है, मेरे पुत्र का नाम सान्दीपनी आचार्य है। यह बालक, उसी का है। यह मुझसे बडा स्नेह रखता है। इसका नाम मधुमङ्गल है। मैंने सुना है कि ब्रज मे नारायण अवतार धारण करेगे, इसीलिये व्रजवास करने के निमित्त इस वृद्धावस्था मे मैं यहाँ आई हूँ। यह बच्चा हठ पूर्वक मेरे साथ आ गया है।"

यह सुनकर उपनन्दजी ने कहा—'भगवति! यह हमारे लिये परम सौभाग्य की बात है, आप यहाँ व्रज मे निवास करें। हम यमुना-किनारे आपकी कुटो बनाये देते हैं। हम हर प्रकार आप की सेवा करेंगे।'

उस समय वे वृद्ध ब्राह्मण बोले— गोपो! सुनो मैं तो तुम्हारी अस्थाई पुरोहिती करता था। अब ये भगवती आ गई हैं, आज से ये ही तुम्हारी पुरोहितानी रही। मैं भी जो होगा, आपका काम करता रहूँगा।"

सब ने इस बात को सहर्ष स्वीकार किया। उसी दिन से उनका नाम पौर्णमासी पुरोहितानी पड गया। उनका पुत्र मधुमङ्गल बडा हँसोड, बडा चचल, बडा ढीठ था। वह गोपियो के घर घर मे जाता और मुँह मटकाकर सैन चलाकर, रसिया गाकर नाच कर तथा विविध प्रकार आकृति बनाकर गोपियो को हसाया करता था। वह सब का खिलौना हो गया। पौर्णमासी पुरोहितानी के लिये कुटिया बन गई, वह यमुना किनारे रहने लगी। घर-घर से दूध पहुँच जाता। एक बडा कडाह भर जाता, उसमे पुरोहितानी चीनी-चावल डाल देती। फिर तुलसी डालकर नारायण का भोग लगाकर सबको प्रसाद बाँटती। पौर्णमासी पुरोहितानी की खीर व्रज मे सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई।

इन्हीं सब बातो मे दोपहर हो गया। भीतर से कई बार

बूढी दासी रसोई के लिये बुलाने आई, किन्तु सब लोग तो पौर्णमासी पुरोहितानी की आवभगत मे लगे हुए थे। जब पुरोहितानी पौर्णमासी की कुटिया बन गई, उनकी खीर तैयार हो गई, नारायण का भोग लग गया, वे पाने बैठ गईं, तब नन्दजी घर आये।

यशोदा रानी द्वार पर ही खडी थी। उन्होने प्रेम भरे कोप के साथ कहा—"तुम्हें सब कामो के लिये समय मिल जाता है, रसोई के लिये ही समय नही मिलता। कब का राजभोग तैयार है, पुजारी जी भोग लगाकर कब के बैठे हैं। कितनी बार मैंने दासी भेजी, आप भूल ही जाते हैं।"

नन्दजी ने स्नेह से कहा—"देखो, महर! बडी प्रसन्नता की बात है, आज हमारे यहाँ एक बडी तेजस्विनी पुरोहितानी आई है। मैं उनके ही स्वागत-सत्कार मे लगा रहा। घर के सब लोग बैठे होगे। चलो, प्रसाद पावें।"

नन्दजी भीतर गये। सब भाइयो ने प्रसाद पाया। नन्दरानी की जिठानी ने सब को ताम्बूल दिये। इतने मे ही दोपहरी ढल गई। नन्द बाबा चौपाल पर बैठे थे। बहुत से गोप इकट्ठे हो गये थे। भाँति भाँति की चर्चायें चल रही थी। कोई अनुष्ठान वाले ब्राह्मणो की प्रशंसा कर रहा था, कोई पौर्णमासी पुरोहितानी के तेज के सम्बन्ध मे कह रहा था। कोई मधुमङ्गल के विनोदी स्वभाव को बता रहा था। इतने मे ही घोडो के खुरों की टपटप की ध्वनि सुनाई दी। सब सुनकर चौंक गये, कौन इतने बडे सफेद घोडे पर चढ़कर आ रहा है। किसी ने कहा—"कंसराय के यहाँ से कोई अधिकारी आया होगा।" किसी ने कहा—"कोई मण्डलीक होगे।"

सब देख रहे थे, कि घोड़ा चौपाल पर रुका नही, भीतर

अन्त:पुर में बिना रोक-टोक चला गया। सब ने समझा, महराने का कोई लडका है। तभी तो बिना पूछे अपनी बूआ के पास चला गया है।

भीतर अन्तःपुर में स्त्रियां भी चौंक पडी। घोड़े का सवार घोड़े को द्वार पर ही छोडकर भीतर चला गया। सब स्त्रियो ने आंचल ठीक किया, नन्दरानी ने घूंघट मार लिया। उस पुरुष ने नन्दरानी का घूंघट हटाकर कहा—"रानी, आप मुझे पहचानती नही ?"

परिचित सा स्वर सुनकर नन्दरानी ने उस पुरुष की ओर देखा और बोलें—"हाय! रोहिणी जीजी! तुम पुरुष-वेश मे कैसे आईं ?"

रोहिणी देवी ने नन्दरानी के मुख पर हाथ रखते हुए कहा—"चुप! चुप! किसी पर यह बात प्रकट न होने पावे।"

तुरन्त नन्दरानी ने दासी को भेजा। नन्दजी बुलाहट सुन कर तुरन्त भीतर गये। नन्दरानी ने उनके कान मे कुछ कहा। सुनकर नन्दजी भीतर गये और बोले—"भाभी! तुम अच्छी आ गईं। कंस बड़ा दुष्ट है। तुम पुरुष-वेश मे बडी बुद्धिमानी से आ गईं। यह तुम्हारा घर है, किसी प्रकार संकोच का काम नही।" उसी समय नन्दरानी ने घर की सब तालियो का गुच्छा रोहिणी जी को देते हुए कहा—"जीजी! अब तुम इसे सम्हालो।" रोहिणी जी इतना आदर पाकर प्रसन्न हुईं। ताली का गुच्छा उन्होने अपने लंहगे के नारे मे बांध लिया। सुखपूर्वक वे नन्दजी के घर मे रहने लगी।

व्रज मे रहते हुए ही एक दिन रोहिणी जी ने अनुभव किया मेरे उदर मे कोई अपूर्व वस्तु आ गई है। उनका हृदय आनन्द से भर गया। अंधेरे में भी उनका मुख मण्डल चमकने लगा

उन्हें प्रतीत हो गया कि उनके उदर में सहसा किसी ने नारायण के अंश को लाकर बिठा दिया है। सात महीने की तो वे गर्भिणी

थी ही। श्रावण में पूरे नौ महीने हो गये। भाद्रपद शुक्ल षष्ठी के दिन भगवती रोहिणी ने एक पुत्र प्रसव किया। ये ही शेषावतार भगवान् संकर्षण थे। दासी ने चुपके से नन्दजी के कान में यह बात कही। नन्दजी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वे चाहते थे, आज मैं अपना सर्वस्व लुटा दूँ। किन्तु कंस के भय से वे प्रकट में

उत्सव कर ही नही सकते थे। गोपो से भी उन्होने चर्चा नही की। गुप्त रीति से वे जो कुछ दान पुण्य कर सकते थे, किये।

रोहिणी-नन्दन भगवान् सकर्षण जब से प्रकट हुए, तब से न वे कभी हँसते थे, न नेत्र ही खोलते थे। रोहिणी जी ने एक दिन रात्रि मे पौर्णमासी पुरोहितानी को बुलाकर पूछा—' माता जी ! यह बच्चा न तो नेत्र ही खोलता है, न हँसता ही है, इसके लिये कोई जन्त्र मन्त्र कर दो। कोई टोटका करना हो तो टोटका बता दो। झाड-फूँक करनी हो, तो झाड-फूँक कर दो।"

पुरोहितानी ने कहा—"रानी जी ! इस पर हमारी झाड-फूँक न लगेगी। एक वर्ष के पश्चात् इसका साथी आ जायगा, तब यह हँसेगा खेलेगा।'

सब ने पुरोहितानी की बात पर विश्वास किया। नन्दरानी के हर्ष का ठिकाना नही था। कुछ काल मे नन्दरानी के गर्भ रह गया। समस्त व्रज मे हल्ला मच गया, ब्राह्मणो के अनुष्ठान ने काम किया। जल भरने जो गोपिकायें यमुना जी के किनारे जाती, तो वहाँ झुन्ड के झुन्ड ब्राह्मणो को झोली मे हाथ डाले माला सटकाते देखती, तो हँसकर कहती 'ब्राह्मणो ! तुम बूढी रानी के बालक पैदा करने को जप कर रहे हो। क्या यह सफल होगा ?"

ब्राह्मण कहते—"अवश्य सफल होगा। यशोदाजी कभी बूढी नही होती। नन्दजी के बाल तो तिल-चाँवरी के सदृश आधे सफेद होगये हैं, किन्तु यशोदा जी के सिर मे कोई एक भी तो सफेद बाल निकाल दे।"

स्त्रियाँ कहती—' भगवान् आपकी आशा पूर्ण करें।"

जब नन्दरानी गर्भवती हो गई, तब गोपियाँ आकर ब्राह्मणो से कहती—"ब्राह्मणो ! अब तो आपकी पांचो उंगलियाँ

घों में हैं। नन्द रानी के कुछ-कुछ गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे हैं।"

ब्राह्मण अपनी प्रसन्नता को छिपाते हुए अकड़कर कहते—"क्या वेदों के वचन असत्य हो जायँगे? हमें तुमने ऐसा-वैसा ब्राह्मण समझ रखा है? हमारे मन्त्र कभी व्यर्थ नहीं जा सकते।"

कोई हँसमुख गोपी हँसती-हँसती कहती—"ब्राह्मणो! यदि छोरी हो गई तो?"

इस पर एक बूढ़े ब्राह्मण आवेश में आकर बोले—"यदि छोरी हुई भी, तो हम उसके स्थान पर छोरा कर देंगे। छोरी विलीन हो जायगी।"

बूढ़ी-बूढ़ी गोपियाँ कहतीं—"हाँ महाराज! आप सब कुछ कर सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मैंने आप की दो बातों का उत्तर दिया। एक तो इस बात का कि बलदेव जी देवकी और रोहिणी दोनों के पुत्र कैसे हुए। वे गर्भ में तो देवकी के ही आये थे, किन्तु भगवान् की आज्ञा से योगमाया ने उन्हें उनके गर्भ से खींचकर सम्यक प्रकार से कर्षण करके रोहिणी जी के उदर में स्थापित कर दिया। इसीलिये उनका नाम संकर्षण पड़ा। दूसरे आपने वसुदेवजी और नन्दजी का सम्बन्ध पूछा; वह भी बताया। इन दोनों के बाबा एक थे। वसुदेव जी के पिता शूर क्षत्री रानी से उत्पन्न हुए थे। और नन्दजी के पिता पर्जन्य गोपकन्या के गर्भ से पैदा हुए थे। यद्यपि नन्दजी अपने नाना के यहाँ रहते थे। फिर भी वसुदेव जी से उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। वसुदेव जी तथा उनकी स्त्रियाँ व्रज में आती जाती थीं। सब में परस्पर बड़ा स्नेह था। नन्दजी की ही

सम्मति से वसुदेव जी की ग्यारह पत्नियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में गुप्त रीति से रहती थीं। रोहिणी जी को नन्दजी ने अपने घर में ही रखा। यह तो मैंने अत्यन्त संक्षेप में बलदेव जी के जन्म का प्रसङ्ग कहा। अब आप श्री कृष्णावतार की कर्णप्रिय कमनीय कथा को श्रद्धा सहित श्रवण करें।"

छप्पय

हरि की आयसु पाइ योगमाया तहँ आई।
मातु देवकी गर्भ खींचि कें गोकुल लाई॥
कर्‌यो रोहिणी उदर तेज माता मुख छायो।
दशम मासमहँ पुत्र राम संकर्षण जायो॥
भाद्र शुक्ल छटि तिथि लगन, शुभ मुहूर्त महँ उदित है।
दये दरश ब्रज जन सकल, नाचें उदितइ मुदित है॥

विश्वात्मा का वसुदेव जी के अन्तःकरण में प्रवेश

[८२५]

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।
आविवेशांश भागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥*

(श्री० भा० १० स्क० २ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

इत ब्रजपति नँदराय, पुत्रहित मख करवाये ।
विप्र वेदवित् बहुत मन्त्र जप करन बिठाये ॥
उदर यशोदा माहिँ योगमाया आई जब ।
ब्रज महँ मङ्गल भये, परस्पर कहहिँ गोप सब ॥
लाल होइगो नन्द कें, हल्ला ब्रज महँ मचि गयो ।
गऊ गोप गोपिनि को, तब हियो शीतल भयो ॥

पहले कोई बात मन मे आती है तब उसे वाणी द्वारा लेखनी द्वारा, संकेतो द्वारा, व्यक्त करते है। तदनतर उसे कर्मों द्वारा कार्यरूप मे परिणत करते हैं। हम कोई भी काम सहसा नही कर डालते। प्रथम मन ज्ञानेन्द्रियो के गोलको द्वारा विषयो को देखता है, तुरन्त बुद्धि को सूचना देता है। बुद्धि करो या न करो का निर्णय देती है, तब मन पुनः कर्मेन्द्रियो को प्रेरित

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! भक्तो के भय को भगाने वाले भगवान् विश्वात्मा ने भी अपने अश और भगों के सहित वसुदेवजी के अन्तःकरण मे प्रवेश किया।"

करना है; शरीर को उस कार्य में लगाता है। कभी-कभी कोई भाव वायुमण्डल से स्वयं बुद्धि में आ जाते हैं। तब जीव उनके अनुसार कर्मों में प्रवृत्त होता है। परम सुकृति जीवन मुक्त महापुरुष प्रभु की प्रेरणा से सब करते हैं। वैसे तो सभी चराचर-स्थावर-जङ्गम प्राणी भगवद् आज्ञा से ही काम करते हैं, केवल इतना है कि ज्ञानी उस प्रेरणा का अनुभव करते हैं, जिसको अज्ञ पुरुष नहीं कर पाते।

सूतजी ने कहा—'मुनियो! भगवान् योगमाया को ऐसी आज्ञा देकर तथा उसको विशेष वर देकर स्वयं प्रकट होने की सोचने लगे। उन्होंने वसुदेव जी के अन्तःकरण में प्रवेश किया।"

यह सुनकर शौनक जी बोले—"सूतजी! योगमाया को भगवान् ने वरदान क्या दिया, यह बात तो हम भूल गये।"

सूतजी बोले—"अजी महाराज! आप भूले थोड़े ही हैं। वह वरदान वाली बात तो मैंने पूरी कही ही नहीं। हाँ तो भगवान् ने योगमाया से कहा—'तुम देवकी जी के गर्भ को [illegible] जाकर रोहिणी के गर्भ मे स्थापित कर दो।"

योगमाया ने कहा—"महाराज! मुझे क्या [illegible] मिलेगा?"

भगवान् ने कहा—'तुझे मैं अपनी बहन बना लूँगा।"

योगमाया बोली—"आप तो दो माताओं के पुत्र कहलाओगे, कोई आप को यशोदानन्दन कहेंगे, कोई देवकीनन्दन। मुझे आप किसकी बेटी बनावेंगे?"

भगवान् ने कहा—'जब बहन ही बनाई, तो तू भी दोनों की ही बेटी कहलायेगी।"

योगमाया बोली—"बहन बनाकर मुझे क्या [illegible]

खडी हुई, किसी के हाथ मे मेरा हाथ पकडा दोगे। वह मुझे वहू बनाकर ले जायगा। झाड़ू-बुहारू, चक्की चूल्हे मे ही मेरे दिन बीतेंगे। सब मुझे अबला नारी कहकर मुझ पर दया दिखावेंगे।"

भगवान् बोले—"अरे, तू अबला बनने से क्यो डरती है? लगन-विवाह कुछ झझट नही। पैदा होते ही कस तुझे पत्थर पर पटककर परलोक पठा देगा।"

योगमाया बोली—"तब मेरे प्रकट होने से क्या लाभ? आप कहते हैं, तू अबला भी न होगी, बच्ची ही मारी जायगी। सब लोग मेरी हँसी उडावेंगे, तिरस्कार करेंगे कि भगवान् की योगमाया होकर भी इसका कुछ वश न चला। मैं क्या बल-पौरुष दिखाऊँगी?"

भगवान् बोले—"तुम्हारी हँसी उडाने की सामर्थ्य भला किसकी है? कस तुझे साधारण बालिका समझ कर पत्थर पर पटक अवश्य देगा' किन्तु तू आकाश मे उड जायगी। वहाँ अष्टभुजी बनकर विश्व वन्दिता भगवती देवी बन जायगी। तू समस्त कामना और वरो को देने वाली होगी। सभी लोग तुझे समस्त मनोवाञ्छित फलो तथा वरो को देने वाली, समस्त मङ्गलो की अधीश्वरी समझेंगे। सदा धूप, दीप, नैवेद्य, चुनरी, कण्ठ-सूत्र, रोली कुकुम आदि पूजा के अनेक उपहारो, नाना प्रकार के मङ्गल-द्रव्यो से तेरी पूजा किया करेंगे। लोग तुझ पर विविध भाँति की बलियो को चढावेंगे। ससार मे तुम्हारे बहुत से पीठ प्रसिद्ध होगे। विन्ध्याचल मे तुम्हारा निवास होगा। ससार मे तुम्हारे अनेक नाम प्रसिद्ध होगे। कोई तुम्हें दुर्गा, तारा, जगदम्बा-भद्रकाली कहेगे। विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, ईशानी, नारायणी,

शारदा, अम्बिका, भूति, सनति, कीर्ति, कान्ति, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि, उषा, और अन्यान्य स्त्रीवाचक नाम तुम्हारे होगे। तुम्हे लोग आर्या, वेदगर्भा भद्रा, भद्रकरी, क्षेम्या, क्षेमकरी, ललिता, महेशानी आदि भी कहेगे। बोल अब तो प्रसन्न है ?"

योगमाया ने कहा—' महाराज ! मैं तो सदा ही प्रसन्न हूँ। आपकी आज्ञा को सदा सिर पर धारण करती हूँ।"

भगवान् बोले—"अच्छा, तुम जाओ, यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न होओ। मैं देवकी जी के गर्भ से प्रकट होऊंगा। जिस गर्भ को तू देवकी जी के गर्भ से खीचकर व्रज मे रोहिणी जी के गर्भ मे स्थापित करेगी, वह गर्भ के आकर्षण किये जाने से 'संकर्षण' कहलावेगा। लोकरञ्जन करने से 'राम' तथा बलवानों मे श्रेष्ठ होने से 'बलभद्र' भी कहावेगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! भगवान् के इस प्रकार आज्ञा देने पर भगवती माया देवी ने कहा— अच्छी बात है, मैं ऐसा ही करूँगी " ऐसा कहकर उसने देवकी के सप्तम-गर्भ को रोहिणी जी के उदर मे डाल दिया। कंस नित्य ही पूछा करता था,'देवकी का क्या समाचार है।' सेवको ने जाकर कह दिया—"महाराज ! देवकी का सातवाँ गर्भ तो गिर गया।" यह बात क्षण भर मैं सम्पूर्ण नगर मे फैल गई। पुरवासी परस्पर यही चर्चा करने लगे कि देवकी का गर्भ गिर गया।"

गर्भ गिरने की बात सुनकर कस को बडी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा—"चलो, सातवाँ तो विना मारे ही मर गया। अब आठवाँ, मेरा शत्रु, गर्भ मे आवेगा। उसी गर्भ की सावधानी से रक्षा करनी है।" यह सोचकर उसने कारावास के अध्यक्ष को बदल दिया। दूसरा विश्वास पात्र अधिकारी वहाँ नियुक्त किया। उसने प्रहरी दुगुने कर दिये। पहरे मे जो प्रहरी तनिक

भी असावधानी करता, उसे कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाता। अब कंस को शांति नहीं थी। "आठवें गर्भ में स्वयं मेरे पुराने शत्रु श्री हरि आवेंगे। उन्हें जन्म लेते ही मैं मार डालूँगा।" यही चिन्ता उसे रात-दिन बनी रहती।

इधर जब बलदेव का जन्म हो गया, तब योगमाया देवी ने भी माता यशोदा जी के गर्भ में प्रवेश किया। योगमाया के प्रभाव से समस्त गोपों को यह दृढ विश्वास हो गया, कि नन्द जी के यहाँ लाला ही उत्पन्न होगा। यशोदा जी को अभी से बधाइयाँ आने लगी। व्रज तो पहले ही परम समृद्धशाली, शोभा-सम्पन्न था किन्तु अब तो उसकी शोभा का क्या कहना है! वहाँ के समस्त कङ्कड़-पत्थर मणि-माणिक्य हो गये।

आज जब समय आया, तब भगवती काल-शक्ति ने प्रभु को प्रेरित किया। भक्तों के भय के हरण करने वाले भक्त-भावन भगवान् ने वसुदेव जी के अन्तःकरण में प्रवेश किया। विश्वात्मा भगवान् अपनी समस्त कलाओं के सहित वसुदेव जी के मन में आये। जिस समय शौरि आनक दुन्दुभि ने अपने अन्तःकरण में भगवान् का दिव्य-तेज धारण किया, उस समय वे सूर्य के समान देदीप्यमान होने लगे। उस समय कोई उन्हें दबा नहीं सकता था, कोई उनका धर्षण नहीं कर सकता था। वे असह्य और अदम्य हो गये। अन्तःकरण में भगवान् के प्रवेश करते ही वे कान्तिवान, प्रभावान तथा देदीप्यमान हो गये।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् तो घटघट में विराजमान हैं। वे सदा-सर्वदा सभी के अन्तःकरण में निवास करते हैं। उनका वसुदेवजी के अन्तःकरण में प्रवेश करने का तात्पर्य क्या है? क्या वे पहले वसुदेव जी के अन्तःकरण में नहीं थे?"

सूतजी बोले—'महाराज, थे क्यो नही ? भगवान् तो सदा सर्वदा सभी के अन्त करण मे रहते हैं, किन्तु यहाँ विशेष घटना का उल्लेख करना है, जैसे कहते है—एक दिन राजा अपने घर मे गये।' तो इस कथन का तात्पर्य यह है कि उस दिन किसी विशेष घटना के उद्दश्य से किसी विशेष सकल्प को लेकर गये, वैस सामान्यत तो नित्य ही जाते थे। इसी प्रकार सर्वान्तर्यामी रूप से तो भगवान् सदा सवदा सभी के हृदय मे सवत्र विद्यमान रहते हैं। आज वे विशेष सकल्प से वसुदेव जी के मन मे बैठे। सकल्प रूप स उन्होने उनके अन्त करण म प्रवेश किया। वसुदेव जी जानते थे कि अष्टम गभ से श्री भगवान् प्रकट होने वाले हैं। अत भगवत्-प्रेरणा से उन्होने गर्भाधान करने का सकल्प किया। भगवान् मेरे हो जायँगे। इतने सकल्पमात्र से हो प्राणी समस्त देवताओ स भी श्रेष्ठ हो जाता है फिर उसे कोई प्राणी न दबा सकता है, न भय ही दिखा सकता है। भगवान् का सकल्प आते ही जीव कृत्य कृत्य हो जाता है। वैसे तो समस्त इन्द्रियो का व्यापार ही प्रभु-प्र रणा से हो रहा है। कान उन्ही की प्रेरणा से सुनते हैं नेत्र उन्ही की प्रेरणा से देखते हैं वाणी उन्ही की प्र रणा से बोलती है। फिर भी जब क ई विशिष्ट सकल्प से बोलता है, तब लोग कहते है—'भगवान् ही इनके भीतर स बोल रहे हैं अर्थात् इनका सकल्प सत्य है। भगवान् मे और हममे इतना ही तो अन्तर है। हम अल्पवीय हैं वे अमाघवीर्य है। हम असख्यो सकल्प नित्य करते रहते हैं। उनम से कोई सकल्प सफल हो जाता है, नही तो अधिकाश असफल ही होते हैं। भगवान् का कोई सकल्प असफल नही होता। वे जो सकल्प करते हैं वह ही मूर्तिमान सफलता रूप रखकर उनके सम्मुख उपस्थित हो जाता है। इसीलिये उन्हे सत्य सकल्प तथा सत्य-

प्रतिज्ञ कहा गया है। देवताओं से उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अवतार धारण करूँगा। पृथ्वी को आश्वासन दिया था मैं तेरे भार को उतारूँगा। अपने आश्रित भक्तों तथा अपने परिवार के निज जनों को सुख देने का उनके मन में सङ्कल्प उठा। इसीलिये भगवान् ने वसुदेव जी के अन्तःकरण में प्रवेश किया।"

शौनक जी बोले—हाँ, तो सूतजी ! फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"फिर क्या हुआ महाराज ! फँस गये भगवान् चक्कर में, बँध गये प्रेम के बन्धन में, जो गर्भवास से छुड़ाने वाले थे, वे देवकी के गर्भ में स्वतः आ गये। जो जगत के बन्धनों को छुड़ाने वाले थे, वे भक्तों के बन्धन में आ गये। जो समस्त सम्बन्धों को छुड़ाने वाले हैं वे यादव और गोपों के सम्बन्धी हुए। यही कथा मैं आगे कहूँगा। आप उस हिरण्यगर्भ के गर्भ में आने की कथा को श्रवण कीजिये।"

छप्पय

जाया श्री वसुदेव देवकी जन्यो न लल्ला।
गिरयो सातमों गर्भ मच्यो मथुरा महँ हल्ला॥
अति ई चिन्तित कंस भयो अब अठमों आवै।
जीवित यदि रह जाय मोइ यम सदन पठावै॥
इत रक्षा साधन सुदृढ़, करे विविध मथुरेश ने।
उत मन महँ वसुदेव के, करयो प्रवेश परेश ने॥

हिरण्यगर्भ का देवकी के गर्भ में प्रवेश

[८२६]

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशम्,
समाहितं शूरसुतेन देवी
दधार सर्वात्मकमात्मभूतम्,
काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ❀
(श्रीभा १० स्क० २ अ० १८, श्लो०)

छप्पय

विश्वम्भर को तेज शूर-सुत धारयो मन महँ।
सुखद सौम्य दुर्धर्ष तेज तिनि प्रकट्यो तन महँ॥
पति तैं सोई तेज देवकी देवी धार्यो।
दिव्यकन्ति लखि कंससभय हिय माहिं विचार्यो॥
निश्चय जाके गर्भमहँ वास शत्रु ने कर लयो।
बिनु प्रकाश की निशामहँ, भवन प्रकाशित ह्वै गयो॥

ससार मे जिन बातो को हम नित्य देखते हैं, उनके विरुद्ध यदि कोई बात सुनाई देती है, तो हम आश्चर्य करने लगते हैं, उसे असम्भव बताते हैं। मस्तक के नीचे ही हम आँखें देखते आये हैं। हम किसी से कहे—"हमने अमुक के मस्तक पर

❀ श्रीशुकदेवजी वहते हैं—"राजन्! तदन्तर देवी देवकीजी ने उस जगत के मङ्गल करने वाले आत्म स्वरूप सर्वात्मा श्री अच्युत के दिव्य तेज को वसुदेव जी के द्वारा अपने मे आधान करने पर विशुद्ध मन से उसी प्रकार धारण किया, जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र को पूर्व दिशा धारण करती है।"

नेत्र देते तो वह इसे असम्भव बतावेगा। सूर्य को नित्य हम पूर्व मे उदय होते देखते हैं। यदि कोई कहे—"हमने पश्चिम में सूर्य को उदय होते देखा था, तो सुनने वाले इसे असम्भव बतायगे, क्योंकि उन्होने अपनी बुद्धि से एक सकुचित नियम बना रखा है। हम बालको को सदा माता के गर्भ म उत्पन्न होते देखते हैं। यदि कोई कहे—'हमने एक वृक्ष के फल से पुत्र उत्पन्न होते देखा' तो लोग सहसा इस पर विश्वास न करेंगे। यदि विश्वामित्र जी के विधान को ब्रह्माजी सफल होने देते और वृक्षों से पुत्र उत्पन्न होते देखते, तो फिर कोई इसे असम्भव न बताता। इससे यही सिद्ध हुआ कि सम्भव-असम्भव का भेद-भाव हम अल्पज्ञ जीवो के ही लिये है। जो सर्वज्ञ हैं वे असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं। विश्वामित्र जी ने नई सृष्टि रच ही दी। उनके बनाये सप्तर्षि के तारे अब भी आकाश में विद्यमान हैं। जब ऋषि ही ऐसा कर सकते हैं तब उन ऋषियों के पैदा करने वाले ब्रह्माजी के भी जनक के लिये कौन-सी बात असम्भव है? वैसे देखने मे तो यह बात अटपट लगती है, कि असख्यो ब्रह्माण्ड जिनके एक-एक रोम - कूप मे फल-फूट कर निवास कर रहे हैं, वे अखिल कोटि ब्रह्माण्ड-नायक, चराचर के स्वामी श्री मन्नारायण किसी स्त्री के गर्भ मे आवें यह बात मानवी बुद्धि मे बैठती भी नही। तर्क को ही प्रधान प्रमाण मानने वाले इस पर विश्वास नही करते। वे कहते हैं—'निराकार साकार हो ही नही सकता। प्रकाश-अन्धकार साथ रह ही नही सकते। जल और अग्नि साथ कैसे रह सकेंगे? अमूर्ति का मूर्ति बनाना उसका अपमान है। किन्तु वे यह नही जानते कि नियम प्राकृत हैं। प्रभु तो प्रकृति से परे है। उनके लिये सब सम्भव है। इसीलिये उन्हे कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं समर्थ बताया है। इसीलिये

भगवान् के चरित्रों को उनकी लीला समझकर श्रद्धा से श्रवण करना चाहिये। मानवीय तर्क की वहाँ तक पहुँच नहीं। मानवीय तर्क तो महापुरुषों के चरित्र के ही विषय मे निर्णय नही कर सकते। फिर भगवत्-चरित्रों के सम्बन्ध की तो बात ही क्या ?

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! योगमाया को आज्ञा देकर भगवान् ने भी प्रथम वसुदेव जी के अन्त.करण मे प्रवेश किया। भगवान् के अन्त करण मे प्रवेश करते ही उनके मन मे समस्त सद्गुण उदित हो गये। अब तक वे कंस से डरते थे। अब वे बोले—'कंस हमारा क्या करेगा ? उसकी सेना हमारा क्या कर सकती है ? ये क्या हमे बन्धन मे डाल सकेंगे ?" इस प्रकार वे निर्भय हो गये। वसुदेव जी को जो भी देखता, वही चकित रह जाता। उनका तेज अद्भुत हो गया, वे सूर्य के समान देदीप्यमान हो गये।

जिस प्रकार गुरु के तेज का-उनकी विद्या का-अधिकारी शिष्य होता है उसी प्रकार पति के तेज की अधिकारिणी पत्नी होती है। सद्गुरु सद्शिष्य के कान मे मन्त्र-दान करके जिस प्रकार उसे सुरक्षित रखता है उसी प्रकार सत्पति सत् स्त्री मे अपना तेज आधान करके उसकी वृद्धि करता है उसे अक्षय बना देता है। वसुदेव जी द्वारा वह जगन्मङ्गल सर्वात्मा श्री हरि का दिव्य तेज सर्व देवमयी जगन्माता देवकी ने धारण किया, अर्थात् श्री हरि उनके गर्भ मे आये।

इस पर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! हमने तो ऐसा सुना है कि सर्वात्मा प्रभु किसी भी माता के गर्भ मे नही आते। उनकी उत्पत्ति रजवीर्य से नही होती। वे तो वैसे ही प्रादुर्भूत हो जाते है।"

सूतजी बोले—'महाराज! भगवान् का गर्भ में आना न आना तो उपचार मात्र है। आना तो वहाँ बनता है जहाँ पहले न हो। भगवान् तो सर्वत्र हैं। रही रजवीर्य की बात। सो वे भी तो उन्ही के रचे हैं उनमे भी वे हैं। उनका गर्भ मे आना साधारण जीवो की भाँति गर्भगत दुखो को भोगने के लिये नही है। जैसे राजा कारावास मे आया तो उसका आना अपराधियो की भाँति यातना भोगने के निमित्त नही है, बल्कि मनोविनोद के लिये, अपनी प्रजा का अवलोकन करने के लिये। वह बन्दियो पर कृपा प्रदर्शित करने के लिये आता है। उसके आने से बहुत से बन्दी अपराधी रहने पर भी मुक्त हो जाते हैं। भगवान् तो योगमाया का आश्रय लेकर क्रीडा करते हैं। अभिनय रचते हैं। उनका सकल्प ही गर्भ मे आना है। योगमाया के प्रस्ताव से ब्रह्मादि देव तथा अन्य सब प्राणी यही समझते है कि देवकी का गर्भ बढ रहा है, इसम भगवान् भी बढ रहे है। किन्तु भगवान् का क्या घटना-बढना! वे तो प्रथम से ही परिपूर्ण हैं। दसवें महीने शरीर उनका प्रादुर्भाव हो जाता है। जब तक इच्छा होती है वे क्रीडा करते हैं फिर अपने जगन्मोहन दिव्य वपु को तिरोहित कर लेते हैं। भगवान् की लीलायें प्राय लोकवत होती हैं, कुछ लोकोत्तर दिव्य तेज युक्त भी होती हैं। इसलिये गर्भ मे आना उनकी लोकलीला है। भगवान् देवकी जी के गर्भ मे आये। इससे उनका प्रकाश बढ गया। वे शोभित तो हुई किन्तु भली प्रकार शोभित नही हुई जसे दीपक का प्रकाश घटादि से दवाने से आच्छन्न हो जाता है जैसे कृपण का धन विधवा का यौवन ज्ञान खल की विद्या रहने पर भी प्रकाशित नही होती वैसे ही देवकी जी के मुख पर तेज था, किन्तु कस के भय से वह ढँका-प्रतीत होता था।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ज्ञान-खल किसे कहते हैं ? और उसकी विद्या कैसे प्रकाशित नहीं होती ? इसे हमे स्पष्ट करके समझाइये ।"

सूतजी बोले—"महाराज ! ज्ञान-खल कहते हैं ज्ञानकृपण को। जैसे किसी के पास अटूट सम्पत्ति हैं, किन्तु न वह उसका स्वयं ही उपभोग करता है, न किसी को दान ही देता है, तो वह धनकृपण कहलाता हैं, इसी प्रकार जो विद्या होने पर उसे दूसरो को नही देता, वह ज्ञान-खल कहलाता है। इस विषय मे एक दृष्टान्त है, उसे श्रवण कीजिये । उसके श्रवण से आपको ज्ञान-खल का भाव भली-भाँति विदित हो जायगा ।

एक कोण्डिन्य नामक ऋषि थे । वे एक ब्राह्मण के घर उसकी कन्या की याचना करने गये । ब्राह्मण की कन्या बडी सुशीला तथा सर्वगुण-सम्पन्ना थी। शीला उसका नाम था । विवाह करके वे एक बैलगाडी मे बैठकर अपने घर आ रहे थे । उनके मार्ग में यमुनाजी पडी । मध्यान्ह का समय हो गया था । वहाँ बैल खोल दिये गये । पति-पत्नी ने गाँठ बाँधकर यमुनाजी मे स्नान किया ।

शीला ने देखा, आज यमुना जी के घाट पर बड़ी भीड़ है । बहुत-सी स्त्रियाँ मालपूआ बनाकर लाई है—कोई पूजन कर रही हैं, कोई ब्राह्मणों को मालपूआ बाँट रही है । कोइ स्वय यमुना-तट पर बैठकर मालपूआ उडा रही है, कोई अपने बाल-बच्चो को बाँट रही हैं । स्त्रियो को जब स्त्रियाँ मिल जाती है, तब वे हृदय खोलकर परस्पर बाते करने लग जाती है । वे क्षण भर मे एक दूसरे को भायेली-सहेली बना लेती हैं । शीला ने देखा—मेरे पति जब तक सन्ध्या बन्दन कर रहे है, तब तक मैं इन स्त्रियो से पूछ आऊँ कि आज कौन सा पर्व है, किसकी यात्रा है, क्या इसका माहात्म्य है ।"

यह सोचकर वह एक स्त्री के पास गई। वह पूजा करके ब्राह्मण को मालपूआ खिला रही थी। उसने अपन घूँघट को तनिक सरकाकर पूछा—"बहन जी ! आज कौन सा पर्व है? किसकी यात्रा है ?"

वह स्त्री बडी भली थी। उसने कहा—'हाय ! बहन, तुम्हे इतना भी नही मालूम होता है। तुम्हारा अभी विवाह होकर आया है। विवाह के मङ्गल चिन्ह तुम्हारे अंगो पर है। आज अनन्त चतुर्दशी का व्रत है।"

शीला ने सकोच से कहा—"बहन, मुझे तो पता नहीं है कि इस व्रत मे क्या होता है, किसका पूजन करना होता है।"

वह स्त्री बोली—"होता क्या है बाँस के पत्ता पर अनन्त को रखकर उसकी पूजन करते हैं। मालपूआ या जो भी भोज्य पदार्थ हो, उसमे से आधा ब्राह्मण को दे देते हैं, आधा स्वय खाते हैं। कोई कठिन थोडे ही है बहन ! तुम भी कर लो। सामने यह बाँस का पेड है, इस पर से पत्ते तोड लो। एक पैसे मे दो अनन्त मिलते हैं। पूजन करके एक तुम अपने बायें हाथ मे बाँध लो, पति के दायें हाथ मे बाँध दो। चौदह गाँठ वाला यह अनन्तसूत्र अनन्त धन-धान्य-ऐश्वर्य देने वाला होता है। तुम्हारा नया विवाह हुआ है, तुम अवश्य इसे करो। जाते ही पुत्र होगा। धन धान्य से घर भर जायगा। अन्न धान से कोठो कुठले भर जायँगे। दूध पूतो की कमी न होगी।"

शीला ने कहा—"जीजी ! आज ही तो मेरा विवाह हुआ है। उनसे तो मैंने कोई बात भी नही की। उनके स्वभाव को भी मैं अभी नही जानती। इसीलिये उनसे अनन्त सूत्र बाँधने को तो मैं कह नहीं सकती। यदि अकेली मैं बाँध सकती होऊँ, तो बाँध लूँ।"

उस स्त्री ने कहा—'क्या हानि है ? तुम ही बांध लो। अनंत भगवान् का व्रत तो सभी कर सकते है।"

यह सुनकर शीला ने एक अनन्त ले लिया। गाडी मे से पुटली खोलकर पूडो निकाल लाई। ब्राह्मण से पूजन करवाया। उसने आधी पूडियाँ ब्राह्मण को दी। तब तक उसका पति भी सन्ध्या जप कर चुका था। उसने ब्राह्मण को पूडो देते और उन्हे प्रणाम करते अपनी पत्नी को देखा। तो वह मन ही मन प्रसन्न हुआ कि उसकी पत्नी भगतिनि है। स्त्री ने आकर पति को भोजन परसा। जब वह खा चुका तो स्वय भी एकान्त मे जा कर भोजन करन लगी। भोजन करके वह अपनी सहेली के पास गई और बोली—"जीजी! अब मैं जाती हूँ। तुमने मुझे यह अच्छा व्रत बता दिया। अब मैं प्रत्येक भाद्रपद की शुक्ला चतुर्दशी को इस व्रत को किया करूँगी।"

यह कहकर उसने इसे छाती से चिपटा लिया। दोनो सगी बहनो की भांति मिल जुलकर विदा हुई। कोण्डिन्य मुनि अपने घर आकर सुख पूर्वक रहने लगे। शीला नियम पूर्वक अनन्त चतुर्दशो का व्रत बडो श्रद्धा भक्ति के साथ करने लगी। व्रत के प्रभाव से उसके बहुत से पुत्र हुए। धन-रत्नो से उसका घर भर गया। दास-दासियाँ बहुत-सी हो गयी। सहस्रो गाये हो गई। नित्य ही अनेक अतिथि आते। कभी पूडियाँ छन रही हैं, कभी हलुआ घुट रहा है कभी खार बन रही है। जैसी कि सुकृती धर्मात्माओ के घर मे चहल पहल होती है वैसी ही सदा चहल-पहल रहने लगी।

धन आने पर प्राय सभी को मद हो जाता है। फिर वह सब मे भगवान् को नही देखता। उसकी मन्द बुद्धि हो जाती है,—मैं ईश्वर हूँ, सिद्ध हूँ, बलवान हूँ, सुखो हूँ, दूसरा मेरे समान

कौन है ? मैं यज्ञ करने वाला हूँ, दान देने वाला हूँ, ऐसा अभिमान हो जाता है। दैव की प्रेरणा से कौंडिन्य मुनि को भी अभिमान हो गया।

भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन उसने अपने स्त्री से कुछ काम करने का कहा। स्त्री के हाथ में अनन्त-सूत्र बंधा था। उसने पूछा-"यह पीला-पीला डोरा तुमने क्या बांध रखा है ?"

स्त्री ने कहा—"हाय ! प्राणनाथ ! इसे डोरा मत कहिये। ये तो अनन्त भगवान् हैं। आप के जो इतना धन-धान्य वैभव है—सब इनकी ही कृपा से है।"

कौंडिन्य मुनि बोले— 'कौन अनन्त होता है ? यह सब धन-वैभव तो मेरे पुरुषार्थ से हुआ है। दिन-रात परिश्रम करता हूँ। यह डोरा क्या धन ऐश्वर्य देगा ? ला, मैं इसे जलाता हूँ, देखें यह मेरा क्या करलेता है ?" यह कहकर उसने आवेश मे आकर अपनी स्त्री का दायाँ हाथ पकड़ लिया और अनन्त-सूत्र को उतारकर अग्नि मे फेंक दिया। शीला हाय-हाय करती हुई दौड़ी। उसने अपने शरीर की कुछ भी चिन्ता न की, जलती अग्नि मे तुरन्त हाथ डालकर अनन्त-सूत्र को उठा लिया और दुग्ध मे डाल दिया।

कौंडिन्य मुनि ने यह बड़ा भारी अपराध किया था। अभिमान मे भरकर अनन्त भगवान् का अपमान किया था। पहले वे निर्धन थे। भगवान् की कृपा से, न जाने कहाँ से, उनको इतना धन आ गया। वे समझते थे, मेरे पुरुषार्थ से आया है। किन्तु, पुरुषार्थ तो धन के लिये सभी करते हैं, सब के तो धन नही हो जाता। धन तो प्रारब्ध से, पुण्य कर्मों से आता है। जैसे नारियल के फल मे जल कहाँ से कब आ जाता है, वैसे ही धन आता हुआ नही दिखाई देता। जब वह जाने वाला होता है,

तब ऐसे चला जाता है जैसे गजभुक्त कपित्थ। हाथी कैथ के फल को बिना फोडे-चवाये ममूचा ही निगल जाता है, मल-द्वार से कुछ दिनो मे वह समूचा ही निकल तो आता है, किन्तु उसके भीतर गूदा नही रहता। कोई बडा छेद भी नही होता। गज के पेट मे कपित्थ का गूदा कहाँ चला जाता है, इसे कोई नही बता सकता। इसी प्रकार पुण्य क्षीण होने पर धन कहाँ चला जाता है—इसे भी कोई यथार्थत नही कह सकता। कौडिन्य मुनि की भी यही दशा हुई। उनकी गौओ को चोर चुरा ले गये, घर में आग लग गई। धन धान्य जलकर भस्म हो गये। जिस पर ऋण था, उसने दिया नही।

शीला ने रोते-रोते कहा—"प्रभो! यह सब अनन्त भगवान् के अपमान का फल है।"

यह सुनकर कौडिन्य मुनि उदास हुए। उन्होने प्रतिज्ञा कर ली— जब तक मैं अनन्त भगवान् के दर्शन न कर लूँगा, तब तक घर लौटकर न आऊंगा।" ऐसी प्रतिज्ञा करके वन मे जाकर उसने घोर तप किया फिर अनन्त भगवान् को ढूँढ़ने चला। सम्मुख उसने अत्यत हरे भरे फलो से लदा एक आम का वृक्ष देखा। उसने उससे पूछा—'भाई वृक्ष, तुम बडे शोभित हो। तुमने अनन्त भगवान् को देखा है?'

उसने कहा— महाराज! मैंने तो अनन्त भगवान् को देखा नहीं।"

फिर उसे आगे एक गो मिली, गधा मिला, सांड मिला, दो परस्पर एक दूसरी मे जल बहाती हुई पुष्करिणियाँ मिली। सबसे उसने अनन्त का पता पूछा, किसी न नही बताया तब उसने जीवन का अत करना चाहा, तो वृद्ध ब्राह्मण के रूप मे भगवान् मिले। वे उसे एक एक बिल मे ले गये। वहाँ उन्होने

दर्शन दिये । कौडिन्य मुनि ने भगवान् से पूछा—"वह हरा भरा वृक्ष कौन था ?"

भगवान् ने कहा—"वह वृक्ष पूर्वजन्म मे एक ज्ञान-खल ब्राह्मण था । वैसे तो वह वेदवेदाङ्ग का ज्ञाता था, किन्तु सब मे अनंत को नही देखता था । विद्या का कृपण था । उसने किसी को न तो विद्या पढाई और न विद्या का जो मुख्य फल विमुक्ति है, उसे ही प्राप्त किया । इसीलिये उसे वृक्ष-योनि प्राप्त हुई । उसके फलो को पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भी नही खाते । ऐसे ज्ञान खलके समीप विद्या प्रकाशित नही होती । पीछे बताया, यह गौ पृथ्वी थी । वह लोगो को अन्न नही देती थी । वृषभ धर्म था । धर्म का सत्य निर्णय नही करता था । गधा क्रोध था । सांड़ अहङ्कार था, आदि-आदि ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वह ज्ञान-खल अनंत को न देखने वाला ब्राह्मण ही था, जिसे वृक्ष होना पड़ा । विद्या रहते हुए भी उसकी शोभा नही थी । इसी प्रकार कस के कारावास में अवरुद्ध, डरी हुई, भगवती देवकी भगवान् को धारण करके भी उस ज्ञान-खल विप्र की भाँति शोभित नही हुई। फिर भी उनकी प्रभा चारों ओर प्रकाशित होने लगी । उनकी कान्ति से वह अन्धकार-पूर्ण गृह भी प्रकाशित होने लगा ।

एक दिन सेवको ने जाकर कस से कहा—"प्रभो ! देवकीजी गर्भिणी हो गई हैं । यह उनका आठवां ही गर्भ है ।"

यह सुनकर कस देवकी को देखने गया । उनके तेज प्रभाव, शरीर के वर्ण, अङ्गों के सौष्ठव, मंद-मुसकान को देखकर वह तो आश्चर्य-चकित रह गया । उनकी दिव्य कान्ति से वह कारावास का भयकर गृह जगमग-जगमग कर रहा था । चारो ओर कान्ति छिटक रही थी । वहाँ की शोभा अपूर्व थी । यह देखकर कंस के

छक्के छूट गये। उसने सोचा—"अवश्य ही अबकी बार इसके गर्भ मे मेरे प्राणों को हरने वाला हरि आ गया है। मैंने इसे बालकपन से देखा है। इसे कारावास मे भी सात वर्षों से देख रहा हूँ, ऐसी कान्ति-प्रभा इसकी पहले कभी नहं थी। इसकी तो आकृति-प्रकृति, चलन, उठन बैठन चितवन, हँसन—सब कुछ बदल गया! अब मुझे क्या करना चाहिये ?' मुनियो! इस प्रकार चिन्ता करता हुआ कस अपने महलो मे लौट आया और इसी विषय की चिन्ता करने लगा।"

छप्पय

बालकपन तें लखी देवकी घरके माहीं।
किन्तु कबहुँ अस प्रभा अनोखी देखी नाहीं॥
होहि न जब तक प्रसव तबहिं तक याकूँ मारूँ।
प्रथमहिं दुखजड़ काटि विपति भावी कूँ टारूँ॥
लै कें कर करवाल खल, पुनि मन महँ सोचन लग्यो।
ब्याह-समय वसुदेव ने, छल करि के मोकूँ ठग्यो॥

कंस की चिन्ता

[८२७]

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे,
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम्।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयम्,
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥*॥
(श्री भा १० स्क० २ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

अब यदि मारूँ याहि बात मेरी बिगरेगी।
वध भगिनी को सुनत प्रजा सबरी भड़केगी॥
अबला बन्दिनि बहिन गर्भिणी भय की मारी।
जाके वध तें होहि नष्ट श्री-कीति हमारी॥
तेज देवकी को लख्यो, कुल-कलङ्क कातर भयो।
साँप-छछून्दरि के सरिस, असमंजस महँ परि गयो॥

यश और प्रतिष्ठा की इच्छा सभी को होती है—"चाहे कोई पुण्यात्मा हो, पापी हो, धनी हो, निर्धन हो, पठित हो मूर्ख हो, शक्तिभर मनुष्य जान-बूझकर ऐसा कार्य नहीं करना चाहता,

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! कंस सोचने लगा—इस विषय में अब मुझे अतिशीघ्र क्या उपाय करना चाहिए? स्वार्थवश होकर भी सम्मानित पुरुष अपने पराक्रम का हनन नहीं करते! एक तो यह स्त्री है, फिर बहन है, तिस पर भी गर्भिणी है। इसके वध का पाप तो मेरी श्री, यश तथा आयु का नाशक होगा।"

जिससे संसार में उसकी अपकीर्ति हो, लोग उसे बुरा कहें। यदि स्वार्थवश विवश होकर ऐसे क्रूर कर्म करने भी पड़ते हैं, तो नाना युक्ति-प्रमाण देकर उसे उचित सिद्ध करने की प्रायः सभी चेष्ठा करते हैं। अपयश से पापी भी डरते हैं। अतः वे पाप को छिपकर करते हैं। जब दो विरोधी स्वार्थ सम्मुख उपस्थित होते हैं, तब मनुष्य ऐसी युक्ति अपनी बुद्धि से निकालना चाहता है, जिससे स्वार्थ भी सध जाय, और अपकीर्ति भी न हो। जब ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता, तब फिर कीर्ति की उपेक्षा करके मनुष्य स्वार्थ-सिद्धि में निरत हो जाता है। अर्थी फिर दोषों की ओर नहीं देखता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कंस को जब निश्चय हो गया, कि उसको मारने वाला देवकी के गर्भ में आ गया है, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसे बड़ा भय लगा। पापियों का हृदय क्षुद्र होता है। वे तनिक सी चिन्ता से चिन्तित हो जाते हैं। कंस के मन में यह बात आई, इस देवकी को मार ही क्यों न डालूँ। झंझट कटे, नित्य की चिन्ता से मुक्त ही हो जाऊँ।"

फिर उसने सोचा—"मारना तो ठीक नहीं। मारने का तो अवसर वही उत्तम था। विवाह के ही समय इसे मार देता, तो सब झंझट कट जाते। मुझे इतने छोटे-छोटे सद्यःजात शिशु क्यों मारने पड़ते? उस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। वसुदेवजी ने मुझे उलटी पट्टी पढ़ाकर भ्रम में डाल दिया। मैं उनकी बातों में आ गया। उस समय तो अवसर था, सब ही ने आकाशवाणी सुनी थी। अब तो अवसर निकल गया। इन दोनों पति-पत्नी को मैंने कारावास में डाल दिया। इनके सद्यःजात बच्चों को निर्दयतापूर्वक मार दिया। फिर भी यदि मैं इसे मारता हूँ, तब लोग मेरी बहुत निन्दा करेंगे। यादव सब मेरे विरुद्ध ही हो

गये हैं। मैंने यादवों की प्राचीन समिति को भङ्ग कर दिया है। प्रजा का भी मेरे प्रति भाव अच्छा नहीं है। ऐसी दशा में यदि मैं देवकी का वध करता हूँ, तो लोगों को मेरे विरुद्ध प्रजा को भड़काने का एक अवसर मिल जायगा। अतः देवकी को मारना उचित नहीं।

फिर एक बात यह भी है, देवकी को मारना सर्वथा कायरता है। स्त्री के ऊपर हाथ उठाना वीरोचित कार्य नहीं है। चाहे अपने स्वार्थ की हानि ही क्यों न होती हो, वीर पुरुष अपने पराक्रम को दूषित नहीं करते। एक तो स्त्री वैसे ही अवध्या है, तिस पर भी यह ऐसी-वैसी साधारण स्त्री भी नहीं; मेरी छोटी बहन है। इसे मैंने गोद में लेकर प्रेम पूर्वक खिलाया है, मुख चूमा है। यह मेरी पुत्री के समान है। तिस पर भी यह गर्भिणी है। गर्भिणी स्त्री का वध ब्रह्माण्ड-वध के समान है। यदि आज मैं अपनीअबला गर्भिणी छोटी बहन को मार देता हूँ, तो सभव है, मेरा शत्रु तो मर जाय, किन्तु सब लोग मुझे थू थू करें, मेरी निन्दा करें। मेरी वीरता का, बल-पराक्रम का, जो ससार में इतना नाम है, वह नष्ट हो जायगा। मेरी श्री, कान्ति, शोभा, प्रतिभा—सभी नष्ट हो जायँगी। घोर पाप करने से आयु भी क्षीण हो जाती है। मान लो, इस प्रकार मैं अपनी वन्दिनी बनी बहन को मारकर जीता भी रहूँ, तो ऐसे जीवन से लाभ ही क्या? जो पुरुष अत्यत हिंसा वृत्ति से रहता है, सर्वत्र जिसकी क्रूरता प्रसिद्ध है, सभी जिसके नाम से घृणा करते हैं—वह तो जीवित ही मृतक-सदृश है। मुखपर चाहे, भय अथवा शील-सकोच-वश कोई कुछ न कहे, पीठ पीछे तो लोग उसकी निन्दा करते ही हैं। मरने पर तो उसका सब अपयश ही शेष रह जाता है। इस लोक में अपमान और परलोक में नरकादि

दारुण लोको की प्राप्ति होती है। इसलिये इसको मारना मेरे लिये हितकर नहीं है।

यह कही भाग तो जायगी ही नही ? इसके पेट से बच्चा ही तो होगा ? पैदा होते ही तो वह युद्ध करने योग्य न हो जायगा ? मैं पैदा होते ही उसे मार डालूँगा ! वसुदेवजी ने आज तक कभी मेरे विरुद्ध आचरण नही किया है। इसलिये मुझे देवकी को मारने का विचार तो सर्वथा त्याग ही देना चाहिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कस क्रूरकमा था। उसके लिये कोई काय असम्भव नही था। वह अपने प्राणो की रक्षा के लिये सब कुछ कर सकता था। देवकी उसके हाथ मे थी। उसके कारावास मे ही थी। वह चाहता तो क्षणभर मे उन्हे मार सकता था। किन्तु, मारने वाले से जिलाने वाला बलवान होता है। उसकी बुद्धि बदल गई, दुष्ट के हृदय मे भी दया आ गई। अत उसने देवकीजी को मार डालने का विचार मन से निकाल दिया।

किन्तु, देवकी के गर्भगत बालक से उसने वैर बाँध लिया। उसे दृढ विश्वास हो गया कि उसका शत्रु इसी के उदर मैं है। कब इसका जन्म हो, कब मैं इसे मारूँ ! वैर के कारण उसके चित्त की समस्त वृत्तियाँ उदरस्थ श्रीहरि के ही सम्बन्ध मे लग गई। उसे हृदय-धडकन का रोग हो गया। जब भी वह उठता, उसे भगवान् की चिन्ता रहती। कही वह देवकी के उदर से निकलकर मुझे मारने तो नही आ रहा है ! बैठते समय भी वह शकित हो जाता। चकित-चकित दृष्टि से चारो ओर वह निहारने लगता। जब भोजन करने बैठता, तब बार-बार पीछे देखता, चौक पडता, कभी चिल्ला उठता—मेरा शत्रु आ गया। जल पी रहा है अथवा

ठंडाई दुग्ध या और कोई तरल पदार्थ पी रहा है। भगवान् की स्मृति आई कि चौंक पड़ा। पानपात्र हाथ से गिर गया। सोते समय स्वप्न में भी भगवान् को ही देखता। चौंककर शय्या से उठ बैठता दौड़ने लगता। सारांश यह कि उसे क्षणभर भी यह बात न भूलती। सामने सहस्रों पुरुष बैठे हैं चिन्ता में निमग्न होने के कारण उसे एक भी दिखाई नहीं देता। उसे सर्वत्र हाथ में अस्त्र लिये वध के लिये उद्यत, श्रीहरि दिखाई देते। जो गति योगियों के लिये भी दुर्लभ है, वह उसे प्राप्त हो गई।

एक पेसस्कृत (भौंरा) नामका कीड़ा होता है। वह भित्तियों पर मिट्टी का अपना घर बनाता है। उसमें किसी एक बच्चे को पकड़कर बन्द कर देता है और उसके कानों के आस-पास गूँजता रहता है। भय के कारण वह कीड़ा भी तदाकार हो जाता है, भौंरा ही बन जाता है। इसी प्रकार जिससे अपना अत्यन्त स्नेह होता है, उसमें भी वृत्ति तदाकार हो जाती है। वैसे ही वैर से भी मन उसी में लग जाता है। यदि वह वैर भगवान् में हो, तो जीव वैर के द्वारा ही भगवान् तक पहुँच जाता है। खाँड का खिलौना है, उसे जान में खाओ, अनजान में खाओ, प्रेम से खाओ, द्वेष से खाओ, अँधेरे में खाओ, उजाले में खाओ माँगकर खाओ, चुराके खाओ—मुख मीठा होगा ही। इसी प्रकार भगवान् का काम, क्रोध, द्वेष, स्नेह-सम्बन्ध से तथा भक्ति से—"कैसे भी चिन्तन करो, भगवान की प्राप्ति होगी ही।'

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! भगवान् जब देवकी देवी के गर्भ में आ गये, तब सभी ग्रह अनुकूल हो गये, समस्त ऋतुएँ सुखदायिनी बन गईं। ब्रह्मादि देव गुप्त रूप से आ-आकर गर्भगत श्रीहरि की स्तुति करने लगे।'

छप्पय

निश्चय कीयो जिही बहिन वध सब विधि अनुचित।
दृढ़प्रतिज्ञ वसुदेव होहिं नहिं तिन तैं अनहित॥
वध को त्यागि विचार निरन्तर हरिहिं विचारे।
असन, वसन अरु शयन माँहिं जगदीश निहारे॥
वैर भाव तैं विष्णु भजि, तदाकार मन बनि गयो।
शत्रु समुझि सर्वेश कूँ, अति सर्वोत्तम पद लह्यो॥

गर्भगत श्रीहरि की देवों द्वारा स्तुति

[८२८]

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रम्,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥*
(श्री भा० १० स्क० २ अ० २६ श्लोक)

छप्पय

समुझि देवकी गर्भ माहिँ हरि हर चतुरानन ।
सब सुर मुनि-संग आइ करें हरि को अभिवादन ॥
प्रभु की इस्तुति करें मधुर स्वरमहँ मिलि सुरगन ।
जय सर्वेश्वर, सत्य, नित्य, शिव, अग-जग-भावन ॥
विश्व वृक्ष के बीज तुम, सब भूपनि के भूप हो ।
सगुण सर्वगत सत्त्वमय, सुखकर सत्य-स्वरूप हो ॥

जब कोई अधिकारी अपनी सीमा में अपने स्वामी का आगमन सुनता है, तब सभी अवश्य कार्य छोडकर मुख्य-मुख्य

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! देवगण कंस के कारावास मे जाकर गर्भगत श्रीविष्णु की स्तुति करते हुए कहने लगे—'हे प्रभो ! आप सत्यव्रत हैं। आप सत्य द्वारा ही प्राप्त होते हैं, तीनों कालों में आप सत्य हैं। आप सत्य की योनि हैं, सत्य मे ही स्थित हैं तथा सत्यके भी सत्य हैं। ऋत और सत्य—ये दोनों आपके नेत्र हैं। आप सत्यात्मक हैं। हम सब ऐसे आपकी शरण में आये हैं।"

सेवक और साथियो के साथ उनका अभिनन्दन करने जाता है। अधिकारी की चेष्टा ऐसी रहती है, कि स्वामी को जो बात प्रिय हो, उसे करना, स्तुति विनय द्वारा उसकी प्रसन्नता प्राप्त करनी। सच्चे हृदय से की हुई स्तुति से सभी सन्तुष्ट हो जाते है। 'स्तोत्र कस्य न रोचते', स्तुति किसे प्यारी नही लगती।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब ब्रह्माण्ड के हमारे चतुर्मुख ब्रह्माजी को यह बात ज्ञात हुई कि अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीहरि हमारे लोक में अवतरित होने के निमित्त देवकी देवी के गर्भ मे आ गये हैं, तब वे नारदादि समस्त मुनियो, इन्द्रादि सत्त देवो तथा अन्यान्य समस्त लोकपालो और शिवजी को साथ लेकर देवकी के निवासस्थान पर आये तथा सुमधुर वचनो से सर्वकामप्रद श्रीहरि की स्तुति करने लगे।"

देवता हाथ जोडकर कहने लगे— 'प्रभो ! आप सत्यसंकल्प हैं, जो बात जिससे कह देते हैं, उसका पालन तत्परता के साथ करते हैं। आप इस दृश्य जगत् के आदि कारण हैं आप इस संसारवृक्ष के बीज हैं। बीज क्या स्वय ही वृक्ष बन गये हैं ! वृक्ष बन जानेपर फिर जिस बीज से वह वृक्ष बना है, उसी में घुलमिल जाता है। आप, आपके युगलचरण इस ससार-सागर से पार कराने के लिये नौका हैं। प्रभो ! आप भक्ति के द्वारा सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं। हे देव ! यद्यपि आप अवाङ्मनस गोचर है, कोई आपको मन बुद्धि के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता ; फिर भी भक्तजन उपासना आदि के द्वारा आपका साक्षात्कार करते हैं। आपके नाम मे ही ऐसी अपूर्व शक्ति है, जिसके कीर्तन से सभी अनिष्ट दूर हो जाते हैं, आपके गुण-श्रवण, रूप-चिन्तन तथा श्रीअङ्गो के ध्यान से यह ससार सदा के लिये विलीन हो जाता है। यद्यपि आप अजन्मा हैं, फिर भी

भक्तो के ऊपर अनुग्रह करके जन्म धारण कर है। यह आपकी लीला है, क्रीडा है, विनोद है, मनोरञ्जन है। और क्या कहें? हे नाथ! जैसे आपने पहले अनेक अवतार धारण किये थे, वसे ही अब भी श्रीकृष्णावतार धारण करके भू का भार उतारिये।" इस प्रकार सभी देवता आत होकर गद्-गद् वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगे।

देवकी दवी सा रही थी, देवताओ की स्तुति सुनकर वे उठ कर वैठ गई। उन्होने देखा, उनका घर जगमग-जगमग हो रहा है। चतुर्मुख ब्रह्माजी खडे हैं, पचमुख शिवजी भी उनके पास हैं, सहस्रलोचन इन्द्र भी है, वीणा लिये नारदजी भी खडे हैं, यम, वरुण, कुबेर, वायु सूर्य, चन्द्र—सभी देवता खडे हैं। उनकी छाया नही पड़ती वे पृथ्वी का स्पर्श नही करते। उनमे से किसी के भी पलक नही गिरते। इन सब लक्षणो से देवकी देवी समझ गई, ये सब देवगण हैं। इन सब के वस्त्राभूषण दिव्य हैं। इनकी मालायें अम्लान दिव्य-पुष्पो की हैं, कभी मुरझाती नही। उनकी सुगन्धि से दशो दिशायें सुगन्धित हो रही हैं। देवकी देवी ने उठकर सब देवो को प्रणाम किया और हाथ जोड़-कर दीनता के साथ कहा—'देवताओ! आप विश्व-वान्दित है। सभी आपकी पूजा-अर्चा करते है। यज्ञो मे आपके उद्देश्य से आहुतियाँ दी जाती हैं। आप सबके मनोरथो को पूर्ण करने वाले हैं, सभी को वर देने वाले है। आप दु खियो के दु.खो को दूर करने वाले हैं। मैं भी एक दुःखिनी दीना अबला हूँ, आपकी शरण मे आई हूँ। आप मेरे भी दुःखो को दूर करें। मुझ हतभागिनी पर भी कृपा करें!'

ब्रह्माजी ने यह सुनकर देवकी देवी को प्रणाम किया। सब देवताओं ने भी उनका अनुसरण किया। तब चतुरानन बोले—

'मात देवकि ! तुम बडी भाग्यशालिनी हो, तुम्हारा बडा सौभाग्य है जो तुम्हारे गर्भ मे हम सब का अभ्युदय करने के लिये साक्षात् परमपुरुष भगवान् श्रीहरि अपनी सम्पूर्ण कलाओ सहित आये हुए हैं। आप अपने को हतभागिनी क्यो कहती हैं ? आप के सदृश भाग्य ससार मे और किसका होगा ?"

देवकी देवी न हाथ जोडकर कहा— हे पितामह ! आपके तथा इन सब देवो के मुझे दर्शन मिल गये यही मेरा भाग्य है। नही तो ससार मे मेरे समान हतभागिनी स्त्री कौन होगी ? जिस दिन विवाह के अनन्तर घर से चली तभी से उत्पात आरम्भ हुए। अपना भाई अपना शत्रु बन गया। मेरे छोटे छोटे सद्य जात छ पुत्र पैदा होते ही मार गये। मैं वज्र की छाती बनाये जीवित बनी रही और बच्चो को जनती रही। मेरे कारण पतिदेव भी कारावास के कठिन से कठिन कष्टो का सह रहे हैं। मैं अपन परिवार वालो से पृथक हो गई। मेरे कारण मेरी अन्य बहन विवरो मे छिपा दिन काट रही हैं। फिर भी मैं रात्रि-दिन अपने भाई कस के भय से थरथर काँपती रहती हूँ। वह मूर्तिमान काल के समान सदा मेरी दृष्टि मे घूमता रहता है। सद्य-जात शिशुओ की हत्या के रक्त से रगे उसके भयकर हाथ मुझे प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। वह मेरे इस गर्भ के बालक को भी मार डालेगा।'

ब्रह्माजी ने हँसकर कहा—"माताजी ! आप कैसी बातें कर रही हैं ! इस गर्भ के बालक को वह बेचारा क्या मार डालेगा ? इसके द्वारा तो वह स्वय ही मर जायगा। अब आप उस मरणासन्न कस से तनिक भी भय न करें। कस तो अब मुमूर्षु है वह तो अपनी अन्तिम घडियो को गिन रहा है। उनके दिन तो प्राय पूरे हो चुके हैं, उसके पाप का घडा तो भर चुका है।

देवकी देवी ने निराशाभरी आह छोड़ते हुए कहा—"कहाँ मर चुका है, महाराज! वह तो आनन्द मे फल फूल रहा है। उसने तो अपने विरोधी समस्त यदुवंशियो को देशनिकाला दे दिया है। वे सब विदेशो मे जैसे-तसे अपने दिन काट रहे हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा—"कोई बात नहीं, और थोड़े दिनों का कष्ट है। दस-ग्यारह वर्ष पश्चात् भगवान् सब का दुःख दूर करेंगे वे तुम्हारे पुत्ररूप मे प्रकट होकर समस्त यदुकुल की रक्षा करेंगे। केवल यदुकुल ही नहीं, समस्त भूमण्डल की रक्षा करेंगे। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार प्रकृति से परे परम-पुरुष परमात्मा प्रभु की स्तुति करके ब्रह्मा, शिव आदि देवगण अपने-अपने लोकों को चले गये। उन अचिन्त्य ऐश्वर्य युक्त अखिलेश की कोई स्तुति तो कर ही क्या सकते हैं? उनके तो रूप, गुण, चरित्र आदि मनवाणी के विषय ही नहीं। फिर भी उन सब ने यथामति-यथाशक्ति उनकी स्तुति की। भगवान् तो गर्भ मे थे अतः उन्होंने चुपचाप देवताओं की स्तुति सुन ली।"

अब देवकी देवी के गर्भ के नौ महीने पूरे हो गये। दशवाँ महीना लग गया। भगवान् के प्राकट्य का समय आया। समय ने सोचा मैं अपनी सार्थकता जीवन की सफलता कर लूँ। अत भगवान् के जन्म के समय पर समय सर्वगुण सम्पन्न हो गया। मुहूर्तों ने सोचा, हम भी अपने जीवन को धन्य बना लें। अतः उस समय सुन्दर से सुन्दर, उत्तम से उत्तम मुहूर्त हो गया। ग्रहों ने सोचा—'हम किसी को सुखदाई होते हैं किसी को दुःखदाई। एक शुभ होता है, तो दूसरा अशुभ। आज हम सब ही शुभ बनकर अपने को कृत्य-कृत्य कर लें। अत समस्त ग्रह अनुकूल और शुभ स्थानों मे हो गये। इसी प्रकार नक्षत्र, तारागण—सब

शान्त सुखद और मङ्गलप्रद बन गये। ऋतुओ ने कहा—"हम सब ऋतुयें छ. हैं। लोग कहते तो वसन्त को ऋतुराज है, किन्तु हम सब मे वर्षाऋतु ही सर्वश्रेष्ठ है। वर्षा मे ही सर्वत्र हरियाली छा जाती है। वर्षा मे ही जल वृष्टि होती है। जल का एक नाम जीवन भी है। वर्षा मे ही प्राणिमात्र को जीवन मिलता है। वर्षा न हो, तो न अन्न हो, न घासभूसा हो। वर्षा के बिना जीवन रह ही नही सकता। वर्षा ही जीवन है। वर्षा ऋतु ही सब ऋतुओ का आश्रय है। अतः वर्षाऋतु को सब ऋतुओ ने प्रस्तुत किया।

मासो ने सोचा—हम क्वार, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आषाढ और श्रावण—ग्यारह महीने हैं। हम सब पुरुष हैं, हमारी एक ही बहिन है भादो। वही स्त्रीलिंग है। वही हम सब को प्यारी है। भाद्रपद मे सभी उन्नति करते हैं। सूखी नदियाँ भी भर जाती हैं। पशु, पक्षी मनुष्य-जाति की स्त्रियाँ प्रायः इसी महीने मे गर्भ धारण करने की विशेष योग्यता प्राप्त करती है। यह मास जीवन आरम्भ करने का मास है। पितर भी इसी मास मे विशेष तृप्त होते हैं। अतः सब मासो न भादो को आगे किया। पक्षो ने कहा—'यद्यपि शुक्ल' पक्ष को लोग श्रेष्ठ समझते हैं, क्योकि उसमे चन्द्रमा रहता है, किन्तु यह लोगो का भ्रम है। चन्द्रमा तो शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष दोनो मे ही समान रहता है। अन्तर इतना ही है कि शुक्लपक्ष मे रात्रि के प्रथम भाग मे विशेष रहता है कृष्णपक्ष मे रात्रि के परभाग मे विशेष रहता है। फिर उस का नाम ही कृष्णपक्ष है। अतः कृष्णपक्ष को आगे किया।"

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! कृष्णपक्ष की तो प्रशसा की नही। वैसे आप पक्षपात से चाहे जो सिद्ध कर दें।"

सूतजी बोले—"नही, महाराज ! पक्षपात की क्या बात है ? पक्ष तो कृष्ण ही श्रेष्ठ है। जिन वस्तुओ का चाहे नाम से, गुण से, रूप से—कैसे भी श्रीकृष्ण से सम्बन्ध हो जाय, वही सर्वश्रेष्ठ है। तीर्थराज प्रयाग मे त्रिवेणी तट पर एक व्रजवासी सकल्प पढ रहे थे। शुक्लपक्ष का महीना था। वे कह रहे थे, कृष्णपक्ष। किसी पडा ने कहा—"महाराज ! अब तो शुक्लपक्ष है।"

व्रजवासी बोले—"भैया, जिसके लिये शुक्लपक्ष होगा, उसके लिये होगा, हमारा तो सदा कृष्ण ही पक्ष है। सो महाराज ! पक्षो ने कृष्णजन्म के लिये कृष्णपक्ष को ही आगे किया। तिथियो ने परस्पर मे सम्मति की कि कौन सी तिथि बडी है। पूर्णिमा ने कहा—"मैं सबसे बडी हूँ रात्रिभर खिली रहती हूँ। मुझे देखकर सभी सुखी होते हैं, मैं देवताओ को प्रिय हूँ।"

अमावस्या ने कहा—'सबको प्रिय कैसे हो तुम ? विरहिणी तो रात्रिभर तुम्हारी चाँदनी मे तडपती रहती है। चोर तुम्हे कोसते ही रहते हैं। दिन की शोभा प्रकाश से है, रात्रि की शोभा अन्धकार से है। अतः मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये चान्द्रमास मुझसे ही आरम्भ होता है। पितरो की मैं अत्यन्त प्रिय हूँ।"

इस पर सबने कहा—"रात्रिभर प्रकाश भी अच्छा नही और न रात्रिभर अन्धकार ही। मध्यम मार्ग ही उत्तम है। आधे मे अन्धकार, आधे मे प्रकाश। इसलिये अष्टमी तिथि ही उत्तम है। इसमे सभी सुखी हो सकते है।" अत. सबने अष्टमी तिथि को आगे किया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार श्रीकृष्णजन्म के समस्त उपक्रम एकत्रित हो गये। भाद्रपद कृष्णा-अष्टमी का दिन आया। इसी दिन भगवान् का प्राकट्य हुआ। अब आप श्रीकृष्णजन्म की कथा श्रवण करें।"

छप्पय

देखि देवकी देव दीन ह्वै बोली बानी।
हे चतुरानन! शंभु सुरेश्वर वीनापानी॥
हौं अबला अति अधम दया दासी पै कीजै।
कंस न मारे सुतहिँ कृपा करि जिह वर दीजै॥
सुरगन बोले मातु तुम, जग-जननी मत भय करो।
अखिल भुवनपति होहिँ सुत, हनहिँ कंस, धीरज धरो॥

श्रीकृष्ण–जन्म

[८२६]

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥*

(श्री० भा० १० स्क० ३ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

आश्वासन दै देव विनय करि स्वर्ग सिधारे।
भये सकल अनुकूल लगन, ग्रह नखतहु तारे॥
वृष्टि करहिं सुरसुमन दुन्दुभी मधुर बजावें।
विद्याधर गन्धर्व अप्सरा नाचें गावें।
कृष्ण भादौं अष्टमी, नखत रोहिणी शुभ समय।
अर्ध रात्रि बेला सुखद, तब प्रभु प्रकटे प्रेममय॥

अजन्मा का जन्म हुआ, इस पर कौन विश्वास करेगा? विश्वास न करो, न सही! किन्तु; अजन्मा का जन्म गोकुल में हुआ अवश्य। निराकार ने साकार वपु धारण किया; अथवा सदा-सर्वदा अपने लोक में साकार-स्वरूप से ही सात्वतो द्वारा द्वारा सेवित सर्वेश्वर उसी रूप से अपने अनुगत पार्षद, परिकरो के सहित अवनि पर अवतरित हुए। यह तर्क से सिद्ध

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! उस घोर अंधकारमयी अर्ध रात्रि के समय श्रीजनार्दन जगदीश का जन्म हुआ। जैसे पूर्वदिशा में पूर्ण चन्द्रका उदय होता है, उसी प्रकार देवरूपिणी देवकी की कुक्षि से सर्वगुहाशय श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव हुआ।"

न होने पर भी उसी प्रकार ध्रुव सत्य है जिस प्रकार सत्य, सत्य है। विश्वब्रह्माण्ड जिनके उदर मे है वे देवकीजी के उदर के भीतर आये। यह बुद्धि के परे का बात हान पर भो सिद्धान्तत-सत्य है, क्योंकि व भा ता बुद्धिस पर हैं। अत भगवान का अवतार होता है इसम जिन्हें सन्देह हो, व स देह कर। जिन्होने उस रूप को दखा है और आज भो अनक महानु ावो के सम्मुख वह अनिर्वचनीय रूप प्रकट होता है व इस बस कालपनिक कह सकते हैं ? भगवान् न भक्तो को सुख देन कमनीय क र्म करने के हेतु श्रीकृष्णरूप धारण किया और वह भी भाद्र कृष्णाष्टमी की अर्धरात्रि के समय इसम काई सन्देह नही।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! भाद्रपद की कृष्णाष्टमी तिथि आई। समय स्वत ही शुभ और सवगुण सम्पन्न हो गया। रोहिणी नक्षत्र का उदय हुआ। अन्य जो अश्विनी आदि नक्षत्र थे वे समस्त शुभ हा गये। ग्रह और तारागण शान्त हो गये। सभी ग्रहो ने अपनी क्रूरता तथा वक्रता छाड दी। दशो दिशायें दमकने लगी। वर्षा के कारण उनमे जो कुछ तम था वह हट गया सभी दिशायें निर्मल हो गयी। नभ म अमल-विमल स्वच्छ कातिमय शोभायुक्त तारागण चमचमान लगे मानो किसी ने नीलमणि की छत मे दिव्य प्रकाश युक्त स्फटिक मणि के टुकडे मढ दिये हो। समस्त नगर पुर ग्राम, गोष्ठ, हाटे रावट, रत्नो तथा अन्य वस्तुओ की खानें तथा सम्पूण स्थान शोभायुक्त बन गये। पृथ्वी पर ऐसा प्रतीत होता था, मानो सवत्र स्वाभाविक सौ दय छा गया हो। प्रकृतिदेवी अपने पति की प्रतीक्षा मे पगली सी हो रही थी। जब उसे विदित हो गया, आज मेरे प्राणनाथ जीवन-धन, सयस्व पधारगे तब उसने उनके स्वागत के निमित्त सवत्र यथेष्ट शोभा बखेर दी। मेदिनी मङ्गल-

मयी बन गई । उसे भी तो अपने तप्त वक्षस्थल पर प्रभु के
शीतल सुखद पादतलो को रखकर उसके ताप को शान्त क
था । अतः उसके अगो में भी सात्विक विकार उत्पन्न हो ग
रोमाञ्च होने से उसकी शोभा बढ गई । रोम-रूप तृण, वी
लता तथा पादपो द्वारा वह सिहर उठी । उसके रोम-रो
आनन्द भरने लगा । नदियो का नीर निर्मल तथा नीरु
गया । मुकुलित कमलो को कलियाँ खिलकर हिलने लगो । सु
शीतल स्वादिष्ट, स्वच्छ सलिल वाले सरोवरो की श्री स्वतः
बढ गई । उनमे कमल, कन्हार, शतपत्र सरोरुह, आदि अ
जातियो के विविध रग वाले कमल विकसित हो गये ।
कारडव, चक्रवाक, सारस तथा अन्यान्य जल-जन्तु कलरव क
लगे । वनो की शोभा सबसे अधिक बढी । सभी ऋतुओ
पादप पल्लवित पुष्पित होकर असमय ही फलने लगे । उन
बैठे हुए खग-वृन्द कलरव करके नभमण्डल को गुजायमान क
लगे । ऐसा प्रतीत होता था, वे श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव के उपलक्ष
मगलगान कर रहे हो । पक्ति-बद्ध पुष्पो के स्तवक पत्तो से
ऐसे प्रतीत होते थे, मानो प्रकृतिदेवी ने पादपो के स्तम्भ ल
कर पल्लव और सुमन-गुच्छो के बन्दनवार लटका दिये हो
केसर, मधु और पराग से पूर्ण पुष्पो पर षट्पद बैठक
गुजार करते हुए गुणी गायक की भाँति गीत गाते हुए
प्रतीत होते थे । शीतल-मन्द-सुगन्ध, सुखकर, सुन्दर, स्वच्छ
समीर बहने लगा । उस सुखद समीर, से शुभ समाचा
सुनकर शान्त - सदाचारी- सुशील द्विजों द्वारा सचित अग्निहो
की अग्नि स्वतः ही प्रज्वलित हो गयी । असुरो के दुःख से
दुखी देवादि तथा महात्माओ के मनमुकुर मोद से खिल गये ।
सुरो ने समझा, सर्वेश्वर हमारी प्रार्थना से प्रकट हो रहे हैं ।

माता का पेट फूल गया था, उसमे कोई रजवीर्य से निर्मित रक्त, मांस, मेदा मज्जा, अस्थि तथा शुक्र—इन सात धा वाला प्राकृत पिंड थोडे था! उस उदर मे तो सर्वेश्वर का दिव्य सरम सङ्कल्पमात्र था। उसका जन्म क्या होना था, वही दिव्य सङ्कल्प साकार होकर जननी के सम्मुख हो ग ऐसा नही हुआ कि मातृ-उदर से कोई रक्तभरा तथा अन्य से सना प्राकृत हाथ-पैरवाला बालक पैदा हुआ हो। भग देवकी स्वभावानुसार शय्या पर पडी हुई थी। छ सात कारावास मे उन्होने और भी शिशु-प्रसव किये थे। उसी सस्क वश वे पडी हुई थी। कारावास मे धाई परिचारिका कहाँ आती? अत उनके पति ही पलग के पास बैठे थे। आधी हो गई थी। जगत निद्रादेवी की गोद मे पडा सो रहा था। स शांति का साम्राज्य था। बीच-बीच मे प्रहरियो की कर्ण-कटुवा सुनाई देती थी या दिव्य सगीत कल्पवृक्षो के सुमनो से प्रा भरा हुआ-सा प्रतीत होता था। किन्तु यदि कोई मानव उठा चाहे तो वहाँ कुछ भी दिखाई नही देता था। सहसा माता शय्या पर पडे-पडे ही देखा कि एक नवघन के सदृश अत्य मनोहर चतुर्भुजी मूर्ति उनके सम्मुख खडी है। वह शैशव वस्थापन्न नही है। उनकी अवस्था नित्यकिशोर है। अलसी पुष्प के समान उनके श्रीअङ्ग की कान्ति है। काले-काले घुँघरा बाल कधो पर बिथुरकर कपोलो का स्पर्श कर रहे हैं विशाल भाल पर कुंकुम कस्तूरी-मिश्रित तिलक शोभायमान है उनके कमल के समान विकसित बडे-बडे नेत्र हैं। शुक के सरिस नासिका मे बुलाक हिल रहा है, दाडिम के सदृश दशनो से कमनीय कान्ति निकल रही है। कण्ठ मे वनमाला और कौस्तुभमणि शोभित हो रहे हैं। वक्ष.स्थल मे श्रीवत्सलाञ्छन अपनी आभा

से अपना अस्तित्व प्रकट कर रहा है। वह शरीर मे सुवर्ण के सदृश सुन्दर सुहावना स्वच्छ मनोहर पीताम्बर धारण किये हुए है। अङ्ग का वर्ण सजल जलधर के सदृश श्याम और सरस है। उसके दो नही, चार भुजायें हैं। उन चारो भुजाओ मे वह चार आयुध धारण किये हुए है। करतल लाल कमल के सदृश मृदुल तथा सुघर हैं। उन करा मे से एक करकमल मे पाचजन्य नामक शङ्ख है। वह ऐसा प्रतीत होता है, मानो रक्तकमल के ऊपर शुभ्र स्वच्छ राजहस बैठा हो। द्वितीय हस्त मे सुदर्शनचक्र उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार आकाश में इन्द्र धनुप। तृतीय श्रीकरकमल मे कौमोदिको नाम्नी गदा है, जो नीचे तो मोटी है और फिर क्रमश पतली होती आई है। चतुर्थ करकमल मे एक पृथक क्रीडा-कमल है जिसे भगवान् मन्द-मन्द मुस्कान के सहित हिला रहे हैं, घुमा रहे हैं। श्रीहरि की अपरिमित काली-काली घुंघराली अलकावली वायु मे विथुरकर भूमकर महामूल्यमय रत्नकिरीटो, कान्तिमय कुण्डलों, तथा गोल-गोल सुडौल चिक्कड-चमकीले कपोलो को चूम रही है। उसका सुन्दर सुचिक्कड सजल जलद के समान श्याम श्रीअग कटि की मनोहर मेखला से, भुजाओ के भव्य दिव्य भुजबन्दो से, करके कमनीय कनक-कङ्कणो से तथा अन्यान्य मणिमय दिव्य सुवर्ण आभूपणो से विभूपित हो रहा है। इन भूपणो से अङ्गों की शोभा नही बढी है, अपितु ये भूषण ही उन भव्य अङ्गो को पाकर शोभायुक्त हो गये हैं।

वसुदेवजी इस आश्चर्य को देखकर परम विस्मित हुए। अब तक तो वे यही देखते आये थे, कि बच्चा उत्पन्न होते समय देवकी बिना जल की मछली के सदृश छटपटाया करती थी, बडे कष्ट से बच्चा होता था रक्त आदि से प्रसव का स्थान भर

जाता था, वहाँ का दृश्य बडा अशोभन हो जाता था, बच्चा पैदा होते ही रुदन करने लगता था, बच्चे का जन्म सुनते ही द्वारपाल दौड आता और पूछता था—'बच्चा हुआ ?" तुरन्त ही दौड़े-दौडे कंस आ जाता। वह अचेतन पडी देवकी का कुछ भी शील-संकोच न करके उस बच्चे को उठा लेता और तुरन्त उसे मार डालता। किन्तु ऐसी बात नही हुई। देवकी को कोई कष्ट नही हुआ। रक्त की एक बून्द भी नही गिरी। उनका उदर जो फूला था, वह पिचक गया। तुरन्त शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी, वनवारी बांके विहारी सम्मुख खड़े हो गये। चतुर्भुज विष्णु को पुत्ररूप से अपनी पत्नी के उदर से अवतीर्ण हुए देखकर वसुदेवजी के मुरझाये सूखे नेत्र आश्चर्य तथा आनन्द से विकसित हो उठे।

कृपण को जैसे अनन्त धन-राशि मिल जाय, पुत्र हीन को जैसे पुत्र-जन्म का सुखद सम्वाद प्राप्त हो जाय, मृतक को जैसे जीवन मिल जाय,धनिक को जैसेउसकी खोई हुईअनन्त धन-राशि मिल जाय, बिछुडा हुआ अपना अत्यन्त सुहृद जैसे अकस्मात् मिल जाय—' इन बातों से जितनी प्रसन्नता होती है, उनसे भी अनन्त गुनी प्रसन्नता वसुदेवजी को पुत्ररूप मे उत्पन्न हुए प्रभु के दर्शनो से हुई। वे कृष्णावतार महोत्सव मनाने के सभ्रम मे इस बात का भूल ही गये, कि हम कस के कारावास मे हैं। तुरन्त उन्होने हाथ मे जल लेकर आनन्दमग्न होकर ब्राह्मणो को दश सहस्र गोदान करने का सङ्कल्प कर दिया। भगवान् के दर्शनों से उन्हे इतना आह्लाद हुआ, कि यह बात उनके मन में भी नही आई, कि दश सहस्र गौएँ मैं कहाँ से लाऊँगा।'

भगवान् खडे-खड़े मुस्करा रहे थे। देवकी देवी शय्या पर पड़ी ही पड़ी अपलक भाव से उनकी अनुपम छवि को निहार

रही थीं। उन्हें शरीर की सुधि-बुधि ही नहीं थी। वे यह निर्णय न कर सकी कि मैं यह जो देख रही हूँ वह स्वप्न है या सत्य है। भगवान् की अलौकिक दिव्य कान्ति से उस सूतिका-

गृह में असंख्य सूर्य-चन्द्रों के सदृश सुहावन, सुखद और स्वच्छ प्रकाश फैल रहा था। वसुदेवजी ने अपनी विवेक-बुद्धि द्वारा अपने आपको सम्भाला। सद्य जात अपने चतुर्भुजी बालक को परमपुरुष जानकर उनको जो भी कुछ मन का रहा-सहा भय था वह जाता रहा। वसुदेवजी बड़े ही बुद्धिमान, ज्ञानी और भगवान् के प्रभाव को जाननेवाले थे। हड़बड़ाहट में वे किं-कर्तव्यविमूढ़-से बन गये। वे शीघ्रता में निर्णय ही न कर सके कि अब उन्हें क्या करना चाहिये। फिर सोचे—'अरे

के दर्शन हुए, मैंने उनकी स्तुति भी नहीं की ?" यह सोचकर उन्होंने भगवान् की स्तुति की ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वसुदेवजी तथा देवकीजी ने भगवान् के प्रकट होने पर जो स्तुतियाँ की हैं, वे दोनों ही बड़ी दिव्य हैं। उनका वर्णन मैं यथा-स्थान पुनः स्तुति-प्रकरण में करूँगा। अब तो आप आगे की कथा श्रवण करें।"

छप्पय

अप्राकृत शिशु सुघर चतुर्भुज कमल नयन वर।
शंख, चक्र अरु गदा पद्म सुन्दर आयुध-धर॥
पीताम्बर वर अंग सजल जलधर शोभा तनु।
कारे कुंतल केश रूप साकार भयो जनु॥
सुन्दर श्याम शरीर की, शोभा अति अद्भुत बनी।
शोभित तनु की कान्ति तैं, कंकरा कुण्डल करधनी॥

श्रीहरि और श्रीवसुदेव देवकी

[८३०]

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३ अ० ४४ श्लोक)

छप्पय

चनि विस्मित वसुदेव वत्स को, बहुरि विचारें ।
नहिँ सुत ये सर्वेश चतुर्भुज शुभ वपु धारें ॥
करचो मानसिक दान ध्यान तैं चिन्हें श्री हरि ।
परमपुरुष परमेश, जानि विनवें वन्दन करि ॥
आप अखिल जगदीश हैं, पहिचाने प्रभु परावर ।
अज, अनादि विश्वेश विभु, व्यापक सुखकर तत्वपर ॥

दुःख में भगवान् प्रत्यक्ष होकर प्रकट हो जाते है। किन्तु, उनको सब कोई जान भी नहीं सकते। हम स्त्री-पुरुषो को ही पूर्णरीत्या नही जान सकते। बाहर की बात छोड़ दीजिये। अपने मन को भी हम भली भाँति नही जान सकते. फिर औरों की तो बात ही क्या है। भगवान् को कोई साधनों द्वारा जानने का अभिमान करें, तो यह उसका अभिमानमात्र ही है। भगवान् साधनों से नहीं जाने जा सकते। वे तो स्वयं ही जिस पर कृपा करें, स्वय ही जिसे जनाना चाहें वही जान सकता है। वे ही

---

* श्रीभगवान्, श्री वसुदेवजी तथा देवकीजी से कह रहे है—"देखो, मैंने तुम दोनों के लिये अपना यह रूप इसलिये दिखा दिया है, कि तुम्हें मेरे पूर्व जन्मो का स्मरण हो जाय। अन्यथा मेरे सम्बन्ध का ज्ञान मर्त्य शरीर से हो नहीं सकता अर्थात् मुझ चिन्मयका ज्ञान चिन्मय शरीर से ही होता है।"

जब कृपा करके दिव्य चक्षु दें, बुद्धियोग प्रदान करें, तभी वे पहचाने जा सकते है। नही तो लीलाधारी की लीला अत्यंत ही अद्भुत है ब्रह्मादि देव भी उसका पार नहीं पा सकते, फिर औरों की तो कथा ही क्या है!

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान् चतुर्भुजरूप से श्री वसुदेवजी तथा देवकीजी के सम्मुख प्रकट हो गये, तब श्री वसुदेवजी विस्मय के सहित भगवान् की स्तुति करने लगे। वसुदेवजी बोले—"प्रभो! मैं जान गया, जान गया। आप मेरे पुत्र नही परमेश्वर है; आप शिशु नही, सर्वेश है, सर्वान्तर्यामी हैं, घटघटवासी है। आप से ही चराचर जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय हुआ करती है। आप त्रिगुणातीत है। आप अज, अव्यक्त, अनादि तथा अचिन्त्य हैं। नाथ! ऐसे होकर भी आप मेरे पुत्र बनकर प्रकट हुए है। प्रभो! आपका जन्म मेरे यहाँ हुआ है, इस समाचार को सुनते ही क्रूरकर्मा कंस कर मे करवाल लिये तुरत दौडा आवेगा। उसने आप से पूर्व उत्पन्न होने वाले मेरे बच्चो को मार डाला है। जब वह सुनेगा कि आठवें गर्भ से बालक उत्पन्न हुआ है, तब आप पर भी वह प्रहार करेगा।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! देवी देवकी ने जब देखा कि अब के मेरे गर्भ से पुत्र न होकर परात्पर प्रभु प्रकटित हुए हैं तब उनके हर्ष-शोक का ठिकाना नही रहा। हर्ष तो उन्हें श्रीहरि के उत्पन्न होने का था और शोक था अपनी दयनीय दशा का। वे कंस से बहुत ही डरी हुई थी। पति को स्तुति करते देखकर उन्हें भी ज्ञान हुआ, कि ये भगवान् हैं, इनकी स्तुति करनी चाहिये।" अत हाथ जोड़कर कहने लगीं—"हे प्रभो! आप अज, अनादि, अव्यक्त, ब्रह्म, ज्योतिर्मय, निर्गुण, निराकार सत्तामात्र, निर्विशेष, निरीह, सर्वप्रकाशक तथा विष्णु हैं। हे

नाथ ! मर्त्यलोक के प्राणियों के लिये आपके दर्शन दुर्लभ हैं। हमारे जैसे मायाबद्ध प्राणियो के सम्मुख इस गुह्यातिगुह्य स्वरूप को आप प्रकट न करें। हम मोह-पाश मे आबद्ध जीव इस परम रहस्यमय रूप निहारने के अधिकारी नही हैं। दूसरी बात यह भी है कि मैं कंस के कारण अत्यन्त ही डरी हुई हूँ। आपके पूर्व उत्पन्न होने वाले बालको को इस दुष्ट ने मार डाला है। आप को भी वह मार डालेगा। अतः आप अपने इन शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि दिव्य आयुधो को छिपा ल। इस बात पर कौन विश्वास करेगा, कि अनेक ब्रह्माण्ड जिनके गर्भ मे है वे मेरे गर्भ मे आये और पुत्र बनकर प्रकट हुए ?"

देवी देवकीजी की स्तुति सुनकर भगवान् बोले—"देवि ! मैं एक विशेष प्रयोजन से चतुर्भुज रूप मे आपके सम्मुख प्रकट हुआ हूँ।"

देवकीजी ने पूछा—"वह क्या प्रयोजन है भगवन् ?"

भगवान् बोले—"वह यही कि मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्म की स्मृति दिलाना चाहता हूँ।"

देवकी बोली—"हम पूर्वजन्म मे कौन थे ?"

भगवान् ने कहा—"तुम स्वायम्भुव मन्वन्तर के समय पूर्व-जन्म मे पृश्नि थी और ये तुम्हारे पति वसुदेवजो सुतपा नाम के प्रजापति थे। जैसे दक्ष कश्यप, कर्दम, अत्रि आदि प्रजापति हैं, जिनसे प्रजा की वृद्धि होती है, वैसे ही ये प्रजापति थे। ब्रह्माजी ने कहा—'भैया, तुम सृष्टि की वृद्धि करो।"

इन्होने पूछा—"महाराज ! सृष्टि-वृद्धि के लिये हमें क्या करना होगा ?"

ब्रह्माजी ने कहा—"देखो, भाई ! तपस्या से शक्ति आती है। तप द्वारा सभी संभव है। अतः तुम एकान्त मे जाकर घोर

तप करो। तुम्हारे तप से श्रीहरि प्रसन्न होकर तुम्हे अभीष्ट वर देंगे।

यह सुनकर पति-पत्नी दोनो तप करने घोर वन मे चले गये। वहाँ जाकर तुमने इन्द्रियो का दमन करके देवताओ के वर्षों से बारह हजार वर्ष-पर्यन्त (हमारे ३६० वर्ष देवताओ के एक वर्ष के समान हैं, उतने वर्ष) तुमने घोर तप किया। तुम दोनो हा बडी सावधानी से—अप्रमत्त भाव से—तप करते थे, वर्षाऋतु मे खुले मैदान मे बैठकर चारो महीनो की वर्षा को सिर पर लेते थे। जाड़े के दिनों मे कण्ठ-पर्यन्त जल मे खडे होकर तुम लोग निरन्तर तप करते रहते थे तथा गर्मी के दिनो मे बालू मे बैठकर चारो ओर से अग्नि जलाकर पाँचवें सूर्य का ताप सहकर पञ्चाग्नि तापते रहे। इस प्रकार तुम लोग वर्षा, वायु, धूप, शीत, उष्ण आदि काल के गुणो को सहते हुए अत्यन्त कठिन तपस्या करते रहे, नित्य नियम से प्राणायाम करते थे। इसलिये प्राणायामादि साधनो द्वारा तुम्हारे मन का सब मैल धुल गया। तुम दोनो निष्कल्मष बन गये। तुम मुझसे वर माँगना चाहते थे, अतः तुमने कन्द-मूल-फल आदि आहार को भी त्याग दिया, केवल वृक्षो से स्वतः हो गिरे हुए सूखे पत्ते खाकर तुम तप करते रहे। कुछ काल मे सूखे पत्ते भी तुमने छोड दिये, केवल वायु पीकर ही निर्वाह करने लगे।

जब मैंने देखा, तुम्हारा अन्तःकरण विशुद्ध बन गया है, उसमे किसी प्रकार का दोष शेष नही रहा है, श्रद्धा और भक्ति द्वारा ,निरन्तर मेरे ही चिन्तन मे लगे हुए हो, तुम दोनो के हृदय-मन्दिर मे मेरी ही मनमोहिनी मूर्ति विराजी हुई है, तब फिर मुझसे नही रहा गया। मैं इसी चतुर्भुज रूप से तुम्हारे

सम्मुख प्रकट हुआ और मैंने मेघ-गम्भीर वाणी से कहा— वर ब्रूहि, वर ब्रूहि – वर माँगो, वर माँगो।"

तुम दोनों ने अभी तक संसारी सुख तो भोगा ही नहीं था। ऐसा सौन्दर्य-लावण्य भी कभी नहीं देखा था विषय-भोगों का संपर्क भी तुमसे नहीं हुआ था, फिर सन्तान तो होती ही कैसे! फिर तुमको मैंने प्रजावृद्धि के निमित्त ही पैदा किया था। मेरे दर्शनों का फल तो यह है, कि संसारी विषयों में छूटकर संसार-बन्धन से मुक्ति हो जाय, मेरे नित्यधाम की प्राप्ति हो जाय। यही वर बुद्धिमानों को मेरे प्रकट होने पर माँगना चाहिये। किन्तु, तुम्हें तो मैंने अपनी माया से मोहित कर रखा था अतः तुमने मोक्ष की याचना नहीं की। तुम दोनों के मन में तो मेरी मनमोहिनी मूर्ति बस गई थी। अतः तुमने कहा— 'प्रभो! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हमें अपने सदृश पुत्र दीजिए, पुत्र दीजिये, पुत्र दीजिए!'

मैंने कहा—'जाओ, अपने समान मैंने पुत्र दिया, पुत्र दिया, पुत्र दिया!'

यह सुनकर तुम दोनों अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए। तुम्हारा मनोरथ सफल हो चुका था अतः तुम अपने घर लौट आये और धर्मपूर्वक गृहस्थ-धर्म-का पालन करते हुए धर्माविरुद्ध काम-भोगों का भोग करने लगे।

मैं वरदान देकर जब अपने लोक में आया तब सोचा— "अरे, मैंने तो तीन बार कह दिया—पुत्र दिया, पुत्र दिया, पुत्र दिया। इसलिये मुझे तीन पुत्र इन्हें देने चाहिये। वे तीनों ही सर्वथा मेरे समान हों।"

मैंने लक्ष्मीजी से कहा— 'मुझे थोड़े सतुए बना दो।"

लक्ष्मी ने कहा— 'सतुओं का क्या करोगे महाराज?"

मैंने कहा—"मुझे कही विशेष काम से यात्रा मे जाना है।"

लक्ष्मीजी ने सतुए बना दिये। मैं नमक-सत्तू बाँधकर लुटिया-डोरी लेकर समस्त ब्रह्माडों मे अपने समान तीन व्यक्ति खोजता फिरा। खोजते-खोजते थक गया, किन्तु शील, उदारता, सौंदर्य, माधुर्य, कृपालुता, भक्तवत्सलता तथा अन्यान्य गुणों मे तीन की तो कौन कहे, मेरे समान एक भी व्यक्ति न मिला। तब मैं हताश हो गया। अब क्या करता? मैं वचन तो हार ही चुका था। इसलिये मैं स्वय ही तुम्हारा पुत्र होकर 'पृश्निगर्भ' इस नाम से विख्यात हुआ।"

यह सुनकर देवकी देवी आश्चर्य-चकित होकर पूछने लगी—"अच्छा, हम पूर्वजन्म में इतने बड़े आदमी थे! मेरे पति प्रजापति थे! मैं प्रजापति की पत्नी थी! आप मेरे पहले भी पुत्र हो चुके हैं? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

भगवान् बोले—"एक बार नहो, तीन-तीन बार मैं तुम्हारा पुत्र हो चुका हूँ। तुम तो मेरी योगमाया के प्रभाव से उन बातो को भूल गई हो।"

देवी देवकी बोली—"हाँ, महाराज! एक जन्म की तो कथा सुनी। दूसरे जन्म मे हम कौन थे और आपने किस रूप मे हमारे यहाँ अवतार धारण किया था?"

भगवान् बोले—"दूसरे जन्म मे तुम अदिति थी और ये तुम्हारे पति वसुदेवजी प्रजापति कश्यप थे। तुमने बहुत से देवो को उत्पन्न किया, फिर मैं तुम्हारे गर्भ से उपेन्द्र रूप मे अवतरित हुआ। बौना होने से लोग मुझे वामन भी कहते थे। उस समय बलि को छलकर अपने बड़े भाई इन्द्र को तीनो लोको का राज्य मैंने दिया था और तीनो लोकों का पालन किया था।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—' सूतजी ! अदिति देवी तो तब भी विद्यमान थी और अब भी है। फिर देवकी देवी अदिति का अवतार कैसे हुई ?"

सूतजी बोले— 'क्यों महाराज ! इसमे कौन सी आश्चर्य की बात है ? भगवान् का जब अवनि पर अवतार हुआ, तब बलदेवजी व्यासजी, नारदजी परशुरामजी सनकादि तथा और भी कई अवतार उपस्थित थे। एक ही भगवान् के एक साथ इतने अवतार कैसे हो गये ! इन सबमे भगवान् के विशेष अश थे। भगवान् की शक्ति तो अपरिमित है। ऐसे ही उनके अग उपाग पार्षद् और परिकरों की भी शक्ति अनन्त है। अदितिजी एक शरीर से थी। एक अशो से देवकी रूप में अवतरित हुई। लक्ष्मीजी ही कितने अश से अवतरित हुई हैं। इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है। जो भगवान् के अचिन्त्य अपरिमित प्रभाव को भुलाकर केवल साधारण मनुष्यो की सीमित बुद्धि से ही विचार करते है वे ही ऐसी शकायें उठाया करते हैं। आप उन्हीं की ओर से यह पूछ रहे हैं ?"

शौनकजी बोले— हाँ, सूतजी ! यह सत्य है। अब आप आगे की कथा कहिये।"

सूतजी बोले—"हाँ महाराज ! देवकी देवी ने भगवान् से पूछा—"महाराज ! तीसरे जन्म मे हम कौन थे ? आप किस रूप से अवतरित हुए ?"

भगवान् शीघ्रता के साथ बोले—' तीसरा तो तुम्हारे सम्मुख प्रत्यक्ष ही है। तुम देवकी वसुदेव हुए मैं श्रीकृष्णरूप मे अवतीर्ण हुआ हूँ। चतुर्भुज रूप से मैं इसलिये उत्पन्न हुआ कि तुम्हे पूर्वजन्मो की सब बातें स्मरण करा दूँ। मैं तो सत्य सकल्प हूँ, जिसमे जो कह देता हूँ, उसे पूरा करता हूँ। तुम

से तीन वार पुत्र होने को कहा था, तीनों वार मैं तुम्हारा पुत्र हो गया।"

देवकी देवी ने कहा—"महाराज ! जब आप मेरे पुत्र होकर ही प्रकट होने वाले थे, तब यह चार भुजाओं वाला अलौकिक रूप आपने क्यों धारण किया ?"

भगवान् बोले—'देखो, यदि मैं साधारण बच्चे की ही भाँति प्रकट हो जाता, तो तुम मुझे कैसे जान सकते थे ? केवल मनुष्य-शरीर से ही मेरे जन्म लेने का ज्ञान नहीं हो सकता। मैं अपने यथार्थ रूप से इसलिये प्रकट हुआ कि तुम्हें मेरे दर्शन हो जायँ, पूर्वजन्म के अवतारों की सब बातों का स्मरण हो जाय और मेरा-तुम्हारा परिचय हो जाय। कहो तो मैं बच्चा बन जाऊँ, चाहे जो बन जाऊँ; यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है।"

देवकी देवी ने कहा—"तो महाराज ! अब आपको हम अपना पुत्र मानें अथवा परमेश्वर मानें, यह तो बड़ी दुविधा हो गई।"

भगवान् बोले—"दुविधा की इसमें कौन-सी बात है ? तुम मुझे अपना पुत्र ही मानो। कभी ब्रह्म भी मान लो। जो भी मानो, जैसे भी मानो—कुछ भी मानकर मुझमें निरन्तर अपने मन को लगा दो। अन्त मे मुझमें ही मिल जाओगी। मुझमें प्रीति बढ़ाओगी, तो अन्त में परम-पद पाओगी।"

देवकी देवी बोली—"महाराज ! आप भी कहाँ कारावास में उत्पन्न हुए ? हम तो कंस के भय से दीर्घ साँस भी नहीं ले सकती। छोटे बच्चे होते, तो कहीं छिपा भी लेती। तुम इतने बड़े चतुर्भुज प्रकट हुए हो, तुम्हें कहाँ छिपाऊँ ? मैं तो उस अपने काल-स्वरूप भ्राता से भयभीत हुई थरथर काँप रही हूँ !"

भगवान् बोले—"मुझे कंस-फंस का कुछ भी डर नहीं है। इस गदा से उसका सिर तोड़ दूँगा।"

देवकी देवी कांपती हुई बोलीं—"अजी, लालजी ! अजी, महाराज ! ऐसा मत करो। जन्मते ही उपद्रव मत मचाओ। लोग मुझे न जाने क्या समझेंगे। मेरी बहन भी मेरे पास न आवेंगी, कहेंगी—"इसने तो ऐसा छोरा जना है, जो पेट से ही मुद्गर लेकर जन्मा है, पैदा होते ही मामाजी की खोपड़ी के दो टुकड़े कर दिये। ऐसी अमानुषी लीला मत करो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। तुम मत डरो, मैं तो कंस से डरती ही हूँ।"

भगवान् बोले—"अच्छी बात है; तुम डरती हो, तो एक काम करो, मुझे गोकुल पहुँचा दो। वहाँ नन्द बाबा के यहाँ मेरी माया छोरी बनकर अब प्रकट ही होने वाली है। उसे तो ले आओ और उसके स्थान पर मुझे वहाँ चुपचाप लिटा आओ।"

देवकी देवी ने कहा—"तुम तो अनहोनी बातें बता रहे हो ! हम दोनों के हाथ पैरों में हथकड़ी-बेड़ी पड़ी हैं। हम सात तालों में बन्द हैं। सैकड़ों संगीनोंवाले पहरेदार घूम रहे हैं। इतने पहरों में से तुम्हें कैसे बाहर ले जायँ। फिर अपनी छोरी को कौन मारने देगा ?"

भगवान् बोले—"इन बातों की कुछ चिन्ता मत करो। ये सब बातें मेरी योगमाया के प्रभाव से स्वतः ही हो जायँगी। अपने आप सब बानिक बन जायँगे। तुम चिन्ता मत करो। बोलो, अब मैं बच्चा बन जाऊँ ?"

देवकी देवी बोली—"अच्छी बात है ! बन जाओ महाराज, बच्चा ! अब आप जानें, आपका काम जाने। आप जैसी प्रेरणा करते हैं, वैसा हम करेंगी। उसमें सिद्धि हो, असिद्धि हो, हानि हो, लाभ हो, पाप हो, पुण्य हो—सब आप ही जानें। हम यन्त्र हैं, आप यन्त्री हैं; हमें जैसे नचावेंगे, वैसे ही हम नाचेंगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ऐसा कहकर भगवान् छोटे से, मुनमुने से, एक वितस्ति मात्र के फूल से, बालक बन गये। वे पैर फटफटाने लगे, आँखें मूँद ली, किन्तु रोये नहीं। रोते तो सब गुड़ गोबर हो जाता है। चोरी से उत्पन्न हुए हैं न ? चोर की तो माता भी कुठिला में मूँड़ देकर रोती है कि कोई सुन न ले। फिर ये तो स्वयं चोर हैं। रोते तो कलई खुल जाती। अतः गुम-सुम बने बापके मुँहड़े की ओर देखने लगे। वसुदेवजी योगमाया के प्रभाव से भगवान् के प्रभाव को भूल-से गये और अपने बच्चे को छिपाने के लिये गोकुल जाने की तैयारियाँ सोचने लगे।"

छप्पय

करी देवकी विनय विवशता बहुरि बताई।
बोले श्री भगवान मातु, तू क्यों घबराई॥
पृश्नि गर्भ अरु रूप बनायो वामन मैंने।
तृतिय चतुर्भुज रूप निहार्यो अब ई तैंने॥
डरहु कंस तें मोहि तो, गोकुल महँ पहुँचाइ के।
छोरी नन्दरानी जनी, धरहु यहाँ तिहि लाइ के॥

गोकुल की गैल में

[८३१]

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥❀
(श्री भा १० स्क० ३ अ० ४७ श्लो०)

छप्पय

आयसु हरि सिर धरी करी गोकुल की त्यारी।
परी हथकरी हाथ जाउँ कस बात बिचारी॥
स्वय हथकरी गिरीं कटीं पाइनि की बेरी।
धरे सूप महँ श्याम चले नहिँ कीन्हीं देरी॥
शेष छत्रवत बनि गये, वर्षा तैं बालक बच्यो।
इत गोकुल की गैल में, यम भगिनी कौतुक रच्यो॥

जीव को भय या प्रतिकूलता तभी तक है, जब तक उसे श्री भगवान् का प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त नही होता। जहाँ भगवत् साक्षात्कार हुआ, तहाँ अनुकूलता-प्रतिकूलता का कोई अर्थ ही नही रहता। उसके लिये सभी घटनायें अनुकूल ही हो जाती हैं। भय तो सदा दूसरे से होता है। जब घट-घट-व्यापी, सर्वान्तर्यामी, प्रभु ही अपने बन गये तब पराया दूसरा कौन

❀ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इसके अनन्तर श्री वसुदेव जी जिस समय भगवान् की आज्ञा से सूतिकागृह से अपने बच्चे को लेकर घर से बाहर चले, उसी समय नन्दजी की पत्नी के गर्भ से भगवान् की अजन्मा योगमाया ने जन्म लिया।'

रहा ? सभी तो अपने हो गये । अनुकूलता-प्रतिकूलता तो मन ने मान रखी हैं । बन्धन और मोक्ष भी मन की ही मानी हुई बातें हैं । जहाँ मनमोहन से मन मिल गया, तहाँ सृष्टि की सब घटनाएँ अपना ही अनुसरण करने लगती है ।

सूतजी कहते है— मुनियो ! जब भगवान् श्री देवकीजी तथा वसुदेवजी को इस प्रकार आदेश देकर प्राकृत शिशु के सदृश बन गये, तब वसुदेवजी ने सोचा—'भगवान् ने अभी आदेश दिया है मुझे गोकुल पहुँचा दो। नन्दजी के यहाँ मेरी योगमाया पुत्रीरूप मे उत्पन्न हुई है, उसे ले आओ । किन्तु, अब मैं गोकुल जाऊँ कैसे ? मेरे हाथो मे हथकडियाँ पड़ी हैं, पैरो मे वेडियाँ हैं । पहरे वाले न जाने क्यो आज चिल्ला नही रहे हैं, नही तो "ताला-जगला ठीक है महाराज' —यही बोलते-बोलते कान फोड देते हैं, पलभर को भी चुप नही रहते । ये जो बडे-बड़े ताले लटक रहे हैं, इनसे मैं कैसे पार जाऊँगा।"— "वसुदेवजी यह सोच ही रहे थे, कि देखते ही देखते उनके हाथो की हथकडियाँ तडाक-नडाक करके टूट गई । पैरो की वेडियाँ स्वतः खुल गई । गले का (गल-बन्धन) स्वत: गिर गया। सम्मुख द्वार के ताले स्वय खुल गये। यह देखकर वसुदेवजी को विस्मय हुआ, किन्तु विष्णुमाया का कृत्य समझकर उन्होंने मन को समझाया, तुरन्त समीप मे पडे हुए सूप को उठाया, उसमे एक गुदगुदा गद्दा विछाया । देवकीजी की गोदी से वालक को उठाया । बडी सावधानी से उसे उस सूप मे सुलाया । माता ने तब तक बच्चे को भरपेट दूध पिला दिया था । रोते-रोते सूप मे सोये श्यामसुन्दर के सुचिक्कन कपोलो को कई बार माता ने चूमा । उनका हृदय भर रहा था, दोनो नेत्र श्रावण-

भादो की भाँति बह रहे थे, वे खुलकर रो भी नही सकती थीं। कही कंस को विदित न हो जाय, मेरे लाल का अनिष्ट न हो जाय। उनका हृदय ऐंठा जाता था वसुदेवजी ने बालक को एक अत्यन्त पतले पीताम्बर से ढँक दिया था। माता बार-बार वस्त्र को उठाती, मुँह चूमती और पुनः स्तन पिलाती।

वसुदेवजी ने अधिकार के स्वर मे कहा—'बस, बहुत हो गया। मोह-ममता छोड़ो।" देवकीजी इतना सुनकर कटी लता के समान गिर गई। वसुदेवजी बच्चे को लेकर चल दिये।

पहरेवाले सब पट्ट पड़े थे, उन्हें न शरीर की सुधि थी, न पहरे की चिन्ता। वे ज्यो के त्यो पड़े खुर्राटे ले रहे थे। योग-माया ने सभी को सुला दिया था। बन्दीगृह के सभी द्वार भलीभाँति बन्द थे। उनमे बड़े बड़े फाटक, लोहे की मोटी-मोटी जंजीरें पड़ी थी, जिनमे वज्राती ताले लगे हुए थे। कोई भी किसी भी यत्न से उनके बाहर नही जा सकता था, किन्तु वसु-देवजी को देखते ही वे सब द्वार-ताले उसी प्रकार खुल गये; जिस प्रकार निरीक्षक के आने पर कारावास के द्वार खुल जाते हैं। जहाँ श्री कृष्णचन्द्रजी को लिये हुए वसुदेवजी जाते थे, वहाँ सभी मार्ग सुगम और निष्कटक बन जाते थे। उस समय की शोभा अद्भुत थी।

भादो की आधी रात्रि थी। आकाश में बादल उमड़-घुमडकर गर्जन कर रहे थे, मानो श्रीकृष्णजन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे नौबत, दुन्दुभी बजा रहे हो। मेघो ने देखा कि देवताओ ने तो दुन्दुभी बजाई, पुष्पों की वृष्टि की; अब हम क्या बजावें, क्या बरसावें। अतः वे मन्द मन्द गरजकर बाजो का अनुकरण करने लगे। जल की अत्यन्त छोटी-छोटी फुहारें वर्षाकर वे विश्वम्भर का स्वागत कर रहे थे। शेषजी ने देखा—"इन भक्तों को अपने ही स्वार्थ से

प्रयोजन है। ये नहीं देखते कि इस समय सद्य:जात शिशु को स्नान कराने से उसका अहित होगा। वसुदेवजी भी भोले भाले ही ठहरे। यह नहीं जानते थे, भादों का महीना है, मार्ग में कहीं वर्षा होगी

साथ में एक छाता तो ले चलें। अस्तु; कोई बात नहीं। वसुदेवजी व्यग्रता में, शीघ्रता में हड़बड़ाहट में यदि छाता लाना भूल भी जायें, तो मेरे ये सहस्र फण फिर किस काम आवेंगे? मैं ही क्यों न इनका छाता लगाकर इन्हें सफल बना लूँ।"

इस विचारे के आते ही वे तुरन्त भगवान् के पीछे दौड़े गये। वे अपने सहस्रो फणो की छाया से जल निवारण करते करते उनके पीछे पीछे चले। वसुदेवजी सकुशल यमुनाजी के तट पर पहुँच गये। इस बीच न उन्हें किसी ने रास्ते मे टोका न उन्हे कोई मिला ही।

वसुदेवजी ने आँखें उठाकर जो देखा, तो उन्हे यमराज की बहन गर्जती-तर्जती हिलोरें मारती दिखाई दी। यमुनाजी का रूप आज अत्यन्त भीषण बना हुआ था। निरन्तर वर्षा होने के कारण यमुनाजी का प्रवाह अति गम्भीर और तीव्र हो रहा था। वायु चल रही थी। सांय सांय करती हुई ऊँची ऊँची हिलोरें उठ रही थी। भीषण तरगावलियो के कारण जल के ऊपर स्वच्छ मटमेला फेन थिरक थिरककर ताल स्वर मे नृत्य कर रहा था। उसमे गम्भीर भँवर नायिकाओ की नाभियो के सदृश थे, किन्तु वे सुखकर प्रतीत न होकर भयावने-से लग रहे थे। कालिन्दी का ऐसा भयङ्कर रूप देखकर वसुदेवजी विस्मित और चिन्तित हुए। कुछ देर तो वे खड़े-खड़े सोचते रहे। अन्त मे उन्होने निश्चय किया— 'अरे! जिनके प्रभाव से मेरी हथकड़ी-बेड़ियाँ कटकर गिर गई जिनके प्रभाव से पहरे वाले सो गये, ताले खुल गये क्या वे यहाँ यमुनाजी के प्रवाह को नही रोक सकते ? मैं निभय होकर यमुनाजी मे घुसता हूँ।'

ऐसा निश्चय करके वे यमुनाजी मे घुस गये। यमुनाजी अपने भावी स्वामी को देखकर सकुच गईं, वसुदेवजी के घुँटनो तक हो गईं। फिर उन्होने सोचा—"अब तो ये मेरे समीप आ गये हैं, इन्होन मुझे आँख की कोर से देख भी लिया है फिर सगाई पक्की क्यो न हो जाय! ससुर के पैर तो छू ही लिये, इनके भी पैरो को छू लूँ, जिससे इन्हे मेरी स्मृति बनी रहे।

सब लोग इनके चरणो की ही बडी प्रशंसा करते है। मेरी छोटी बहन गङ्गा इनके चरणों से ही निकली है, स्वयं भी ये वटवृक्ष पर लेटे-लेटे अपने चरणो के अंगूठे को चूसते रहते हैं। मैं भी तो इनके चरणों को धोऊं, पास आये पति को देखकर क्यो सोऊँ? प्रियतम के चरणों को वक्षःस्थल पर धारण करके क्यो रोऊं? आये हुए उत्तम अवसर को क्यों खोऊँ? यह सोचकर यमुनाजी उनके चरण छूने चली। वसुदेवजी ने सोचा—'यमुनाजी बढी। उन्होंने भगवान् को सिर पर रख लिया। यमुनाजी एक झपट्टे मे सिर तक पहुँच गईं। वसुदेवजी ने दोनो हाथों से शिशु को ऊपर उठाया यमुनाजी उछली। वसुदेवजी समझ गये, कुछ दाल में काला है! उन्होंने बच्चे को नीचे कर दिया। भगवान् ने भी चुपके से अपना चरण सूप के नीचे लटका दिया। चरणों की पूजा सभी को प्यारी लगती है। कोई कहो, चाहे मत कहो। बाप के शील-संकोच से मुंह से तो कुछ कहा नही। अगूठे को ही ऐसे संकेत से घुमा दिया कि कालिन्दी सब कुछ समझ गईं। चरणामृत लेकर वे पानी-पानी हो गईं। फिर ससुर के घुटनो में ही लग गईं। वसुदेवजी सकुशल पार पहुँच गये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार वसुदेवजो यमुना पार करके श्रीनन्दजी के गोकुल के समीप ही पहुँच गये।

छप्पय

गर्जन तर्जन करति बहति यमुना मदमाती।
भावी पति कूँ निरखि उछलि मनमाहिँ सिहाती॥
लै के हरि को नाम शूर-सुत जल महँ प्रविशे।
कालिन्दी के कमलनयन निज पति लखि निकसे॥
पद-परसन हित बढ़ी जब, समुझि गये वसुदेव सब।
लै चरणामृत घटि गई, भये प्रेम तैं पार तब॥

नन्दरानी के प्रसव

[८३२]

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥*

(श्रीभा १० स्क० ३ अ० ५३, श्लो०)

छप्पय

इत यसुदा के भये गर्भ के पूरे दिन जब।
साजि प्रसव को साज प्रतीक्षा करहिं नारि सब॥
गोबर, तिल, सिल, सींक, शस्त्र, घट-जल, फल, मिट्टी।
धूप, तेल, रँग, दुग्ध, दीप, सरसों, पट, घुट्टी॥
और प्रसव की वस्तु सब, लै बूढ़ी गोपी जुरीं।
इत उत विहरत मुदित मन, खनखनाईं कंकन चुरीं॥

गृहस्थधर्म एक ऐसा महान शास्त्र है कि वह पुस्तक पढने से नहीं आता। उसमे पग पग पर अनुभूति की आवश्यकता है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य इतना ही नहीं है, पशु पक्षियो की भाँति खाना, पीना सोना तथा सन्तान पैदा कर लेना, जैसे-तैसे पेट भर लेना। गृहस्थ का इतना ही पुरुषार्थ नहीं। चिकित्सा का इतना ही प्रयोजन नहीं है कि रोग के उपद्रवो को तीक्ष्ण औषधि देकर शान्त कर लें। विवाह का इतना ही उद्देश्य नहीं कि

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! नन्दजी की पत्नी यशोदाजी को यह तो प्रतीत हुआ कि मेरे कोई सन्तान हुई है, किन्तु निद्रा और परिश्रम के कारण अचेत हो जाने से वह निश्चय न कर सकी कि पुत्र हुआ है, अथवा पुत्री।"

अपनी एक सहचरी को हाथ पकड़ के घर में ले आवें। इन सब कर्मों मे आस्तिकता हो, ये सब कर्म धर्मबुद्धि से किये जायं, उपचार और चिकित्सा के साथ हमारी धार्मिक आस्था बनी रहे, लौकिक और वैदिक—सभी कृत्य यथा-साध्य किये जायं। इन कृत्यो से हमारी भावी सन्तानो के संस्कार बनते हैं। इन्हे वे ही वृद्ध स्त्री पुरुष भलीभाँति सम्पन्न करा सकते हैं, जिन्होने चिरकाल तक गृहस्थी मे रहकर इन सब कर्मों का अनुभव किया है। बिना अनुभव के गृहस्थी के लौकिक वैदिक, कुल-परम्परागत व्यवहार जाने हो नही जा सकते।

आर्य वैदिक सनातनधर्म मे जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त संस्कार ही संस्कार हैं। उनमे सोलह संस्कार मुख्य हैं। गर्भाधान से लेकर अन्तिम दाहसंस्कार तक सभी कार्य विधिविधानपूर्वक किये जाते है। गृहस्थो के यहाँ दो ही पर्व मुख्य और अत्यन्त हर्षयुक्त माने जाते है। जन्म-पर्व और विवाह-पर्व। जन्म के समय और विवाह के समय नगर के कुल-परिवार के बडे बूढे स्त्री-पुरुष आकर गृहस्थी के कामों मे हाथ बँटाते हैं। सामाजिक जीवन तो परस्पर की सहायता और सहानुभूति पर ही अवलम्बित है। किसी के घर पुत्रजन्म हो विवाह हो, आस-पास, पास पडोस के लोग उसे अपना ही काम समझते हैं और सब मिलकर सहयोग देते हैं। जब दूसरो के होता है, तो ये देते हैं। पडोसी की सहायता करना, उसके सुख-दुख मे सुखी दुखी होना यह हमारा परम धर्म था। कलिकाल के प्रभाव से अब यह सहयोग बहुत कम हो गया है। स्वार्थवश लोग दूसरो की सहायता नही करते, पडोसी मे सहानुभूति नही रखते, इसीसे हमारा जीवन रूखा-रूखा, सुख शान्ति हीन, एकाकी, प्रेम-हीन सा हो रहा है। पहले गाँव मे किसी के बाल-बच्चा होता

था, किसी के भी विवाह होता था, झुण्ड को झुण्ड स्त्रियाँ स्त्रियों की सहायता करने पहुँच जाती थी, सब के सब पुरुष पुरुषों के कामों में हाथ बँटाते थे। अब हमारा पारिवारिक सम्मिलित कुटुम्ब-जीवन शनैः-शनैः नष्ट होता जा रहा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रजी को यमुना पार करा के नन्दजी के गोकुल के समीप ले आये। अब आप इधर नन्दजी के गोकुल की भी कथा सुनिये। यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ वृद्धावस्था में नन्दरानी गर्भवती हुईं। सम्पूर्ण व्रजभर मे इस समाचार से आनन्द छा गया। सब रात्रि-दिन शेष, महेश, गणेश दिनेश भगवती तथा भगवान् विष्णु से यही मानते थे, कि नन्दजी के लाला हो। नन्दजी बार-बार सखी सहेलियों द्वारा नन्दरानी से पुछवाते थे तुम्हारा किस वस्तु पर मन जाता है, क्या खाना चाहती हो क्या ओढना-पहनना चाहती हो। तुम्हारी जो इच्छा हो वह बताओ। नन्दजी जानते थे कि गर्भिणी के मन को मारना न चाहिये। उसकी जो इच्छा हो उसे यथाशक्ति पूर्ण कर देना चाहिये। यदि गर्भिणी की इच्छा पूरी न हुई, उसे मानसिक चिन्ता—अप्रसन्नता हुई, तो इसका प्रभाव गर्भगत बालक पर पडेगा। गर्भिणी को बहुत श्रम न करना चाहिये। दिन मे सोना न चाहिये। बुरी-बुरी बातों का चिन्तन न करना चाहिये। दुखद 'विस्मयोत्पादक घटनाओं को सुनना न चाहिये। परपुरुष के रूप को न देखना चाहिये, न उसके रूप का चिन्तन करना चाहिये। गर्भिणी जिस के रूप का चिन्तन करेगी, उसी के रूप की सन्तान होगी। अत उसे अपने पति के रूप का या भगवान् के ही रूप का चिंतन करते रहना चाहिये। नदजी ने दासियों से कह रखा था—"रानी को सदा भगवान् की ही कथा सुनाती रहो। उन्हे

श्रीमन्नारायण के ही रूप का सदा चिंतन कराती रहो, उनके सम्मुख श्रीहरि के ही गुण गाती रहो।" दासियाँ तथा अन्य गोपाङ्गनायें ऐसा ही करती, सदा श्रीयशोदाजी को कथा-कीर्तन सुनाती रहती, भगवान् की रूप-माधुरी का वर्णन करती रहती।

यशोदाजी के जब गर्भ रहा, तब उनका मुख मिचलाने लगा, भोजन मे अरुचि हो गई, खट्टे और सौंधे पदार्थो पर मन चलने लगा। मिट्टी और खपड़े के टुकडे खाने की इच्छा होने लगी, शरीर भारी-सा प्रतीत होने लगा, स्तनो मे कुछ कुछ दुग्ध का सा सचार होने लगा, ओष्ठो और स्तन चचुओ मे कालिमा छा गई, रह-रहकर रोमाच होने लगे, पैर कुछ भारी हो गये, फिर शनै-शनैः शरीर अधिक भारी होने लगा, उदर की वृद्धि होने लगी, अब शरीर मे कृशता विशेष प्रतीत होने लगी। अब यशोदाजी शय्या से बहुत ही कम उठती थी। वे व्याकुल-सी, चिन्तित-सी दिखाई देने लगी, किन्तु उनके मुख का तेज बढने लगा, अब तो गर्भकुक्षि मे स्पष्ट घूमता-सा दिखाई देने लगा, बड़ी बूढी गोपियो ने लक्षण देखकर नन्दजी को सूचना दी कि गर्भ के दिन पूरे हो गये, यह निश्चय नही, कब प्रसव हो जाय।

बडो-बूढो गोपियो के मुख से यह बात सुनकर उपनन्दजी ने अपने पुरोहित महामुनि शाडिल्य को बुलाया। शाडिल्य जी अपनी भूरी-भूरी दाढी पर हाथ फेरते हुए आये। आकर उन्होंने पाँचो भाइयो के हाथो मे राखी बाँधी और आशीर्वाद दिये। फिर पूछा—"मैं तो आज राखी बाँधने को आने ही वाला था, आपने नन्दजी को बुलाने के लिये क्यो भेजा ?"

उपनदजी बोले—"हाँ, महाराज ! आप आते ही, फिर भी मुझे एक बात पूछनी थी। पाँच सुवर्णमुद्रा पत्रा के ऊपर रखकर

बोले—"नन्द की वहू के बालबच्चा होने वाला है। बूढ़ी-बूढ़ी गोपियाँ कहती है—"गर्भ के दिन पूरे हो गये।" अब यह बताइये—"कब बालक का जन्म होगा और छोरी होगी या छोरा ?"

यह सुनकर वृद्ध शांडिल्य बोले—'अजी, छोरी का क्या काम ! छोरा होगा, छोरा। फिर मेष, वृष, मिथुन, कर्क करके कई बार उँगली पर गिनकर बोले—"आज से आठवें दिन भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को तुम्हारे लाला का जन्म होगा।"

उपनन्दजी हर्ष के साथ बोले—'किस समय होगा महाराज ?'

हँसकर बूढ़े मुनि बोले—'अब सब बात पहिले से ही पूछ लोगे। हम यह नहीं बतायेंगे, किस समय होगा, किन्तु होगा अष्टमी के दिन।"

बस, फिर क्या था ! सम्पूर्ण व्रज में हल्ला मच गया नद के लल्ला होगा, सभी स्त्री-पुरुष तैयारियाँ करने लगे। उपनद जी ने सुनन्दजी से कहा—"भैया, हम पाँचो भाइयो मे एक ही तो बहन है, बच्चा होने पर बूआ का बहुत काम पड़ता है, इसलिये तुम किसी गोपकुमार को भेजकर सुनन्दा को बुलवा लो।"

यह सुनकर सुनन्दजी ने पास मे बैठे हुए एक छरहरे लड़के से कहा—'अरे, भया हरी, तू अपनी बूआ को लिवा लायेगा ?'

उसने शीघ्रता से कहा—"हाँ चाचा ! मैं चला जाऊँगा, किन्तु बड़े बैलो की जोड़ी को बहलो मे जोतकर ले जाऊँगा।"

हँसकर उपनन्दजी ने कहा—"अच्छा, अच्छा, उनको ही ले जाना किन्तु वहाँ मेहमानी ही खाते मस्त रह जाना। आज साँझ होते होते लौट आना।"

वह बोला—'अब ताऊजी ! आज तो जाऊँगा ही, कल आ जाऊँगा।"

उपनन्दजी बोले—"अच्छा जा ।"—"यह सुनकर वह गोप-कुमार घर मे गया, भोजन किया । नई अँगरखो-पगड़ी पहनी, सिर पर सिरपेज बाँधा और कधे पर दुपट्टा डाल, सज-धजकर हाथ में पेना लेकर चौपाल पर आया । कई गोपों ने रथघर से बहली निकाली, उसकी धूल झाडी । बड़े-बडे नागौरे बैल उसमें जोते । सीगों मे रग-विरंगी पगड़ी बांधी, गले में मोर पख के गंडे बाँधे। बहली में घंटे घटी बाँधकर उसने बैलों को दौड़ाया। बैल वायु मे उडने-से लगे । सुनन्दाजी की ससुराल पास में ही चार-पाँच कोस पर थी । बहली की खनखनाहट और घटे की ध्वनि सुनकर सब गाँववाले चौक पड़े । 'कहाँ की बहली आई ! बैलों को देखकर ही सब समझ गये, यह तो गोकुल की जोड़ी है। सब ने अनुमान लगा लिया कि नन्दजी के बाल-बच्चा होने वाला है, यशोधरजी की बहू को लेने कोई आया होगा । बहली को देखकर लड़की-लडके दौड़े-दौड़े सुनन्दाजी के पास गये—"चाची, चाची ! गोकुल से बहली आई है, तुझे लेने ।"

यह सुनकर सुनन्दाजी का हृदय तो बाँसो उछलने लगा। इतने में ही गोपकुमार ने आकर सुनन्दाजी के पैर छुए । सुनन्दा ने लडके को छाती से चिपटा लिया । उसके सिरपर हाथ फेरा और कहा—"कहो, भैया ! घर मे सब राजी-खुशी है ?"

लड़के ने कहा—"हाँ, बूआ ! सब अच्छी तरह हैं, चाची के बालबच्चा होने वाला है । उन्होने तुझे बुलाया है । ताऊजी तो कहते थे आज ही लौट आना ।"

सुनन्दाजी ने प्यार से कहा—"अरे भैया ! आज कैसे लौट सकते हो ? इतने दिनो पर तो घर जाऊंगी । कुछ भाजी बाहन भी तो बनाना है ? हम कल चलेंगी। अच्छा, जा, हाथ-पैर धो ले, भूखा होगा । तब तक मैं भोजन बनाती हूँ ।"

यह कह कर सुनन्दाजी उठ पड़ीं। शीघ्रता के साथ दूध में चावल डाल दिये। कढ़ाई माँजकर उसे चूल्हे पर चढ़ाया, छुन्न-छुन्न करके घी पिघलने लगा। पूड़ियाँ विलने लगीं। और भी दस-बीस गोपियाँ इकट्ठी हो गईं। चढ़ी कढ़ाई पर भाजी-बाहिने के लिये मठरी सकल पारे भी बनने लगे। हरिहर को भोजन करा दिया। सुनन्दा बूआ रात भर घर जाने की तैयारियाँ करती रहीं। कभी उस लँहगा को बाँधती, कभी उस ओढ़नी को रखतीं।

प्रातःकाल सबसे मिल भेंट कर लम्बा-सा घूँघट मारकर वे बहली पर चढ़ गयीं। घड़ी भर दिन भी न चढ़ा होगा कि बहली नन्द जी के द्वार पर पहुँच गई। व्रज में सब प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अब तो सुनन्दा जी अपने पीहर में आ गयीं। यहाँ घूँघट की कौन कहे सिर भी आधा खुल रहा था। भाइयों ने अपनी छोटी बहिन को प्यार किया। सभी गोपियाँ हृदय से हृदय सटा कर मिलीं। भीतर जाकर सुनन्दा अपनी सभी भाभियों से मिलीं और ताना देते-देते बोलीं—"अब तो हमें सबने भुला ही दिया। कभी बुलाती भी नहीं।"

नन्दरानी ने तालियों की गुच्छा सुनन्दा देवी को देते हुए कहा—"बीबी! अब तुम इसे सम्हालो।"

बिना कुछ आपत्ति किये सुनन्दा जी ने तालियों का गुच्छा अपने नाले में बाँध लिया और आते ही घर की सभी सार सम्हार करने लगीं। कौन वस्तु कहाँ रखी है, क्या चाहिये, कौन-सी वस्तु मँगानी है, सब सुनन्दा देवी को पता था। इस प्रकार सब तैयारियाँ करते करते भाद्रपद कृष्णाष्टमी का दिन आ गया।

व्रज भर की बूढ़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ अपने सफेद बालों को सफेद

ओढ़नी से ढाँककर, पोपले मुँह को घार-चार चलाती हुई आ गई। सब को निश्चय था, कि आज नन्दरानी के बालक होगा। जितनी स्त्रियाँ थी, सब सुहागिनी थीं। बूढ़ी भी थीं, अधेड़ भी थीं, युवती भी थीं, और कुछ कुमारी भी थीं। जिस घर मे प्रसव होना था, उस प्रसूतिघर को भली-भाँति सजाया गया। अपने कुलकी बूढ़ी धाय कई दिनों से वहीं रहती थी। उसका आज कल बहुत आदर था, उसे पान खाने का व्यसन था, पलङ्ग पर बैठी-बैठी पान चबाती रहती और वहीं से आज्ञा देती रहती—"यह लाओ, वह लाओ, इस वस्तु को भी जुटाकर रख लो। संभव है इसका भी काम पड़ जाय।" सूतिका घर को लीप पोत कर स्वच्छ किया गया। चारों ओर उसमें धूप जलाई गई, भूत बाधा हटाने के लिये सरसों बिखेरी गई और विशेष वस्तुओं की धूनियाँ दी गयीं।

बूढ़ी दाई बता रही थी—"बेल की तेंदुए की, गोंदनी भिलावा तथा खैर की सूखी-सूखी लकड़ियाँ लाओ। प्रसूत के समय इन सब लकड़ियों का व्यवहार शुभ होता है। शुद्ध सदाचारी अथर्ववेद के जानने वाले ब्राह्मण भी रहें, न जाने किस समय कौन-सी बात पूछनी हो। सामने की चौपाल में उनके ठहरने का प्रबन्ध करा दो। आज किवाड़ बन्द करने की आवश्यकता नहीं। रात्रि में जाने किस समय बच्चा हो जाय! सूतिका घर को फिर देख लो। वहाँ तनिक भी मैला-कुचैला न रहने पावे, सुगन्धित धूप जलती रहे। यमुना जल के घड़े भरकर रखवा दो। जल की बहुत आवश्यकता पड़ती है। पास के घर में पुराने कपड़े रखवा दो। वे सब धुले और अच्छे हों। अङ्गीठियाँ दो रहें। कोयलों की बोरी अच्छी तरह रखवाओ। कोयले बहुत बड़े भी न हों, छोटे भी न हों। भङ्गिनि दो बनी रहें,

शौचालय में गन्दगी न होने पावे। और फिर तुम सब तो जानती ही हो। सब ही अनेकों बार बच्चे जन चुकी हो।

एक छरहरी-सी गोपी बोली—"दादी, तैंने ये सब बातें कंठस्थ कर ली होंगी।"

अपना ज्ञान जताती हुई दाई बोली—"अरी, बेटी! रात दिन यही काम करना होता है। बच्चे पैदा कराते-कराते ही मेरे बाल सफेद हो गये हैं। देखो, इतनी चीजें सम्भाल कर रखना। दो सिल, दो ऊखल-मूसल, बाहर बाबा से कहो एक साँड़ भी बाँध दें। धोबी के यहाँ से एक गधा भी मँगा लें।"

एक बूढी सी गोपी बोली—"अरी, रहने भी दे। गधे-फदे का क्या काम। तू तो बहुत बढ़ाती है। गधे के चार बाल उखड़वाकर मँगवा लो।"

बूढ़ी दाई ने पान मुँह मे ठूसते हुए कहा—"वीर! जो नेग-जोग सकुन होता है, उसे मैं बताती हूँ, करो चाहे मत करो, और सुनो—सुई, धागा, छुरी, चाकू, सोना, चाँदी, अन्न—ये सब चीजें रख लो। गेरु घिसकर लगाया जाता है, गेरु मँगा लो। सातिये रखने को अच्छा सा गोबर मँगा लो। नई कोरी सींग सातिये में लगाने को रख लो। कोरा कपड़ा, हलदी और आटा, एक काली हड्डी मँगा लो। बच्चा पैदा होने पर जात कर्मसंस्कार होता है, उसकी सामग्री मँगा लो।"

सुनन्दा ने कहा—"दादी! उसमें क्या-क्या होता है, उसे भी बता दो।"

बुढ़िया बोली—"अरी, लाली! वह तो मेरा काम है नहीं। पंडितजी का काम है। यही धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पुङ्गीफल, सुदक्षिणा, समर्पयामि ऐसा पंडित करते हैं। पुजारीजी को चुन्नी पंसारी के यहाँ भेज दो, वह अपने आप बाँधकर पुड़िया दे देगा।

हाँ, एक बात तो मैं भूल ही गई। दो ओषधियाँ अभी और मँगानी हैं।"

सुनन्दा बोली—"तुमने तब से तो कहा नहीं, बैठी-बैठी पान चबा रही हो। ओषधियों का क्या होगा ?"

बुढ़िया बोली—"देख बेटी! कूट, इलायची, लांगुली, कन्द, वच, चित्रक (चीते की छाल) और करंज—इन सबका चूर्ण बनाकर बार-बार सुँघाने से बच्चा तुरन्त हो जाता है और जनने वाली को पीड़ा भी नहीं होती। और दूसरी ओषधि धूनी देने की है। शीशम की गोंद और भोजपत्र की गोंद इन दोनों को लेकर बार-बार कुछ-कुछ देर में धूनी देने से भी बच्चा शीघ्र होता है। अन्डी तेल की बोतल रखी है कि नहीं, उसकी मुझे तुरन्त आवश्यकता होगी। जब प्रसव की पीड़ा होती है, तो मैं दोनों पसवाड़े पीठ और नितम्बों में ऐसे हलके हाथों से मालिश करती हूँ कि बच्चा तुरन्त हो जाय। कुछ ओषधियाँ और हैं जो यहाँ तैयार रखी रहें, जैसी स्थिति होगी, जब आवश्यकता होगी, मैं माँग लूँगी। घी, तेल, शहद, गेहूँ आदि तो घर में हैं ही। इतनी ओषधियाँ और मँगा लो। सेंधानमक, संचरनमक, कालानमक, वायविडंग, गुड, कुण्ठ (कुडा) देवदार, सोंठ पीपलामूल, गजपीपल, मण्डूकर्णी, इलायची, लांगुली कन्द, वच, चीता, चव्य, लताकरंज, हींग, सरसों, लहसन, कनकवृत्त, दम्न, अलसी, पेठा, भोजपत्र, कुलथी और कुछ आसव भी मँगाकर रख लो।"

इस पर एक अधेड़-सी गोपी बोली—"धाय दादी तू क्यों बादर फारि रही है। किसी के बच्चा नहीं हुए या हमने कभी प्रसव नहीं किया, दश-दश बार हमारे तो बच्चा हो चुके हैं। हमने तो ये चीजें आँखिन से भी नहीं देखी हैं। नन्दरानी के

अनोखा ही बच्चा पैदा होगा। तैने तो पूरी चरक संहिता ही याद कर ली है। हमारे यहाँ तो गोपियाँ खेतो मे काम करती रहती हैं, वहां बच्चा हो जाता है। वह नन्दा की बहू रामलीला देखने मथुरा गई। मेले मे ही उसके बच्चा हो गया। कुछ बात नहीं, उठाके ले आई। मेरा ही बडा छोटा बनवारी जङ्गल मे हुआ। मैं खेत पर रोटी देने गई, वहीं हो गया। मेरे तो कोई पास भी नहीं था। पीछे जब वे आये, तो उन्होने पास मे काम करती हुई चमारिनियों को बुलाया।"

यह सुनकर बूढी दाई पान की पीक को पात्र मे थूककर मुंह पोछकर बोली—"अरी, छोरी! तू क्यो बढ-बढ के बात बनाती है। तू मेरे सामने ही तो पैदा हुई है।"

जल्दी से उस गोपी ने कहा—"दादी, सामने पैदा होने से क्या बात हो गई? तू भी तो किसी के सामने ही पैदा हुई होगी। तेरे सब बाल सफेद हो गये हैं। मेरे आधे सफेद हो गये हैं, मेरी बात का उत्तर दे।"

यह सुनकर दाई बोली—"बेटी! सब की एक सी बात नहीं होती। ये नन्दरानी अत्यन्त सुकुमारी हैं, इन्होंने आज तक कभी प्रसव किया नहीं। प्रथम प्रसव में बडा कष्ट होता है। दो चार बार होने के अनन्तर उतना नहीं होता। फिर अन्य गोपियों मे और यशोदा जी मे कुछ अन्तर भी तो होना चाहिये—ये रानी है। मैं तो सब घरों मे जाती हूँ, किसी के बच्चा होने मे कष्ट होता है, तो मैं उससे धान कुटवाती हूँ। हाथ-पैर हिलवाती हूँ, इधर-उधर घुमाती हूँ, बार-बार जम्हाई लिवाती हूँ, इससे बच्चा तुरन्त हो जाता है, किन्तु ऐसी सुकुमारी से ऐसा परिश्रम कराऊँ, तो वायु कुपित होकर बच्चे के तथा बच्चा जनने वाली के प्राणों तक को ले सकता है। सभी धान बाईस

पँसेरी नहीं बिकते, सभी पशु एक डन्डे से नहीं हाँके जाते। इसी सम्बन्ध की मुझे एक कहानी याद आ गई, कहो तो सुना दूँ।"

सबने कहा—"हाँ, हाँ दादी! सुनाओ कहानी। बुढ़िया पान को उगलती हुई बोली—"एक राजा थे राजा। उनकी रानी बड़ी सुन्दरी, बड़ी सुकुमारी और बड़ी ही बुद्धिमती थी। ये राजा छोटे थे, वह बहुत बड़े राजा की लड़की थी। राजा को बाग बगीचा लगाना बहुत ही प्रिय था। राजा ने एक बहुत बड़ा बाग लगा रखा था। उसमें देश देशान्तरों से भाँति-भाँति के फल फूलों के पौधे मँगवाकर लगा रखे थे। सेकड़ों माली उसमें काम करते थे। राजा नित्य सबको देखा करते। जो पौधे बहुत सुकुमार थे, उन्हें छाया में गमलों में रखते, बड़ी सावधानी से पानी दिलाते। राजा को पेड़ों से अत्यन्त ही प्रेम था। रानी भी उसके साथ घूमने-फिरने बाग में आती थी। छोटे-छोटे पौधों को, लताओं के कुञ्जों को, बेलवाले वृक्षों को देखकर राजा-रानी बहुत प्रसन्न होते।"

कुछ काल में रानी गर्भवती हुई। गरमी के दिन थे। बहुत सी बूढ़ी-बूढ़ी धायें इकट्ठी हुईं। प्रसव की सामग्रियाँ मँगाई जाने लगीं। रानी, राजा को महलों में ही अटकाये रहती—"अब के उसे बुलाओ, यह वस्तु मँगाओ। राजा कभी-कभी बाग में भी न जाने पाते, इससे वे ऊब गये। एक दिन झुंझलाकर बोले—"रानी! तुम्हारे बच्चा हुआ या ववडर हुआ। यह ला, वह ला, तुमने खोपड़ी खा ली। हम तो स्त्रियों को नित्य बच्चे जनते देखते हैं। हमारे यहाँ की नौकरानियों के कपास बीनते-बीनते खेत में बच्चे हो जाते हैं। तुमने तो दो महीने से आकाश पाताल एक कर रखा है। यह लाओ, वह लाओ, इसे

बुलाओ, उसे बुलाओ। बच्चा होगा, हो जायगा, उसकी इतनी चिन्ता क्यों?"

रानी बुद्धिमती थीं, अतः उसने हँसकर बात टाल दी कि तुम मूँछों वाले प्रसव की पीड़ा क्या जानो। स्त्री होते तब जानते। बात हँसी मे टल गई। एक दिन रानी अकेली बगीचे में गई। वहाँ सैकड़ों माली काम करते थे। गरमी के दिन थे, गमलों में पौधो मे सायं-प्रातः दोनों समय जल दिया जाता था। रानी ने मालियों के चौधरी को बुलाकर कहा—"देखो, मेरी आज्ञा है, आज से तीन दिन तक एक भी पेड़ में पानी मत देना। और न महाराज से कहना। यदि तुमने मेरी आज्ञा भङ्ग की, तो तुम्हें तुरन्त निकलवा दूँगी।"

हाथ जोड़कर चौधरी ने कहा—"महारानी जी! हम कभी आपकी आज्ञा का उलङ्घन कर सकते हैं? आपका नमक खाते हैं, हमे जो आज्ञा होगी वही करेंगे।"

इतना कहकर रानी चली गई। तीन दिन तक राजा को काम मे इस प्रकार फँसाये रखा, कि वे बगीचा आ ही न सके। चौथे दिन रानी ने कहा—"प्राणनाथ! आप बगीचा नहीं चलते, बगीचा गये कई दिन हो गये।"

राजा ने भुंभलाकर कहा—"बगीचा कैसे जाऊँ, तुम्हारे लाला जो होने वाला है, उसी की सार सम्हार से अवकाश नहीं मिलता।"

रानी ने हँसकर कहा—"अच्छा, चलो चलें मैं भी आज चलती हूँ।"

यह कहकर रानी भी राजा के साथ रथ मे बैठ कर गयीं। तीसरा पहर था, अभी तक धूप अत्यन्त कष्टदायी थी। राजा ने बगीचे मे जाकर जो देखा, वे देखते ही भौचक्के-से हो गये। पेड़

सब कुम्हलाये हुये थे। बहुत से गमलों के सुकुमार पौधे सूख गये थे। बहुतों के पत्ते झर गये थे।"

राजा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। तुरन्त उन्होंने चौधरी को बुलाया और लाल लाल आँखें करके बड़े क्रोध के स्वर मे बोले—"मेरे इतने सुन्दर बाग को तुमने चार दिन में ही चौपट कर दिया, मैं तुम्हे बहुत अधिक दण्ड दूँगा। तुमने चार दिन से इनमे पानी क्यों नहीं दिया ?"

हाथ जोड़कर थर-थर काँपते हुए चौधरी ने कहा—"प्रभो! आप हमारे माई बाप हैं, अन्नदाता हैं। हम क्या करें, हमारे तो आप दोनों ही माता-पिता के तुल्य हैं, किसकी आज्ञा मानें, किसकी न मानें ?"

राजा ने क्रोध में भरकर पूछा—"इसका क्या अर्थ ? हम पूछते हैं कुछ उत्तर देते हो कुछ ?"

चौधरी ने कहा—"महाराज ! हमें जैसी आज्ञा मिली, उसका पालन किया ?"

राजा ने गरज कर पूछा—"पेड़ों में पानी मत दो, यह तुम्हें आज्ञा किसने दी ?"

चौधरी काँपने लगा और महारानी के मुख की ओर देखने लगा। तब रानी ने कहा—"आज्ञा मैंने दी ?"

अब तो राजा कुछ सटपटाये, किन्तु फिर उसी स्वर में बोले—"तुमने ऐसी आज्ञा क्यों दी ?"

रानी झूठा रोष दिखाती हुई बोली—"यह आज्ञा इसलिये दी, कि आप व्यर्थ में इतना धन अपव्यय कर रहे हैं। नित्य इनमें दो बार जल देने की क्या आवश्यकता है ? जङ्गल में [illegible] छोंकर, करील, हींस आदि के पेड़ खड़े रहते [illegible]ौन देता है, ये सब तो हरे भरे बने रहते हैं।

ये तो सूखते ही नहीं! आपके पेड तीन दिन में ही सूख गये।"

यह सुनकर राजा हँस पडे और बोले—"अच्छा, यह उस बात का उत्तर है, कि नौकरानियाँ खेत में ही बच्चे जन लेती हैं—तुम इतना खटराग क्यों करती हो ?"

रानी ने प्यार से कहा—"हाँ, प्राणनाथ! उसी बात का यह उत्तर है। देखिये, सबके साथ एक-सा बर्ताव नहीं हो सकता। जिनको रात-दिन मस्तिष्क का काम करना पडता है उनके, और जो रात-दिन खेत में परिश्रम का काम करते हैं उन के भोजन में अन्तर होता है। दोनों के लिये एक-सा भोजन अनुकूल नहीं पड़ता। सब की प्रकृति, सबके स्वभाव, सब के कोठे भिन्न-भिन्न होते है।"

बूढी धाय कह रही हैं—"सो, बेटियो! मैं मानती हूँ, बहुत-सी स्त्रियाँ बिना उपचार के ही अपने आप प्रसव कर लेती हैं, किन्तु उनमें और नन्दरानी में अन्तर है।"

यह सुनकर कई बूढी-बूढी डोकरियाँ बोलीं—"हाँ, अन्तर क्यों नहीं है, वे रानी ठहरीं। यह सब को अपना ही-सा समझती हैं।"

इतने में ही सुनन्दा आ गई और कुछ अधिकार के स्वर मे बोलीं—"इस बूढी धाय पर तो दो ही काम आते हैं। दिन भर इधर-उधर की कथा कहानी कहला लो या, एक टोकरी भर के बकरियों की तरह पान चबवा-लो। काम तो कुछ करके देगी नहीं। वहाँ भाभी कराह रही हैं, यह यहाँ गप्प मार रही है।"

यह सुनकर शीघ्रता के साथ पलङ्ग पर से उठती हुई धाय बोली—"अजी, बीबी जी! मैं क्या करूँ ये छोरियाँ मानती ही नहीं। चलो चलें।" यह कहकर धाय यशोदा मैया के समीप

गई। वे एक अत्यन्त गुदगुदे गद्दे पर तकिये के सहारे सुखपूर्वक लेटी हुई थीं। धाय ने जाकर उनके पेट को देखा। धीरे-धीरे अत्यन्त कोमल भाव से उसे दवाया और फिर बोली—"रानी, कैसा चित्त है ?"

सरलता के साथ नन्दरानी ने कहा—"अच्छा ही है।"

धाय बोली—"रानी ! बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

यशोदा जी बोलीं—बुरा मानने की क्या बात है, कहो क्या कहती हो ?"

धाय ने कहा—"पेट टटोलने से तो ऐसा लगता है मानों पेट में दो बालक हैं।"

यशोदा ने प्रेम के रोप में कहा—"इस बुढ़िया को एक न

एक विचित्र ही बात सूझती रहती है। एक हो जाय यही बहुत है। कहती है दो-दो बालक है।"

धाय बोली—"हँसी की बात नहीं। अच्छा, यह बताओ, तुम ने कभी जुड़ैला केला तो नहीं खाया ?"

यशोदा मैया बोलीं—"जुड़ैला केला क्या होता है ?"

धाय ने कहा—"केले की जो फली होती है न। कोई-कोई दो फली एक साथ जुड़ी रहती है। उसे ही जुड़ैला केला कहते हैं।"

नन्दरानी ने कहा—"मेरी तो केला खाने मे रुचि ही नहीं होती। हाँ बालकपन मे हमारे कूँए के पास बहुत केले थे। एक पेड़ पर ही गहर पक गई थी। मैंने बाल सुलभ चञ्चलता वश उसमे से दो जुड़ी हुई फली अवश्य खा ली थी।"

धाय की प्रसन्नता से आँखें चमकने लगी—अपनी सर्वज्ञता पर गर्व करती हुई बोली—"देखो मैंने कैसी बात बता दी! जुड़ैले केले कन्याओं को कभी न खाने चाहिये। नहीं तो उनके जुड़ैले लड़के होते हैं।"

यह सुनकर सुनन्दा ने खीज कर कहा—"भाभी! इस बुढ़िया का तो माथा फिर गया है, तुम इसकी बात पर ध्यान मत देना। यह अब सठिया गई हैं।" फिर धाय से बोली—"तू अपनी पंडिताई छाँटना छोड़ दे। यह देख बच्चा होने मे कितनी देर है ?"

धाय फिर हाथ मे तेल लगाकर मालिश-सी करने लगी और पूछने लगी—"रानीजी! अंगों मे ग्लानि सी तो नहीं होती। मुख और नेत्रों में शिथिलता का अनुभव तो तुम नहीं कर रही हो ? ऐसा प्रतीत तो नही होता कि वक्षस्थल के बन्धन खुल-से रहे हैं। कोख नीचे की ओर तो नहीं जा रही हैं ? नाभि के नीचे के भाग मे भारीपन तो नहीं प्रतीत होता। वस्ति,

कमर, पसवाड़े तथा पीठ में चमक-सी तो नहीं हो रही है। मुँह बहुत मिचला तो नहीं है। कुछ हड़बड़ाहट सी तो नहीं प्रतीत होती है।"

यशोदा जी ने कहा—"सो, तो कुछ नहीं, मुझे न घबराहट है, न पीड़ा ही प्रतीत होती है। मुख भी नहीं मिचलता। हाँ, कुछ आखों में नींद-सी आने लगी है। चित्त चाहता है सो जाऊँ।"

यह सुनकर बूढ़ी दाई अपने पोपले मुख को फाड़कर हँसने लगी। पास में बैठी स्त्रियों ने पूछा—"दादी ? हँस कैसे पड़ी ?"

धाय बोली—मुझे एक कहानी याद आ गई।"

एक गोपी ने पूछा—"कौन-सी कहानी दादी ! उसे भी सुना दो।

धाय बोली —"एक नई बहू थी। सीधी-सादी भोली-भाली। उसने पहले कभी बच्चा जनते किसी को देखा नहीं था। पहले ही पहले उसके गर्भ के दिन जब पूरे हो गये, तब एक दिन उसने अपनी सास से कहा—"सास जी ! देखो, ऐसा न हो कि कभी मेरे रात में बच्चा हो जाय और मैं सोती की सोती ही रह जाऊँ। मेरे जब बच्चा हो तो मुझे जगा देना।"

हँसकर सास ने कहा—"बेटी ! मैं क्या जगा दूँगी, तुम्हीं घर भर तथा मुहल्ले भर को जगा देगी। सो देखो, यशोदा जी के प्रसव के सब लक्षण प्रकट हो गये हैं। बूढ़े शांडिल्य ने तिथि भी बता दी है, सौ वर्ष मे तो मैं देख रही हूँ, शांडिल्य जी की बात कभी झूठी नहीं होती ! अब आधी रात होने वाली है, रानी कहती हैं—मुझे नींद आ रही है।"

कह सुनकर सुनन्दा ने फिर धाय को डाँटा—"इस बूढ़ी को सदा हँसी ही सूझती रहती है। सब बाल सफेद हो गये, मुँह में

एक भी दाँत नहीं, बात ऐसी रसीली करेगी मानों अब ही गौने की दुलहिन आई हो।"

बुढ़िया ने डाँट कर कहा—"लल्ली! तुम समझती नहीं हो, जिसके बच्चा होने वाला हो, उसे ऐसी हँसी विनोद की बातें सुनाते रहना चाहिये, जिससे उसका मन प्रसव की पीड़ा की ओर न जाय। इधर-उधर बातें कह कर मनको बहलाते रहना चाहिये। जाओ, अपने भैया से कह आओ कि अभी बच्चा नहीं हुआ।"

सुनन्दा इतना सुनते ही छम्म-छम्म करके बाहर गई। उसके हर्ष का ठिकाना नहीं, उसकी चोटी ऐंड़ी तक लटक रही थी। सिर खुला था, आज वह इधर से उधर घूम रही थी, कभी बाहर जाती, तो कभी भीतर आती। कभी किसी वस्तु को उठाती, कभी किसी को रखती। उसे एक स्थान मे चैन नहीं पड़ता था। उसने बाहर चौपाल मे जाकर कहा—"भैया जागते रहना, अभी बच्चा नहीं हुआ है।"

नदजी ने कहा—"हम जाग रहे हैं, तू जा; वहीं बैठ। जब कुछ हो, तो हमे सूचना देना।" इतना सुनकर सुनन्दा भीतर चली गई। युवती गोपियाँ ढोलक बजाकर गीत गाने लगीं बुढ़िया पैर फैलाकर उनकी आ में आ मिलाने लगी। धाय इधर-उधर की वस्तुओं को देख-देखकर रखने लगी।

इस प्रकार आधी रात हो गई भगवान् की योगमाया के प्रभाव से गोप-गोपी सभी को नींद आ गई। जो जहाँ बैठे थे, वहीं सो गये। गोप भी मंचों और खाटों पर सो गये। धाय भी सो गई। और की तो बात ही क्या, यशोदा मैया भी गहरी नींद मे सो गईं।"

उसी सुप्तावस्था मे उन्होंने प्रसव किया। उन्हें, यह भी

पता नहीं चला कि छोरी हुई या छोरा, एक हुए या दो। कुछ-कुछ ऐसा प्रतीत तो हुआ कि मेरे कुछ हुआ है, किन्तु योगमाया के प्रभाव से प्रसव करके भी वे सो गईं। जो बालक पैदा हुआ, वह रोया भी नहीं। बालक क्या था योगमाया ही बालिका बन गई थी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नट नागर की लीला अद्भुत है। देखिये, कैसी विचित्र बात हुई। प्रसव से पहले स्त्रियों को कितना कष्ट होता है, चिल्लाती हैं, तड़फड़ती हैं। मूर्च्छित हो जाती हैं, किन्तु यशोदाजी ने सोते-सोते ही बच्चा जन दिया और जनकर भी सो गईं।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! फिर क्या हुआ? पूरी कथा सुनाइये, गोप गोपी फिर कब जगे?"

सूतजी बोले—"सुनिये, महाराज! मैं सम्पूर्ण कथा सुनाऊँगा, आप एकाग्रचित्त होकर इस पुण्यमयी कथा को श्रवण करें।"

छप्पय

पलपल महँ सब करें प्रतीक्षा नन्दलाल की।
नन्दरानी के होहि न पीडा प्रसवकाल की॥
लीला अपनी तहाँ योगमाया फैलाई।
सोये सबई योगनींद महँ लोग-लुगाई॥
परी पलग पै यशोदा, तनिक श्रांति-सी झपि गई।
भयो कछु परि सुधि नहीं, छोरा या छोरी भई।

है। इस मनुष्य-नामक जन्तु की बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है। यह भी भगवान् की ही माया है। जिसे भी देखो वही अपने को संसार भर की बुद्धिमत्ता का ठेकेदार समझता है। हम अंधविश्वासी नहीं हैं, जो मूर्खों की तरह "बाबा वाक्यं प्रमाण" मान लें। हममें बुद्धि है। हम अपनी बुद्धि से बड़े-बड़े आविष्कार कर सकते हैं। क्या आविष्कार कर सकते हो जी तुम? घी है, चीनी है, मैदा, सूजी, बेसन, खोया ये वस्तुयें हैं। अब आप कहते हैं, हमने एक नई मिठाई का आविष्कार किया—'सोहन हलुवा, मोहनथाल, चमचम, लवंगलता, कृष्णमोदक आदि नई मिठाइयाँ बनाईं।' क्या उसमें नवीनता की, इन चीजों को मिलाकर कोई गोल बना दी, कोई लम्बी, कोई छोटी, कोई मोटी। तुम्हारा आविष्कार तो तब जानते, जब इन वस्तुओं के बिना मिठाई बना देते। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पचभूत हैं, ईश्वर निर्मित हैं। इनके बिना तुम कोई आविष्कार करो, तो तुम्हारी बड़ाई है! भिन्न वस्तुओं की योजना करके एक वस्तु बनाना यह भी बुद्धिमानी है, किन्तु भैया, मेरी यह लौकिकी बुद्धि है। परमार्थ मे इसका कुछ भी उपयोग नहीं। इनसे विषय-भोगों की वृद्धि होती है। ये सब भुक्ति के लिये हैं, मुक्ति के लिये नहीं। ये मस्तिष्क की वस्तुएँ हैं, हृदय की नहीं। हृदय की वस्तु है भगवत्लीला। विषयो से श्रेष्ठ इन्द्रियाँ हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पाँचो विषय बने रहे, फिर भी जब तक इनको भोगने वाली इन्द्रयाँ न हों, तब तक ये व्यर्थ हैं। इन्द्रियों से भी श्रेष्ठ मन है। इन्द्रियाँ स्वयं भोगने में समर्थ नहीं, जब तक कि उनके साथ मन का सहयोग न हो। अतः इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन हुआ। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है। बुद्धि के बिना मन कुछ कर नहीं सकता! मन कितना भी छटपटाता रहे,

बुद्धि जब तक न कहेगी, तब तक वह कुछ भी न कर सकेगा, छटपटाता ही रहेगा। भगवान् तो बुद्धि से भी परे है। भगवान् मे और उनकी लीलाओं मे कोई अन्तर नहीं। नाम, रूप, लीला और धाम—ये सब भगवान् के ही स्वरूप है, एक ही हैं। अतः भगवान् साधारण बुद्धि से नहीं समझे जाते। उन्हें समझने के लिये एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म और ही विलक्षण बुद्धि होती है। अचिन्त्य भावों को मानवीय कसौटी पर कसना ऐसे ही है, जैसे सुवर्ण को ककण पर कसना। भगवत् लीलाओं को तर्क से नहीं, श्रद्धा-भक्ति और विश्वास के साथ श्रवण करना चाहिये; तभी रस आवेगा। माता के स्तनों को बालक बनकर पीने से ही दूध मिलेगा। दाढी-मूँछ लगाकर, बड़प्पन का अभिमान बढाकर, उन्हें पियो, तो कुछ न मिलेगा। यदि कुछ मिल भी गया, तो कै हो जायगी। अतः कृष्णचरित्रों को सरल हृदय से, विश्वास-भरित अन्तःकरण से, श्रद्धा-सहित श्रवण करना ही परम धर्म है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यशोदाजी के गर्भ से योगमाया ने छोरी बनकर जन्म लिया। साथ ही द्विभुज श्रीकृष्ण भी उनके उदर से उत्पन्न हुए।"

चौंककर शौनकजी ने कहा—"अजी सूतजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ! हमने तो अब तक यही सुना है, कि यशोदाजी के गर्भ से एक लड़की हुई, देवकीजी के गर्भ से भगवान् विष्णु श्रीकृष्णरूप में प्रकट हुए। वसुदेवजी श्रीकृष्ण को चुपके से यशोदाजी के पलग पर रख आये, वहाँ से लड़की को उठा लाये। अब आप कहते हैं, यशोदाजी के गर्भ से भी श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। क्या श्रीकृष्ण दो थे ?"

हँसकर सूतजी बोले—"दो नहीं महाराज ! श्रीकृष्ण तीन

थे। तीन कहना भी अनुचित है, वे तो अनंत थे। किन्तु, लीला की सगति लगाने के लिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने तीन ही श्रीकृष्ण की कल्पना की है। श्रीकृष्ण बडे भोले-भाले हैं। वे इतने भोले-भाले न होते, तो ये स्वार्थी लोग उन्हे कभी न पूजते। वे इतने भोले हैं कि उन्हे तीन बनाओ, तीन बन जाते है, एक बनाओ एक बन जाते हैं। देवकी का पुत्र बनाओ, देवकी-नन्दन बन जाते है। अर्जुन ने कहा—' मैं तो तुम्हे साला बनाऊँगा।" भगवान् ने कहा—"मेरी बहन को लेकर भाग जा, मेरा जीजा हो जायगा।" अपना रथ भी दे दिया, अपना सारथी भी दे दिया। बताइये, इतनी कृपालुता, इतनी दयालुता आप अन्यत्र कहाँ पायेंगे। पूतना ने कहा—' मैं तो उन्हे बेटा बनाऊंगी।" भगवान् बोले—"ला, माँ, तेरी कपालक्रिया भी लगे हाथ कर दूँ। स्तन पीते-पीते ही उसे मातृगति दे दी। ऐसे भोले-भाले कृष्ण को चाहे जो बना लो, वे तुम्हे मना नही करते। और तीन कृष्ण बनाये बिना तो लीला की सगति भी नही बैठती।"

यह सुनकर शौनकजी हँस पड़े और बोले—"हाँ, तो सूतजी! तीन कृष्ण कौन-कौन-से हैं ?"

सूतजी बोले—'सुनिये महाराज! एक तो मथुरेश कृष्ण हैं, एक द्वारकेश कृष्ण और व्रजेश कृष्ण। तीनो के ही अवतार के पृथक्-पृथक् प्रयोजन हैं। तीनो ने पृथक्-पृथक् अवतार लेकर भी एक ही शरीर का आश्रय लिया। श्रीरामावतार मे वालि को भगवान् ने मार दिया था। इस पर इन्द्र दुखित हुए। भगवान् ने उन्हे वर दिया—अब के हम तुम्हारे सुत से सूर्य सुत को मरवा दगे। वे ही वालि और सुग्रीव, कर्ण और अर्जुन हुए। यह अर्जुन नर-नारायण—दोनो ऋषियो मे से नर का

अवतार है। नारायण ने भी इन्द्र को वर दिया था—'मैं अवतार लेकर तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूंगा और उसका सारथी बनूंगा। अतः महाभारत कराने के लिये, ज्ञान का उपदेश करने के लिये, नारायण ऋषि अवतार लेना चाहते थे। उसी समय भूमि पर बड़े बड़े बलवान दैत्य उत्पन्न हो गये थे। भूमि ने देवताओं के साथ भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने वर दिया, "हम मथुरा मे देवकी के यहाँ उत्पन्न होकर असुरों का संहार करेंगे, भू-का भार उतारेंगे।" देवताओ ने भूमा पुरुष से भी प्रार्थना की थी। उन्होने अपने कृष्ण और श्वेत दो बाल उखाडकर कह दिया—"दैत्यो के वध के लिये तो मेरे इन दो बालों का ही अवतार यथेष्ट है। अतः वे ही दो बाल बलराम-श्रीकृष्ण रूप में उत्पन्न हुए। और परात्पर प्रभु स्वयं भगवान् अखिल कोटि ब्रह्माण्ड-नायक गोलोक की लीला को मर्त्यलोक मे प्रकट करने के लिये उत्पन्न हुए। इस ब्रह्माण्ड के पालक विष्णु ने मथुरा मे भगवती देवकी देवी के यहाँ चतुर्भुजरूप मे अवतार धारण किया। ये मथुरेश विष्णु हैं। इनका काम है असुरो का संहार करना, भू का भार उतारना। उसी समय नारायण ऋषि के भी अवतार का समय था। उन्होने सोचा—"अब हम पृथक् माता कहाँ खोजते फिरें। लाओ, विष्णु भगवान् ने अवतार धारण किया है, इनके ही शरीर मे प्रवेश कर जायं। अतः वे भी उसी शरीर में प्रवेश कर गये। इनका काम है—अर्जुन का सारथ्य करना और गीता आदि का उपदेश करना। इनका कार्य मथुरा से जाकर द्वारका में आरम्भ होता है। अतः ये द्वारकेश कृष्ण हैं। तीसरे परात्पर प्रभु द्विभुज ही होकर गोकुल मे यशोदा देवी के उदर से उत्पन्न हुए। वे व्रजेश नन्द-नन्दन कृष्ण हैं। पहले ये हुए, इनके साथ भगवान् की योगमाया पुत्री

रूप से हुई अर्थात् यशोदा के दो सन्तानें हुईं—"एक पुत्र और एक पुत्री।[1] यदि एक ही उदर से पैदा न होती, तो अनुजा कैसे कहलाती?[2] अनुजा तो उसी का नाम है, जो एक माता के गर्भ से अपने से पीछे पैदा हुई हो। इससे विदित होता है कि जिस उदर से योगमाया हुई थी, उसीसे पहले भगवान् भी उत्पन्न हुए। जब वसुदेवजी अपने पुत्र को लेकर गोकुल पहुँचे, तब उन्होंने यशोदाजी की शय्या पर एक पुत्र और एक पुत्री को पड़े देखा। ज्योंही उन्होंने अपने पुत्र को रखा, त्योंही वह यशोदा के द्विभुज पुत्र में उसी प्रकार समा गया, जिस प्रकार बिजली बादल में समा जाती है।[3] सजातीय छोटी वस्तु बड़ी वस्तु में मिल जाती है, एक हो जाती है। हम कैसा भी एक घड़ा जल लाकर गङ्गाजी में डालें, उसमें वह एक हो जायगा। इसी प्रकार नन्द-नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र में वसुदेव-नन्दन वासुदेव विलीन हो गये।"

शौनकजी बोले—सूतजी! इसमें विशेषता क्या हुई? भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, सब काम कर सकते हैं। वे गीता का उपदेश भी दे सकते है, अर्जुन का सारथ्य भी कर सकते हैं और भू का भार भी उतार सकते हैं। फिर तीन कृष्णों की कल्पना

---

१. गोविन्दाख्यः पुमान् कन्या चाम्बिका मथुरांत ॥ (अग्निपुराणे)

२. नन्द पत्न्यां यशोदायां मिथुनं समजायत।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥
(श्री भा० १० स्क० ४ अ० ६ श्लोक)

३. माथुरेशो द्वारकेशो व्रजस्थे नन्दनन्दने।
उभावपि विलीयेते कृष्णे पूर्णतमे नृप ॥
वसुदेव समानीते वासुदेवेऽखिलात्मनि।
लीने नन्दसुते राजन् घने सौदामिनी यथा ॥

करने से प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ ? शरीर तो एक ही है, भगवान् की अनन्त शक्ति हैं, वे 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं' सभी समर्थ हैं।"

इस पर गम्भीर होकर सूतजी बोले—"नही, महाराज ! इसे आप ध्यानपूर्वक विचार करें। वैसे तो आपका कथन ठीक ही है, भगवान् सर्वसमर्थ हैं; किन्तु भक्तो ने रसास्वादन के लिये, लीलाओ की सगति लगाने के लिये, ऐसी कल्पनायें की हैं। वास्तव मे तो विष्णु भी वे ही हैं, नरनारायण ऋषि भी वे ही हैं, भगवान् भी वे ही हैं, ब्रह्मा भी वे ही हैं, परात्पर प्रभु भी वे ही है। किन्तु बिना भेद-भाव के लीला तो नहीं बनती। विष्णु और परात्पर प्रभु के अवतारों में कुछ अन्तर है। विष्णु तो देवकी के गर्भ से पुत्र की भाँति उत्पन्न नही हुए, सहसा प्रकट हो गये; जैसे सूर्य प्रकट हो जाता है।[१] सो भी वे चतुर्भुज-रूप मे प्रकट हुए, पुत्र बनकर नही प्रकट हुए, परमेश्वर बनकर खड़े हो गये। रोये नही, हँसते रहे। किन्तु, नन्द के घर मे वे आत्मज बनकर—पुत्र बनकर—द्विभुज बालक होकर, यशोदाजी के गर्भ से बच्चे की भाँति, उत्पन्न हुए।[२] इन द्विभुज यशोदानन्दन ने न किसी दैत्य को मारा, न भू का भार उतारा। ये सब काम तो इनके अधीन नौकर-चाकर करते रहे। इन्हे किसी का रथ हाँकने या गीता का उपदेश देने का अवकाश कहाँ था ? इनके तो दो ही काम है—राग और भोग। आज तक भी व्रज के

---

१ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥

(श्री भा० १० स्क० ३ अ० ८ श्लोक)

२. नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।

(श्री भा० १० स्क० ५ अ० १ श्लोक)

मर्यादावाले मन्दिरों में भगवान् के राग-भोग के ही समय दर्शन होते है। उन्हे किसी को दर्शन देने का अवसर कहाँ राग-भोग के समय जो भाग्यशाली आवें, वे दर्शन कर लें। ये कृष्ण कभी व्रज को छोड़कर बाहर पैर भी नही रखते। व्रज में ही उत्पन्न हुए, सदा व्रज मे ही रमण करते रहते हैं।[१] अतः देवकी-नन्दन चतुर्भुज मथुरेश, और श्री भगवान् नारायण ऋषि तपस्वी के अवतार द्वारकेश—ये दोनो ही—द्विभुज यशोदा के गर्भ से साक्षात् पुत्र रूप में प्रकट होने वाले नन्द-नन्दन के रूप में विलीन हो गये।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"अजी, सूतजी! यह तो भक्तों की भावना है। लीलाओं की संगति लगाने की कल्पना है। अच्छी बात है! परन्तु, यह बताइये, व्रज से तो भगवान् अक्रूर के साथ चले गये थे। यदि न जाते, तो गोपियों को इतना वियोग क्यो होता? विरही गोपियों के अश्रुओं की बाढ़ से व्रज के बह जाने की संभावना क्यो होती?"

सूतजी बोले—"महाराज! व्रज-रस के रसिक इन सब बातों की संगति लगाते हैं। उनका कथन है, कि भगवान् का गोप-गोपी तथा गायों से कभी वियोग होता ही नही। उनका तो नित्य संयोग है। भगवान् ने प्रेम-वृद्धि के लिये यह लीला अवश्य की थी। वे रथ पर चढ़कर अक्रूर के साथ मथुरा को

---

१. सर्वदा द्विभुजो कृष्णो न चतुर्भुज कदाचन।
वृन्दावनं परित्यज्य पादमेक न गच्छति॥

२. स स्वय द्विभुजः कृष्ण यशोदागर्भसम्भवः।
तस्यासो देवकी पुत्र भविष्यति चतुर्भुजः॥

(अग्निपुराण)

ओर चले अवश्य थे, किन्तु भतरौड तक ही गये। यहाँ अक्रूरजी ने मध्याह्न सन्ध्या करने के लिये ज्यो ही यमुनाजी में बुडकी लगाई, त्योही श्रीकृष्णजी भी यमुना मे डुबकी मारकर तुरन्त व्रज मे आ गये। रथ पर वहाँ केवल चतुर्भुज मथुरेश विष्णु ही बैठे रह गये, जिन्हें वसुदेवजी छोड गये। जैसे प्रयाग से गगा-यमुना दोनो मिलकर समुद्र की ओर साथ-साथ चलती है, किन्तु समुद्र मे मिलने के पूर्व ही बंगाल मे (मुक्त त्रिवेणी-क्षेत्र से) यमुना पुनः पृथक् होकर चली जाती है वहाँ यमुना की धारा फिर पृथक् हो गई है, वैसे ही वसुदेवजी वाले मथुरेश कृष्ण कुछ दिन तो व्रज मे व्रजेश कृष्ण के श्रीविग्रह मे मिलजुल कर रहे। वहाँ पर अघासुर, बकासुर धेनुकासुर, आदि असुरों को जो मारा है, वह तो इन मथुरेश का ही काम था। अब जब इनका मथुरा की लीला करने का समय आ गया, तब यशोदा-नन्दन सौहाद्र के नाते इन्हे वृन्दावन की सीमा (भतरौड, अक्रूर घाट) तक पहुँचाने आये। इस बाद को सभी जानते हैं। व्रज मे भगवान् प्रकट-रूप मे कभी भी चतुर्भुज नही हुए हैं। यदि चतुर्भुज हो जाते, तो रस-भग ही हो जाता। फिर सख्य, वात्सल्य, मधुर--इनमें से एक भी रस न बनता। सुनते हैं, एक दिन भगवान् मान करके छिप गये। गोपियाँ व्याकुल होकर उन्हे ढूंढने लगी। भगवान् तो कौतुकी ही ठहरे! यहाँ कोई व्रज के सखा या गोप तो थे नही! रहस्य की लीला थी! गोपियो को छकाने के लिये भगवान् चतुर्भुज बनकर एक कुंज मे बैठ गये। रूप-रग, आकृति प्रकृति—सब वही। केवल भुजाएं चार धारण कर ली। गोपियो ने जब चतुर्भुज भगवान् को देखा, तब तुरन्त उन्होने अपना अचल सम्हाला। गले मे ओढनी डालकर घुटने टेककर उन्होने भगवान् को प्रणाम

किया। भगवान् ने कहा—"गोपियो! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो।"

गोपियों ने कहा—"हमारे नटखट चित्त-चोर श्रीकृष्ण हैं, वे खो गये हैं। आप ऐसा वर दें, कि वे मिल जायँ।"

भगवान् बोले—"अरे पगलियो! मैं ही तो श्रीकृष्ण हूँ!"

गोपियों ने यह सुनकर कान बन्द कर लिये, आँखें मीच ली और बोलीं—"श्रीविष्णु! श्रीविष्णु! आप यह कैसी अधर्म की बात कह रहे है! आप तो चतुर्भुजी कोई देवता हैं! हमारे यशोदा-नदन श्रीकृष्ण तो गोप-कुमार हैं!"

गोपियों की ऐसी निष्ठा देखकर भगवान् द्विभुजरूप से प्रकट हो गये। अक्रूरघाट पर अक्रूरजी ने जल में चतुर्भुजी विष्णु के ही दर्शन किये थे। नन्द-नंदन तो लौटकर व्रज में आ गये और गोपियों के साथ अद्यावधि वहाँ विहार कर रहे हैं। उनका विहार नित्य है, श्रीवृन्दावन नित्य है, गोप-गोपीगण तथा उनके समस्त परिकर नित्य है। अन्तर इतना है, कि पहले उनकी प्रकट लीला थी, अक्रूर के साथ आने के अनंतर अप्रकट लीला हो गई।"

इस पर शौनकजी बोले—"सूतजी! ये तो सिद्धान्त की गूढ़ बातें हैं। अब आप हमें कथा-प्रसंग सुनाइये।"

सूतजी ने शीघ्रता से कहा—"जब महाराज! आपने बात छेड़ दी, तो मुझे उसका उत्तर देना ही था। नहीं तो यह तो अत्यन्त रहस्य की बातें हैं साधारण बुद्धि से ये नहीं समझी जा सकतीं। कथा प्रसङ्ग को ही अब में चालू करता हूँ। कथाओं की ओर सबकी स्वाभाविक रुचि होती है और कथा-प्रसंग को सब समझ भी जाते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ सूतजी! कथा ही कहें। अच्छा, तो यमुना पार करके वसुदेवजी कहाँ गये?"

सूतजी बोले – महाराज ! सुनिये । यमुना पार करके शीघ्रता के साथ वसुदेव जी नन्द जी के गोष्ठ में पहुँचे । लाखों गायों के झुण्ड वहाँ बँधे हुये थे । वसुदेवजी का हृदय धडक रहा था । वे सीधे नन्दजी के चौपाल पर पहुँचे। देखा वहाँ सब गोप गहरी निद्रा मे सोये पड़े हैं । इसे भगवान की माया समझकर वे भीतर घर मे घुसे । देखा, सब किवाड खुले पड़े हैं । घर मे स्त्रियाँ तो बहुत हैं, किन्तु सब सोई पडी हैं । कोई पीढा पर हो मुँह फाडे सो रही है, किसी के मुख से लार बह रही है, कोई ढोलक पर ही सिर रखे सो गई है, कोई किसी के ऊपर ही पड़ गई है, कोई भित्ति के हो सहारे पडी है, कोई मजीरा छाती पर ही रखे लुढक रही है, कोई घड़े के ही सहारे पडी है, कोई किसी के पेट पर हो सिर धरे सो रही है। वसुदेवजी समझ गये, यह सब भगवान् की माया है। वे सूतिकाघर मे गये, तो देखा कि स्वय यशोदा मैया भी गहरी निद्रा मे पडी हुई हैं। एक सद्य.जात बालिका वहाँ पडी हुई है। वसुदेवजी ने देर नही की। सूप से श्रीकृष्ण को उठाकर यशोदा मैया की शय्या पर सावधानी से सुला दिया और वहाँ से उस बालिका को उठा लिया। वे चलने लगे, किन्तु उनके पेर आगे नही बढते थे, नेत्रो से झर-झर अश्रु बह रहा था। दो पैर गये फिर लौट आये फिर श्रीकृष्ण को उठाया, मुख चूमा, फिर रख दिया। फिर बढे, फिर मन न माना, फिर लौटे। उनका चित्त नही चाहता था कि श्रीकृष्ण के समीप से जाऊँ, उनका वियोग उन्हें असह्य था। वे आगे बढ़े कि एक चूहा धाय के पेट पर से निकला। वह चौक पडी। वसुदेवजी ने सोचा—"बात बिगडी। यदि एक भी कोई जाग गई, तो चोर-चोर करके चिल्ला उठेगी।" अतः वे शीघ्रता से पैर दबाते हुए चले। किन्तु, योगमाया के प्रभाव से कोई

काण्ड नहीं हुआ। वे चुपके से घर के बाहर हो गये। चौपाल पर गोप पूर्ववत् सो रहे थे। मन ही मन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए वसुदेवजी यमुना-तट पर आये। यमुनाजी ने इन्हें पूर्ववत् मार्ग दे दिया।

यमुना पार करके वे अपने कारावास में आये। द्वारपाल अभी तक निद्रा में अचेत पड़े थे। वसुदेवजी ने लड़की को देवकी देवी को दे दिया। उन्होंने स्नेह पूर्वक उसे अपनी सेज पर

सुला लिया। तदन्तर वसुदेवजी ने पुनः पूर्ववत् अपने पैरों में बेडी डाल ली—"हाथों में हथकड़ी पहन ली, और पूरे वन्दी वन गये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह तो कुछ चमत्कार-सा ही दीखता है। पहरे वाले सब सो गये, गोप-गोपी सब सो गये, यमुना घट गई! इसमें तथ्य क्या है?"

सूतजी बोले—'महाराज! यदि श्रीकृष्ण भगवान् हैं, तब तो इसमें कुछ भी आश्चर्य या शंका नहीं! योगमाया के प्रभाव से सब कुछ सम्भव है! यदि उन्हें मनुष्य मानकर इस लीला पर विचार करें, तब तो स्पष्ट ही है कि कंस के अत्याचारों से सभी दुःखी थे, पहरे वालों से मिलकर वसुदेवजी चले गये। नंदजी से पहले ही पक्की कर ली होगी। कृपावश उन्होंने अपनी पुत्री देना स्वीकार कर लिया होगा। वे अपने गोप-गोपियों और गायों सहित इस पर डेरा डालकर ठहरे होंगे। इस प्रकार सब ने मिल-जुलकर यह षड्यन्त्र रचा होगा, कंस की आँखों में धूल झोंकी होगी। महाराज! भगवान् की लीलायें अनन्त हैं। उन्हें जो मनुष्य मानता है, उसके लिये वे मनुष्य वन जाते हैं, जो उन्हें योगी मानता है, उसके लिये योगेश्वर और जो उन्हें ईश्वर मानता है, उसके लिये वे ईश्वर वन जाते हैं। पुराणों तथा अन्य स्थानों में इस घटना का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

कहीं यह है कि नन्दजी की एक चेटिका (दासी) थी। उसके द्वारा बच्चे-बच्ची का आदान-प्रदान हुआ। कहीं कहा है, "नंद जी से और वसुदेवजी से पहले ही बात पक्की हो चुकी थी, कि मेरे जो संतान होगी, उसे तुम्हें दूँगा। तुम्हारी आठवीं संतान की मैं रक्षा करूँगा।" कहीं कहा है कि वसुदेवजी गोकुल

नही गये। नन्दजी कस को कर देने मथुरा जा रहे थे। यमुना किनारे वे अपना पडाव डालकर पडे थे। वही यशोदा देवी ने वालिका को जन्म दिया। वही से वसुदेवजी उठा ले गये। कही ऐसा भी वर्णन है, कि वसुदेवजी वच्चे को छिपाने के लिये अलक्षित स्थान की ओर दौडे। उन्हे कुछ भी पता नही था, कि मुझे कहाँ जाना है। वे यमुना पार करके जा रहे थे, कि उन्हे मृतक लडकी को लिए हुए नन्दजी दिखाई दिये। उनके लडकी हुई होगी, होते ही मर गई होगी। तव वसुदेवजी ने उनसे प्रार्थना की कि मेरे इस वच्चे को आप किसी तरह छिपा लें।"

नन्दजी ने कहा—'भाई! कस राजा वडा क्रूर है। मैं उसके विरुद्ध आचरण नही कर सकता।" तव वसुदेवजी ने बहुत अनुनय-विनय की, अपने किये उपकारो का स्मरण दिलाया। जसे-तसे नन्दजी सहमत हुए। वे यमुना-किनारे एक गड्ढे मे लडकी को रखकर वसुदेवजी के पुत्र को लेकर अपने गोकुल चले गये।

वसुदेवजी लौट ही रहे थे कि उन्हे रुदन की क्रन्दन-ध्वनि सुनाई पडी। वसुदेव उधर ही चले। उन्होने क्या देखा कि लडकी तो जीवित है। वे उस लडकी को लेकर कारावास मे आये और फिर उसको कस ने मार डाला। इस प्रकार इसमे अनेक मतभेद हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! हम तो श्रीकृष्ण को मनुष्य मानते नही। मनुष्य मानकर हम उनके चरित्र से क्या लेंगे? हम तो उन्हे परात्पर प्रभु मानकर ही उनकी अत्यन्त रसमयी, आह्लादमयी, परम मनोहर लीलाओ का श्रद्धा-सहित श्रवण करना चाहते हैं। मतभेद तो सदा रहे हैं, सदा वने रहेंगे। वने

हमें इनसे क्या प्रयोजन ? हमे तो आप उन परात्पर प्रभु नटवर गिरधारी वनवारी की ललित लीलाओ को उमङ्ग, उत्साह और आह्लाद के साथ सुनाइये। हां, तो फिर योगमाया के कारावास आने के अनन्तर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"उसके पश्चात् जो हुआ, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। योगमाया रो पडी सब पहरे वाले जग पडे। योगमाया का बोलना ही असुरो को चुनौती देना है। अब जो हुआ, उसे भी आचमन करके कहूँगा। तनिक देर कीर्तन हो जाय।"

श्री कृष्णगोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

छप्पय

सुत वियोग अरु कंस-त्रास तैं माँ घबराई।
पति तैं कन्या लई सेज पै साथ सुवाई॥
पहिनी श्री वसुदेव हथकरीं बेरीं फिरि तैं।
दम्पति थर थर कँपै कंस पापी के डर तैं॥
रुदन योगमाया करयो, द्वारपाल सब जगि गये।
बाल-जन्म सुनि कहन कूँ, तुरत कंस ढिँग भगि गये॥

कारावास में कंस

[८३४]

स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः।
सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

कहें कस ते देव! देवकी बालक जायो।
उग्रसेन–सुत सुनत जन्म रिपु अति घबरायो॥
हडबड़ाइकें उठ्यो, मूँड़ चौखटमहँ लाग्यो।
सुधि न मुकुट की रही, केश खोले ही भाग्यो॥
आयो कारावास महँ, सर्राटे तैं घुसि गयो।
कन्या देखी पलंग पै, निरखि तेज विस्मित भयो॥

यह मनुष्य प्राणी अपनी मृत्यु से सदा डरता रहता है। यह सदा चौकन्ना रहता है, कि मैं मर न जाऊँ। पुराण मे 'मृत्यु' को अधर्म के वश मे कहा है। कही तो ऐसा वर्णन है कि अधर्म की स्त्री का नाम मृषा (असत्यता) था। इन दोनो से दम्भ और माया दो पुत्र-पुत्री हुए। अधर्म की संतति होने से इन दोनो ने परस्पर विवाह कर लिया। इनके संसर्ग से भी लोभ और निकृति

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! देवकी के बच्चा हुआ है, इतना सुनते ही कस तुरत पलङ्ग छोडकर खडा हो गया और बिना मुकुट पहने नगे सिर खुले बालो से हडबडाहट मे डगमगाहट हुआ देवकी के प्रसव-घर मे आया। 'वह मेरा काल', 'मेरा काल' है, कहता हुआ वह अत्यन्त विह्वल हो रहा था।"

(शठता)-ये दो पुत्र-पुत्री हुए। उन्होने भी अपनी वशपरम्परानुसार विवाह कर लिया। इनसे भी क्रोध और हिंसा—ये दो पुत्र-पुत्री हुए। इन्होंने भी आपस म विवाह कर लिया। इनमे कलि (कलह) और दुरुक्ति—ये दो बालक और बालिका हुई। ये भी फिर बहू दुलहा बन गये। इनसे भय और मृत्यु—ये दो पुत्र-पुत्री हुई। इस क्रम से मृत्युदेव अधम महाराज के प्रपौत्र के पौत्र अर्थात् पाँचवी पीढी मे उत्पन्न हुए।

किसी युग मे दूसरा ही क्रम है। किसी मे ऐसा है कि अधर्म की स्त्री हिंसा थी। इन दोनो से अनृत (असत्य) पुत्र, निर्ऋति पुत्री—ये दो सन्तानें हुई। इन दोनो ने परस्पर मे विवाह कर लिये, जिससे दो पुत्र और पुत्रियाँ अर्थात् चार सतानें हुई। पुत्रो के नाम नरक और भय थे तथा कन्याओ के नाम माया और वेदना। भय ने माया से विवाह कर लिया और नरक ने वेदना का पाणिग्रहण कर लिया। भय और माया के ससर्ग से ही "मृत्युदेव" का जन्म हुआ। फिर मृत्यु के व्याधि जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध आदि बहुत-सी सन्तानें हुई। इस क्रम से मृत्युदेव अधर्म बाबू के प्रपौत्र अर्थात् तीसरी पीढी मे हुए। 'मृत्यु' किसी कल्प मे पुरुष रूप से हुए हैं किसी कल्प मे इन्हे मृत्युदेवी भी कहा है।

मृत्युदेव के सम्बन्ध मे एक कथा है। यमराज जब लोकपाल हुए, तब देखा कि सृष्टि बहुत बढ गई है। ब्रह्माजी ने यमराज से कहा—"देखो, भाई! आय के साथ व्यय भी होना चाहिये, कुछ लोगो को मारते भी चलो।"

यमराज ने कहा—"नही महाराज! ऐसा क्रूर कर्म मैं नही करूँगा।"

ब्रह्माजी ने चिन्तित होकर अपने चार हाथो से चारो मुख

की सफेद दाढी के वालों को सुलझाते हुए कहा—"अच्छा, तो हम तुम्हे एक मन्त्री दिये देते हैं। तुम उसे मारने का काम सौंप देना, इसका एक विभाग ही पृथक् कर देना।"

यमराज ने इसे स्वीकार किया। ब्रह्माजी एक उपलोक पाल की खोज में चले। चलते-चलते गंगा-किनारे उन्हे एक ब्राह्मण घोर तप करते हुए मिला। ब्रह्माजी ने उसे हिलाते हुए कहा—"उठो भाई, उठो। मैं तुम्हे वरदान देने आया हूँ। मैंने तुम्हे उपलोक-पाल बना दिया।"

ब्राह्मण बडे प्रसन्न हुए, पूछा—"महाराज! मुझे किस लोकपाल का सहायक बनाया है?"

ब्रह्माजी ने कहा—"तुम आज से यमराज के सहकारी हुए। उनके साथ ही मिल-जुलकर काम करो।"

उसका नाम मृत्यु था। वह बोला—"महाराज! मुझे करना क्या होगा?"

ब्रह्माजी ने कहा—"लोगो को मारना होगा।"

ब्राह्मण दुखी होकर बोला—"ऐसा क्रूर कर्म मुझसे नही होगा। यह पद आप किसी दूसरे को दे दें, मुझे यह आपकी गद्दी नही चाहिये।" यह कहकर वह पुनः घोर तप करने लगा। फिर ब्रह्माजी आये। फिर वही प्रस्ताव किया। ब्राह्मण फिर सहमत नही हुए। तब ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छा, हम सुनें भी तो, तुम्हे आपत्ति क्या है?"

मृत्युदेव बोले—"अजी महाराज! आपत्ति की तो बात ही है। सब मुझे गालियाँ देंगे, बुरा-भला कहेंगे। मारना कुछ अच्छा काम थोड़े ही है! यह सत्य है कि लोगो पर मेरा प्रभाव रहेगा, लोग मेरे नाम से काँपेंगे, किन्तु रात्रि-दिन मुझे गालियाँ सुननी पड़ेगी।"

ब्रह्माजी ने कहा—"बस, इतनी-सी ही बात से डरते हो? इसका मैं प्रबन्ध किये देता हूँ।" तुरन्त ही ब्रह्माजी ने असंख्य रोगों को उत्पन्न किया और उन्हे उत्पन्न करके बोले—"देखो, यह सब तुम्हारे सैनिक होंगे, तुम्हे कोई भी दोष न देगा! सब यही कहेंगे, ज्वर से मर गया, सांप ने काट लिया, विष से मरा, घोड़े से गिरा, जल में डूबा। सब दोष इन रोगों पर ही जायेंगे। अब क्या था! विप्रदेव ने वह पद स्वीकार कर लिया। उसी दिन से सब उनके नाम से थर-थर काँपने लगे। कितना भी बड़े से बड़ा वीर हो, मृत्यु का नाम सुनकर उसका भी हृदय धक-धक करने लगता है। जहाँ मृत्यु का देवी के रूप मे वर्णन किया है, वहाँ उसकी उत्पत्ति की बड़ी मनो रञ्जक कथा है।

जैसे कभी-कभी मनुष्य से भारी भूल हो जाती है, वैसे ही ब्रह्मा जी भी कभी-कभी भारी भूल कर बैठते हैं। कोई बड़ा सुन्दर भव्य भवन बनावे, किन्तु कहीं भी उसमे से जल निकलने की मोरी न बनावे, तो वह घर दुर्गन्धि करने लगेगा। उसमें रहना कठिन हो जायगा। इसी प्रकार ब्रह्माजी ने सृष्टि बनाने की झोंक मे सृष्टि तो बहुत-सी उत्पन्न कर दी। मानसी सृष्टि के अनन्तर मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की। स्त्री-पुरुषो के संयोग से सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई। सांस लेने का भी स्थान न रहा। तब तो ब्रह्माजी बड़े घबराये। अरे, यह तो मुझसे भूल हो गई! सृष्टि बढ़ाने की धुनि मे मैंने यह विचार नहीं किया कि इतनी सृष्टि रहेगी कहाँ! बहुत सोच विचार किया, कुछ उपाय भी न सूझा! अब तो ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध आया। क्रोध करके वे सम्पूर्ण सृष्टि को भस्म करने लगे। दशों दिशायें उनके क्रोध के धुएँ से भर गईं। सम्पूर्ण विश्व का प्रलय होते देखकर त्रिनेत्र सदाशिव भोलेनाथ दौड़े-दौड़े आये और हाथ जोड़कर

बोले—"पिताजी ! पिताजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ? आपने ही तो इस सृष्टि को उत्पन्न किया है, आप ही इसका नाश क्यों कर रहे हैं ? आपके द्वारा ऐसा अनर्थ उचित नहीं।"

शिवजी की विनय से ब्रह्मा बाबा का क्रोध कुछ शान्त हुआ और बोले—"भैया ! शङ्कर मेरा उद्देश्य सृष्टि का विनाश करने का नहीं है, किन्तु इतनी बढी हुई सृष्टि रहे कहाँ ? मैं चाहता हूँ कि काम योग्य ही जीव-जन्तु रहे। यह व्यर्थ की बादी छँट जाय।"

शिवजी बोले—"नहीं, महाराज ! आपके द्वारा ऐसा क्रोध शोभा नहीं देता। आप मुझे यही वर दें कि आप सृष्टि का सहार न करें।"

ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छी बात है, मैं सृष्टि का विनाश न करूँगा। किन्तु, तुम ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे आय-व्यय प्रायः बराबर बने रहें। यों सृष्टि बढती ही गई, तो काम कैसे चलेगा ?" इतना कहकर ब्रह्माजी विश्व-विनाश से विरत हो गये। वृषभध्वज भी विधि के पास बैठ गये। ब्रह्माजी चिन्ता और क्रोध मे भरे विचारने लगे। इतने मे ही उनकी समस्त इन्द्रियों की सहायता से एक सुन्दरी स्त्री उत्पन्न हो गई। उसके शरीर का वर्ण कृष्ण और लोहित था। आँखें कुछ भीतर घुसी-सी कृष्ण वर्ण की थीं। उसकी हथेलियाँ काली थीं। उसके कानो मे कनक के कुण्डल जगमग जगमग करते हुए चमक रहे थे। वह दिव्य वस्त्रालकारो से विभूषित थी। उत्पन्न होने ही उसने शङ्कर जी तथा ब्रह्मा जी को प्रणाम किया और उनकी दाईं ओर खडी हो गई।"

ब्रह्माजी ने उसे बुलाया और कहा—देख, 'तेरा नाम मैंने मृत्यु रखा।"

- उसने हाथ जोडकर कहा—"महाराज! मुझे क्या काम करना होगा ?"

ब्रह्माजी ने कहा—"मैंने क्रोध और चिन्ता मे भरकर तुझे उत्पन्न किया है। अतः तू सब को मारा कर। धनी हो, निर्धन हो, राजा हो, रङ्क हो, विद्वान हो, मूर्ख हो, स्त्री हो, पुरुष हो, तू बिना भेद-भाव के सब को कालानुसार मार दिया कर।"

यह सुनकर मृत्यु देवी तो घबराई। यह कैसा क्रूर कर्म ब्रह्माजी मुझे बता रहे हैं। स्त्रियों के आँसू तो नाक पर रखे ही रहते हैं। अतः वह टप-टप आँसू बहाती हुई रोने लगी। किन्तु, उसने आँसुओं को पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया, हथेलियों पर ही ले लिया।"

ब्रह्माजी ने उसे बहुत समझाया, लोभ-लालच दिया, डराया धमकाया। साराश कि शाम, दाम, दण्ड, भेद—सभी नीतियों का प्रयोग किया, किन्तु वह देवी नहीं मानी, नहीं मानी। स्त्री-हठ ही जो ठहरा! स्त्री जब अपनी बात पर अड जाय, ब्रह्माजी की तो बात ही क्या है, उनके बाप भी उन्हें नहीं समझा सकते।

ब्रह्माजी डॉटकर कहा—"तू हमारे सामने उत्तर प्रत्युत्तर करती है। हमने तुझे जिस काम के लिये उत्पन्न किया है, तुझे वही करना पडेगा।"

सुबकियाँ भरती हुई मृत्यु देवी बोली—"महाराज! ऐसा अन्याय मत करो, मुझे अधर्म के काम मे नियुक्त मत करो। अनीति का आश्रय न लो, मुझे कृपा की दृष्टि से देखो जिन्होंने मेरा कोई भी अपराध नहीं किया, उन निरपराध प्राणियों को मैं क्यों मारूँ ? माता को पुत्र से, पुत्र को माता से, भाई को भाई से, स्त्री को पति से, पति को स्त्री से, बहन को भाई से, भाई से बहन को, सुहृद से सुहृद को, सम्बन्धी से सम्बन्धी को तथा

कुटुम्बी से कुटुम्बी को मैं अकारण क्यों पृथक् करूँ ? वे सब मुझे शाप देंगे, गाली देंगे। मैं इस पाप पूर्ण कर्म को कभी भी नहीं कर सकती। आप इसके लिये चाहें बुरा मानें या भला।"

ब्रह्माजी ने कहा—"नहीं, तुझे करना ही होगा।" अब उसने मौन धारण कर लिया। ब्रह्माजी ने लाख बार कहा, वह बोली ही नहीं। ब्रह्मा जी उसकी धर्म-निष्ठा से भीतर ही भीतर तो प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु ऊपर से उसे डॉट-डपट रहे थे। मृत्यु ने उनकी एक भी बात न सुनी, वह गङ्गा-किनारे हरिद्वार में तपस्या करने चली गई। दस-बीस, शत, सहस्र, लक्ष, अर्व, खर्व वर्षों तक वह घोर तपस्या करती रही। कई बार ब्रह्माजी उसके पास आये, उसने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।"

जब वह तपस्या करते-करते अत्यन्त कृश हो गई, तब ब्रह्माजी उसके समीप गये और बोले—"भद्रे ! देखो, जिसे मैंने जिस काम के लिये उत्पन्न किया है, उसे वह काम करना ही पड़ेगा। चाहे ऐं करके करे चाहे चें करके। तू चाहे तपस्या करते-करते मर जा, तुझे मेरी बात माननी ही पड़ेगी।"

यह सुनकर मृत्यु फिर रो पड़ी। उसने अपने अश्रु हाथों में लेकर कहा—"महाराज ! मुझे क्यों ऐसे पाप कर्म मे प्रवृत्त करते हैं ?"

ब्रह्माजी बोले—"लल्ली ! तू समझती नहीं। इसमें पाप कुछ नहीं है। जैसे जन्म लेना आवश्यक है, वैसे मरना भी आवश्यक है। मरने के बिना सृष्टि का काम चल नहीं सकता। तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। यही नहीं, इसमे तेरा कल्याण होगा। तेरे जो शोक से अश्रु निकले हैं, जिन्हें तूने अपनी अञ्जलि मे रोक रखा है, इनसे असंख्य आधि-व्याधियाँ होंगी। वे ही जीवों को मारकर लाया करेंगी। मृत्यु के समय तो जीवों

की ओर काम और क्रोध को भेजना। जब ये काम क्रोध के अधीन हो जायँगे, तब मुझे कुछ दोष भी न लगेगा।" कोई यह भी नहीं कहेगा कि मुझे मृत्यु ने मारा। सब यही कहेंगे, "अमुक आधि से मरा, अमुक व्याधि से मरा।" यह सुनकर मृत्यु ने ब्रह्माजी की आज्ञा मान ली। तभी से मृत्यु प्राणियों को मारती है। मरते समय चाहे वृद्धावस्थापन्न ही स्त्री-पुरुष क्यों न हो, उन्हें 'काम' और 'क्रोध' का वेग होता है। पुरुषों का जिन स्त्रियों से संसर्ग रहा है, जिनमें अत्यधिक आसक्ति रही है, ऐसी ही स्त्रियों को जिन पुरुषों में अत्यन्त मोह रहा है, वे सब याद आते हैं। वासनाएँ प्रबल हो जाती हैं। वे ही वासना जीव को पुनः संसार में ले आती है। जिसने मृत्यु के पूर्व ही काम-क्रोध को जीत लिया है, वह तो जीवन्मुक्त है, ऐसे पुरुषों की तो मृत्यु होती ही नहीं। शरीर से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। किन्तु जो 'काम-क्रोध' के वशवर्ती होकर विषयों में आसक्त हैं, उन्हें मृत्यु अत्यन्त भयावनी लगती है, वे मृत्यु के भय से सदा भयभीत बने रहते हैं। यही 'काम-क्रोध' या भय भगवान के सम्बन्ध से हों, तो वे मुक्ति के हेतु हो जाते हैं। [illegible] से, क्रोध से, भय से, भगवान स्मरण हो जाये, तो वह [illegible] भी पापी क्यों न हो, कृतकृत्य हो जाता है। [illegible], [illegible], कंस आदि के पापों को, [illegible] [illegible], किन्तु उनका क्रोध और भय भगवान को लेकर था, [illegible] हो गये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! [illegible] [illegible] सुनी, तभी से [illegible] [illegible] मृत्यु [illegible] [illegible]। उसे विदित हो गया था कि भगवान [illegible] [illegible]" अतः वह उठते-बैठते, [illegible] [illegible] [illegible]।

करता था। आठवें गर्भ में देवकी को गर्भवती देखकर जब उसे विश्वास हो गया, कि अवश्य ही इसके उदर में मुझे मारने वाला विष्णु है, तब से वह सदा सचेत रहता। देवकी के प्रसव के दिन गिनता रहता, रात्रि में उसे नींद नहीं आती थी, दिन में उसे भोजन अच्छा नहीं लगता था। मृत्यु से भयभीत हुआ वह भगवान के जन्म की प्रतीक्षा प्रतिपल, प्रतिक्षण, करता रहता था। वह प्रहरियों को सदा सचेष्ट और सावधान किये रहता था, "इस गर्भ के विषय में कुछ भी प्रमाद न होने पावे। बालक उत्पन्न होते ही मुझे तुरन्त समाचार दिया जाय। इसमें पलभर की भी देर न हो।" सेवक कंस से बहुत डरते थे, अतः सदा सावधान रहते थे। कभी कोई रात्रि में अपनी बारी में सोने की तो कौन कहे, बैठता भी नहीं था। योगमाया के प्रभाव से उस दिन सब पहरेवाले सो गये। वसुदेवजी श्रीकृष्ण भगवान् को गोकुल पहुँचा आये। वहाँ से कन्या को भी ले आये। तब-तक सब सोते के सोते ही पड़े रहे। जब वसुदेवजी हथकड़ी-बेड़ी पहनकर पूर्ववत् बन्दी बन गये, तब वह कन्या-बनी योग-माया चिल्लाई।

सद्यःप्रसूता कन्या के रुदन की ध्वनि सुनकर सोते हुए प्रहरी तुरन्त जग गये। उनमें से एक दाढ़ी वाला प्रधान प्रहरी अपने साथी से बोला—"अरे, ढम्बरसिंह! भाई, मुझे तो निद्रा आ गई। कहो यह रोने की ध्वनि कहाँ से आ रही है?"

ढम्बरसिंह बोला—"प्रधानजी! अपराध क्षमा हो, मैं भी सो गया और जितने थे, सबके सब सो गये।"

प्रधान प्रहरी बोला—"भैया! तू कहे मत मेरी। मैं कहूँ ना तेरी। ऐसे ही गोलमाल बात रहने दे।" वसुदेवजी से इसी समय उसने तुरन्त पूछा—"बाल-बच्चा हुआ क्या?"

वहीं से प्रहरी ने पूछा—"फूफाजी कहिये, कुछ हुआ क्या ?"
वसुदेवजी ने कहा—"हाँ, भाई, बच्चा हुआ है।"

बस, फिर क्या था, इतना सुनते ही चार प्रहरी एक साथ दौडे-दौडे गये। कस तो पलग पर पडा पडा करवटें बदल रहा था। वह तो अत्यन्त उत्सुकता के साथ देवकी के अष्टम गर्भ के बालक की प्रतीक्षा कर रहा था। प्रहरियों ने जाकर द्वार पर से ही कहा—"मथुरेश महाराज की जय! जय हो! श्रीमती देवकीजी ने प्रसव किया है।"

"अच्छा, देवकी के बच्चा हो गया! यह कहते हुए कस अत्यन्त ही हडबडाहट के साथ तुरन्त पलङ्ग पर से उठकर खडा हो गया। उसके बडे-बडे बाल बिखरे हुए थे। सिर पर न पगडी थी, न मुकुट। वह शय्या पर जैसे पडा था, वैसे ही हाथ में खड्ग लेकर कारावास की ओर नगे पैरो ही दौडा। एक झपट्टे में वह कारावास में पहुँच गया। कारावास के अध्यक्ष, निरीक्षक तथा समस्त प्रहरी अपनी-अपनी पोशाक पहने पहरे पर तत्पर थे। सबने राजा को प्रणाम किया। प्रधान प्रहरी ने पहला ताला खोला। कस ने इधर-उधर देखकर कहा—"ताला-जगला सब ठीक है न ?"

निरीक्षक ने कहा—"हाँ, प्रभो! सब ठीक है।"

यह सुनकर वह शीघ्रता से भीतर घुसा। सभी प्रधान कर्मचारियों ने उसका अनुसरण किया। तालियों के गुच्छे को खनखनाते हुए प्रधान प्रहरी आगे दौडता जाता था। फाटक पर पहुँचने के पूर्व ही वह तुरन्त द्वार खोल देता। इस प्रकार सात ताले खोलकर, सात फाटकों को पार करके, कस देवकीजी के प्रसूतिकाघर में पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि वसुदेवजी के हाथ पैरों में हथकड़ी बेड़ी पडी है, प्रसव की पीडा को प्रदर्शित

करती हुई भगवती देवकी भयभीत हुई कराह रही हैं। उन्होंने दूर से ही मृत्यु के समान, साक्षात् काल के समान, मूर्तिमान यमराज के समान, आते हुए अपने भाई कंस को देखा। उनका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था। इतने में ही कंस ने कर्कश स्वर में दहाड़कर पूछा—"देवकी! क्या हुआ है तेरे ?"

देवकी देवी ने दीनता के स्वर में कहा—"भैया! यह तो छोरी है।"

कंस ने आश्चर्य चकित होकर कहा—"क्या कहा ? छोरी है! अब के छोरी हुई! अच्छा, ला उसे मुझे दे।"

देवकी देवी ने दुःखी होकर कहा—"भैया! जो है; वह तुम्हारे सामने है। परन्तु, भैया! इस बच्ची को लेकर तुम क्या करोगे ? मेरे और बच्चों के समान इसे भी तुम मारना चाहते हो क्या ? भैया, ऐसा मत करो। देखो, भला यह बच्ची तुम्हारा क्या अपकार कर सकती है।"

कंस ने डाँटकर कहा—"बहुत व्यर्थ की बातें न बना। सीधे अपनी बच्ची को मुझे दे दे। नहीं तो मैं उसे बलपूर्वक तुमसे छीन लूँगा।"

देवकीजी बोलीं—'भैया, मेरी काहे को है, यह तो तेरी ही है। यद्यपि है तो यह लोक और शास्त्र के विरुद्ध, किन्तु दक्षिण देश की यह प्रथा है कि बहन अपनी लड़की का भाई के लड़के के साथ विवाह कर देती है। इस घोर विपत्ति से बचने के समय मैं भी इस लोक-विरुद्ध धर्म का आचरण करूँगी। बड़ी होने पर मैं इसका तुम्हारे लड़के के साथ विवाह कर दूँगी। तुम इसे अपनी पुत्र-वधू मानकर छोड़ दो। इतने वीर होकर तुम्हें स्त्री-वध नहीं करना चाहिये।"

कंस ने कहा—"मैंने मृत्यु से बचने को ही तो तेरे सब पुत्रों को

मारा है ! अष्टम बालक से आकाशवाणी ने मेरी मृत्यु बताई थी। इसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ?"

देवकी बोली—"भैया! तुमने क्या मारा है, मेरे भाग्य से ही वे मर गये। उनकी देववश ही मृत्यु हो गई ! वे कैसे अग्नि के समान तेजस्वी थे। उनकी मृत्यु तुम्हारे हाथों ही लिखी थी। उनको तुमने मार दिया, किन्तु अब तो कृपा करो, अब तो यह एक कन्या रह गई है। यह अबला तुम्हारा क्या अनिष्ट कर सकती है ! इसे तो छोड़ दो। मेरे सन्तोष के लिये इसे मत मारो।"

कंस ने कहा—"देवकी ! मृत्यु से सभी को भय होता है। मैं इसे तुम्हें कैसे दे सकता हूँ ?"

देवकी ने गिड़गिड़ा कर कहा—"अरे, भैया ! तुम सर्व समर्थ हो, जो चाहो कर सकते हो। तुम दानी हो, दयालु हो, मेरे ऊपर दया करो। यह बालिका तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकती। देखो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। बच्चा होने के अवसर पर भाई-बहन को वस्त्राभूषण देता है। तुम मुझे यही भीख दे दो। अब मेरे बच्चा होने की क्या आशा है। प्रतीत होता है, यह मेरी अन्तिम सन्तान है। लड़का तो कोई रहा नहीं। यह एक पेट पुछनी लड़की रह गई है। अपने बच्चों के मारे जाने से मैं अत्यन्त दीन हो रही हूँ। सो, मेरे राजा भैया, मुझ अभागिन की यह विनती तो स्वीकार कर लो। मुझे इस अन्तिम सन्तान को तो, दे ही दो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार देवकी देवी ने कंस की बहुत-कुछ अनुनय विनय की, किन्तु उस दुष्ट का हृदय नहीं पसीजा। वह कन्या को मारने पर कटिबद्ध हो गया।"

छप्पय

कन्या माँगी रोइ देवकी बोली भैया !
पुत्रीसम लघु बहिन तुम्हारी मैं हूँ नैया ॥
मारे सब सुत किन्तु कृपा कन्या पै कीजे।
परि पैरनि पै करूँ याचना जाकूँ दीजे ॥
अन्तिम मेरी धीय है, जिह अनरथ का करेगी।
रंगो रक्त तैं हाथ च्यों, देह सदा नहिँ रहेगी ॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्वचा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४ अ० १२ श्लोक)

छप्पय

एक न खल ने सुनी सुता पत्थर पै पटकी ।
सटकी करतैं तुरत बनी दवी नभ चटकी ॥
अष्ट भुजी बनि गई दिव्य आयुध धारें कर ।
शङ्ख, चक्र, धनु, खड्ग, चर्म, तिरशूल, गदा शर ॥
लक्ष्य कंस कू करि कहे, मन्द मोइ मारे वृथा ।
प्रकट्यो तेरो शत्रु ता मति दै बालनि कूँ व्यथा ॥

मनुष्य शक्तिभर सिद्धि के लिये विधान बनाता है। उसमें सफलता हो जाती है, ता अहकार बढ जाता है। असफलता होती है, तो दीनता आती है। यह दीनता ही कभी कभी भगवान् को मिला देती है। पुरुषार्थ पर मनुष्य की आस्था कम हो जाती है। असफलता ही भावी सफलता की द्योतक है। जो गँवाता है, वही पाता भी है। अत असफलता हमें शिक्षा देने,

---

* श्री शुकदेव जो कहते हैं—"राजन्! पत्थर पर पटकने पर योग माया कंस को लक्ष्य करके आकाश में कह रही है—रे मन्दमति! मुझे मारने से तुझको क्या मिलेगा? तेरा अन्त करने वाला काल तो कहीं अन्यत्र ही उत्पन्न हो गया। वह तेरा पूर्व शत्रु है। तू क्यो अकारण अन्यान्य बालकों की हिंसा कर रहा है? ऐसा मत कर।

संसार का यथार्थ ज्ञान कराने, के निमित्त आती है। इसलिये असफलताओं को देखकर घबराना न चाहिये, बल्कि और भी उत्साह के साथ अपने कर्म की सिद्धि में लग जाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! देवी देवकी ने अपने क्रूरकर्मा भाई से अत्यन्त दीन होकर कन्या पर दया करने की प्रार्थना की, किन्तु उस दुष्ट ने तो दया का पाठ ही नहीं पढ़ा था। उसका स्वभाव ही क्रूर था, अतः उसने देवकी माता की बातों की ओर ध्यान ही नहीं दिया। माता बच्ची को हृदय से चिपटाकर निरन्तर अश्रु बहा रही थी। दोनों हाथों से उसे वक्ष पर चिपकाये हुये अत्यन्त दीन भाव से विलाप कर रही थी। किन्तु, कंस ने उन्हें क्रोध में भर कर भिड़क दिया। डाँटकर बोला—"जिसके लिये मैंने तुम दोनों को कारावास में बन्द किया था, उसे ही तू बचाना चाहती है ? चल, हट, आई बड़ी दया की भिखारिणी !" यह कहकर उसने बल पूर्वक कन्या को देवी देवकी की गोद से खींचकर छीन लिया।

वह सद्यःजात बालिका थी, अत्यन्त सुन्दरी, सुकुमारी तथा कोमलाङ्गी। अपनी बहन की लड़की थी, दया करने योग्य थी, किन्तु दुष्टों के मन में दया कहाँ ! उसने उस लड़की को घुमाकर पत्थर पर पटका। वह कंस के हाथ से सटकी, तुरन्त ही उसे यह बात खटकी, तब तक देवी उसके सिर पर पैर रखकर नभ में चटकी। कंस परम विस्मित बना इस लीला को देख रहा था। योगमाया के ऐसे अद्भुत प्रभाव को देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। ऊपर उसने जो देखा उसे, तो उसके विस्मय का ठिकाना ही नहीं रहा। बालिका देखते-देखते बड़ी सुन्दरी बाला बन गई। भगवान् की अनुजा – उनकी छोटी बहन – वह देवी दिव्य रूपा हो गई है। उसकी कांति से दशों दिशायें आलोकित

हो रही हैं। वह अष्टभुजी देवी होकर दिखाई पड रही है। आठों भुजाओं में वह पृथक पृथक अष्ट आयुध धारण किये हुए है। चार हाथों में तो शङ्ख, चक्र, गदा और त्रिशूल हैं। शेष चार हाथ में वह धनुष-बाण, खड्ग और चर्म (ढाल) धारण किये हुए है। चारों ओर से सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर,

नागगण आदि उन्हें घेरे हुए खड़े हैं। वे सब हाथों में देवी की भेंट उपहार के लिये विविध वस्तुएँ लिये हुए हैं और अत्यन्त ही विनीत भाव से, सुमधुर कण्ठ से उनकी स्तुति कर रहे हैं। कंस

चकित-चकित दृष्टि से देवी की ओर देख रहा था। देवी बोली—"अरे मन्दमति! मुझ माया को मारने से तेरा कौन-सा काज सधेगा ? क्या तू मुझे मारकर जीवित बच सकता है ? जिसे मारने के लिये तूने अकारण इतने निर्दोष बालकों की हत्या की है, वह तो कहीं उत्पन्न हो गया।"

कंस ने पूछा—"कहाँ उत्पन्न हो गया महामाया जी ?"

महामाया बोलीं—"उत्पन्न हो गया, हो गया। यहीं कहीं तेरे व्रज मे हुआ है। अधिकन बताऊँगी (वह तेरा पुराना शत्रु विष्णु ही है) वह तुझे मारेगा, अवश्य मारेगा। अब तो व्यर्थ बालकों की हिंसा करना छोड़ दे। या अब तेरी जो इच्छा हो, सो कर।"

सूतजी कहते हैं—"महाराज! योगमाया देवी कंस से ऐसा कहकर तुरन्त अन्तर्धान हो गईं। वे ही पृथ्वी के अनेक स्थानों में भिन्न भिन्न नामों से प्रकट हुईं। वे सब शक्ति-पीठ कहाते हैं, जहाँ भक्तगण श्रद्धा सहित देवी जी का पूजन करके अभीष्ट फल पाते हैं।

कंस पर देवी के इस कथन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने मन में सोचा—"अरे, जिसके लिये इतना प्रपञ्च रचा, अपनी बहन-बहनोई को शत्रु की भाँति कारावास मे रखा, वह तो इनके यहाँ उत्पन्न न होकर कहीं व्रज में अन्यत्र उत्पन्न हो गया है। इनको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया! ये तो कितने सच्चे हैं, अपने बच्चों को स्वयं ही मुझे मारने के लिये दे देते थे। ये कितने सरल, सदाचारी, सत्यवादी और सहिष्णु हैं! इसके अविरुद्ध मैं कितना कठोर, क्रूर, कदाचारी और कायर हूँ, जो अपने सगे-सम्बन्धियों को इतना कष्ट दे रहा हूँ। मैंने इनके साथ अकारण अन्याय किया है।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! हम एक बात आप से पूछते हैं। वसुदेव जी तो बड़े धर्मात्मा थे। असत्य से वे बहुत डरते थे। वे जो कहते थे, वही करते थे। फिर उन्होंने कंस के साथ विश्वासघात क्यों किया ? एक बार जब वे यह प्रतिज्ञा कर चुके, कि मैं तुझे देवकी के सभी पुत्रों को लाकर दे दूँगा, फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को क्यो छिपाया ? क्यों वे अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध चोरी से श्रीकृष्ण को ले जाकर गोकुल मे छिपा आये ?"

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और बोले -"देखिये, महाराज, धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। सत्य क्या है, असत्य क्या है, इसका निर्णय साधारण लोग नहीं कर सकते। कभी सत्य-सा दीखने वाला कार्य असत्य सिद्ध होता है, कभी असत्य-सा दीखने वाला कार्य सत्य माना जाता है। आपके इस प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से दिया जा सकता है। अच्छा, पहले आप यह बताइये कि धर्म क्या है ?"

शौनकजी ने कहा—"वेद मे जो प्रतिपादित है, वही धर्म है। वेद जिसे अधर्म कहे, वह अधर्म है।"

सूतजी ने पूछा—"अच्छा, महाराज ! वेद क्या है ?"

शौनक जी ने कहा—"भगवान् का निःश्वास ही वेद है। भगवान् की वाणी का ही नाम वेद है।"

सूतजी बोले—"जब भगवान् की वाणी ही वेद है और वेदों मे जो प्रतिपादित है, वही धर्म, तो भगवान की ही आज्ञा तो परम धर्म हुई। वह वेदोदित धर्म से भी बढ़कर है। तब तो कोई दोप की बात नहीं। तो भगवान् ने चतुर्भुज रूप से प्रकट हो कर साक्षात् आज्ञा दी—"हमे नन्द जी के गोकुल में पहुँचा दो।" ऐसी दशा में उन्हें क्रूरकर्मा कंस से की हुई प्रतिज्ञा का पालन

करना धर्म था या भगवान् की आज्ञा का पालन करना ? हम तो कहते हैं भगवान की आज्ञा ही परम धर्म है ।

दूसरी बात यह है, कि स्त्रियाँ हठ पर अड रही हों, तो उन्हे टालन के लिये विवाह आदि के सम्बन्ध मे, हँसी विनोद म, वृत्ति की रक्षा मे, प्राण-सक्ट आने पर, गो ब्राह्मणों की रक्षा म, तथा और भी किसी के प्राण बचते हों, तो उस समय का झूठ ऐसा निन्दित नहीं माना गया है। किसी के प्राण जा रहे हो और अपने झूठ बोलने स प्राण बच जाते हों, तो उस समय झूठ बोल देना कोई दोप नहीं । वसुदेव जी ने सोचा—"यह अष्टम गर्भ है, इस मे साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं। ये बच जायेंगे तो कस के दु ख से दु खी समस्त प्रजा का कल्याण होगा । यद्यपि कस इन्हे मार नहीं सकता, फिर भी उसके पास इन्हें ले जाऊँ और इन्होंने उससे लडाई की, तो एक अलोकिक बात हो जायगी । मानवी लीला न बनेगी ।" यही सब सोचकर वे बालक कृष्ण को गोकुल म छिपा आये ।

दूसरों का जिससे उपकार हो उसका सब प्रकार रक्षा करना परम धर्म है । जहाँ सत्य बात कहने से किसी का अनिष्ट होता हो, वहाँ सत्य न कहकर गोलमटोल उत्तर दे दें। इस विषय म एक कथा है । एक महात्मा सत्य ही बोलते थे । एक दिन एक गो दोडी आई और वह समीप के ही गहन वन म छिप गई । इतने म ही उसका पीछा करता हुआ एक वधिक आया । उसने पूछा—"ब्रह्मन् ! मेरी एक गो इधर आई थी । आपने उसे देखा है क्या ? वह किधर गई ?"

महात्मा ने सोचा—"इस गो बताता हूँ, तो मुझे गो के वध का पाप लगेगा, नहीं बताता हूँ, तो असत्य भाषण का पाप लगेगा ।" अतः वे बोले—"देखो, भाई ! देखना काम आँखों का

है, किन्तु उनमे बताने की शक्ति नही। बताने का नाम वाणी का है, किन्तु उसमे देखने की शक्ति नही। अतः जिन्होंने देखा है, वे कह नही सकती, जो कहती है, उसने देखा नही। मैं तुम्हें क्या बताऊँ?" यह सुनकर वधिक हँस पडा। वह वधिक नही था, साक्षात् धर्म ही थे।

इसके विपरीत एक और कथा है। एक कौशिक नामक महात्मा सत्य ही बोलते थे, या वे मौन रहते थे। एक दिन कुछ लोग डरकर उनके आश्रम के समीप छिप गये। कुछ देर मे वे वध करने वाले भी हाथ मे खड्ग लेकर आये। उन्होने पूछा—ब्रह्मन्! यहाँ कुछ लोग हाँपते हुए, डरे हुए, दौडकर आये हैं। आपने उन्हे देखा है?"

वे तो सत्यवादी ही ठहरे, बोले—"हाँ, वे आश्रम के पीछे छिप रहे हैं।"

इतना सुनते ही वे सब खड्ग लेकर वहाँ पहुँच गये और सबका वध कर डाला। इससे उन सत्यवादी मुनि को नरक जाना पडा। यह जो उन्होने सत्य भाषण किया, वह असमय किया। इसीलिये वह अधर्म ही हुआ।

इसके विपरीत एक कथा है। एक अन्धा पशु था, ब्रह्माजी से वर पाकर वह सब को पीड़ा देता था। कोई उसे वरदान के प्रभाव से मार नही सकता था। इतने मे ही एक बलाक नामक व्याधा आया। वह अन्धा पशु रात्रि मे पानी पी रहा था। पानी पीते असावधान अन्धे पशु को मारना धर्म-विरुद्ध है, किन्तु उस व्याधा ने उसे मार डाला। उसके मरते ही देवताओ ने उस व्याधा के ऊपर पुष्पवृष्टि की और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। ऊपर से यह अधर्म सा दीखता था, किन्तु वास्तव में धर्म था। इस प्रकार वसुदेवजी का भगवान् को गोकुल मे छिपा आना

किसी भी प्रकार अधर्म नहीं था। उन्होने तो भगवत्-आज्ञा से ही यह सब कुछ किया।'

इस पर शौनकजी ने कहा—'हाँ, सूतजी! भगवत्-आज्ञा से तो जो कुछ भी किया जाय, वही धर्म है। अब कृपा करके हमे आगे की कथा सुनाइये। योग-माया की आकाशवाणी सुनकर कस ने फिर क्या किया?"

सूतजी बोले— महाराज! कस को अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और वह देवकी वसुदेव के प्रति सौहार्द्र प्रकट करने लगा। इस प्रसङ्ग को आपको सुनाता हूँ, आप श्रद्धा सहित उसे श्रवण करें।"

छप्पय

यों कहि अन्तरधान भई फिरि दीखी नाहीं।
विन्ध्याचलमहँ जाइ भई पूजित जगमाहीं॥
सुनि चिन्तित अति भयो कस पुनि पुनि पछितावै।
जाइ देवकी निकट दुखित ह्वै कें समुझावै॥
करि बन्धन तैं मुक्ति पुनि, करहि प्रदर्शित प्रेम अति।
चिकनी चुपरी बात करि, देहिभुलावो मूढ़ मति॥

कारावास से श्री देवकी वसुदेवजी की मुक्ति

[८३६]

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ।।।*
(श्रीभा० १० स्क० ४ अ० १५ श्लो०)

छप्पय

बोल्यो—'भगिनी ! भाम ! छमहु अपराध हमारे ।
मैंने शठता करी तुम्हारे शिशु सब मारे ।।
सुरनि कर्यो छल कपट पाप मोतें करवाये ।
करि नभबानी मृषा बहिन [कि सुत मरवाये ।।
अस्तु, भई सो भई अब, हौं लज्जित अरु दुखित अति ।
भोगें है प्रारब्धवश, सब सुख दु ख सम्पति विपति ।।

मनुष्य अपने को जैसे क्षमा कर देता है, वैसे अन्य को भी क्षमा कर दे फिर वरभाव शत्रुता तथा कलह न हो। हमसे कोई अपराध बन जाता है तब तो कह देते हैं— चलो, जो हुआ सो हो गया। किन्तु दूसरो के अपराधो को हम जीवन भर नहीं भूलते मरते समय अपने परिवार वालो से भी कह जाते हैं, उसने हमारे साथ ऐसा वर्ताव किया था, तुम भी इसके साथ ऐसा ही करना। अपने से कोई अपराध हो जाता है तो प्रारब्ध को दोष देते हैं। दूसरो से हो जाता है तो उसके प्राण खा

* श्री शुकदेवजी कहते हैं— राजन ! योगमाया की बात सुनकर कंस को परम विस्मय हुआ। उसने तुरन्त देवकी और वसुदवजी को बन्धन से मुक्ति करके अत्यन्त विनीत भाव से कहा।'

जाते है, तुमने ऐसा किया ही क्यो ? यही भिन्न दृष्टि है इसी का नाम पक्षपात या स्वार्थ है, ऐसे लोग ऊपर से तो बडा भारी ज्ञान छाँटते है किन्तु भीतर ही भीतर उनमे स्वार्थ सिद्ध करने की भावना भरी रहती है। दुरात्माओ के ये ही लक्षण हैं।

सूतजी कहते है—"मुनियो! योगमाया के वचनो को सुनकर कंस को चेत हुआ। उसने सोचा—"अरे, मैं तो ठगा गया। जिस देवकी के अष्टम गर्भ से मुझे भय था, वह तो गोकुल मे ही कही अन्यत्र उत्पन्न हो गया। अब क्या किया जाय, अब तो इन देवकी और वसुदेव को वन्दी बनाकर रखना वृथा है। यदि यह बात पहले से ही विदित होती, तो मैं इन्हें वन्दी ही क्यो बनाता। मुझसे यह तो भूल हो गई।" फिर सोचने लगा—"कोई बात नही। हो ही जाता है, भूल मनुष्य से ही तो होती है। ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जिसने जीवन मे कभी भूल न की हो। अब मैं इधर-उधर की बातें कहकर इन्हें प्रसन्न कर लूँगा।" यही सोचकर वह देवकी और वसुदेवजी के पास गया।

अत्यन्त ही सौहार्द्र प्रकट करते हुए उसने देवकी से कहा—"बहिन! मेरे द्वारा तुम्हे वडा क्लेश हुआ। बेचारे वसुदेवजी को भी व्यर्थ मे बहुत-सी विपत्तियाँ उठानी पडी। आकाशवाणी सुनकर मेरी भी कैसी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, कैसा मैं बधिक बन गया, कैसा राक्षस भाव मुझमे आ गया, जो आपके सद्य.जात बालको को निर्दयतापूर्वक मार डाला।"

देवकी ने दुखित होकर कहा—"अरे, भैया! कौन किसे दुख देता है, सब अपनी करनी का फल हैं।"

कंस ने पश्चात्ताप के स्वर मे कहा—"सो तो है ही। फिर भी तू मेरी बहिन है, ये मेरे बहनोई हैं, मुझे तो अपने सगे,

सम्बन्धी, सुहृद् तथा कुटुम्बवालों पर करुणा करनी चाहिए, उनकी सहायता करनी चाहिये। सो तो मैंने कुछ किया नहीं, उलटे तुम्हें बड़े बड़े क्लेश दिये। आपका स्वाभाविक स्नेह छोड़कर मैंने दुष्टता पूर्ण व्यवहार किया। इन कुकृत्यों के कारण कौन से नरकों में मुझे जाना होगा। कौन-कौन-सी यमयातनायें मुझे सहनी पड़ेगी।"

देवकी जी ने कहा—"भैया! तुम तो मुझे बहुत प्यार करते थे, अपनी पुत्री के सदृश मानते थे, जब से तुमने आकाशवाणी सुनी, तभी से तुम्हारे भाव बदल गये।"

कंस ने कहा—"हाँ, बहिन! मुझे इसी बात का तो आश्चर्य हो रहा है। मनुष्य झूठ बोले तो बोले। अब विधाता भी झूठ बोलने लगा है। आकाशवाणी तो सदा सत्य ही होती है मेरे लिये वह भी असत्य सिद्ध हुई। उसी के चक्कर में पड़कर मैंने कैसे-कैसे घोर पाप किये। अपने कितने तेजस्वी होनहार भानजों को पैदा होते ही मार डाला। अबध्या कन्या को भी निर्दयता-पूर्वक पाषाण पर पटका। आप अपने पुत्रों की मृत्यु से दुःखी होंगे। इन पापों के कारण मैं तो जीवित ही मृतक के समान हूँ। ब्रह्महत्या के सदृश मैंने पाप किया है।"

आँखों में आँसू भरकर देवी देवकी ने कहा—"भैया दुःखी होने से क्या होता है, अब लौटकर थोड़े ही आ सकते हैं?"

कंस ने कहा—"हाँ अब यही सोच समझकर तो सन्तोष करना पड़ेगा। अब शोक करने से ही क्या हो सकता है, उन बेचारों का प्रारब्ध ही ऐसा था, उनके भाग्य में ऐसा ही लिखा होगा। संसार के सभी प्राणी दैवाधीन होकर भटकते रहते हैं। जिसकी जहाँ जिसके द्वारा मृत्यु बदी होती है, उसकी वहीं उसी के द्वारा मृत्यु हो जाती है। इसे कोई अन्यथा करने में समर्थ

नहीं। जैसा होना होता है, वैसी ही बुद्धि बन जाती है। फिर जन्म के साथ मृत्यु तो लगी ही रहती है। जिसने जन्म लिया है उसे आज या सौ वर्ष के पश्चात् मरना तो अवश्य ही है। फिर मरना भी एक खेल है। वास्तव में तो मृत्यु होती ही नहीं!"

देवकी जी ने कहा—"मृत्यु होती क्यों नहीं भैया।" जीता हुआ आदमी प्रत्यक्ष मरा हुआ दिखाई देता है।"

कंस ने कहा—"अच्छा, तू विचार कर मरता कौन है। शरीर में दो वस्तुएँ हैं, एक शरीर एक आत्मा। एक क्षेत्र है दूसरा क्षेत्रज्ञ। आत्मा तो न मरती है, न जन्म लेती है, वह तो अजर, अमर, नित्य और शाश्वत है। शरीर तो क्षणभंगुर है ही। आज बना, कल बिगड़ा। आज जो मनुष्य है, कल पशु योनि में चला जायगा, फिर पक्षी बन जायगा, किन्तु जिसके आश्रय से ये देह प्राप्त करता है, उसमें तो कोई विकार नहीं। जसे मिट्टी है, उसके घड़े, सकोरे, नाद, हंडी तथा मटकी आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तन बनते हैं। कुछ काल में बर्तन फूट जाते हैं। बर्तनों के नष्ट होने पर मिट्टी नष्ट नहीं होती। बर्तन बनने के पूर्व भी मिट्टी थी, फूटने पर भी मिट्टी हो गई। बीच में केवल उसका नाम रूप बदल गया। इसी प्रकार देह उत्पन्न होते रहते हैं, नष्ट होते रहते हैं, इससे आत्मा में विकृति नहीं होती। वह तो शुद्ध निर्विकार एकरस बना रहता है।"

देवकी जी ने कहा—"तब फिर भैया! बच्चा पैदा होने पर लोग हर्ष क्यों मनाते है, मरने पर इतने क्यों रोते हैं?"

कंस ने कहा—"यह लोगों की मूर्खता है, अज्ञान के कारण ही ऐसा करते है। उन्हे यथार्थ तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। कुछ को कुछ मान बैठे हैं। टेढ़ी-मेढ़ी पड़ी रस्सी को भ्रमवश सर्प मानकर भयभीत हो रहे है। कुछ का कुछ मान लिया है।

ये देह-गेह आदि नश्वर और अनात्म पदार्थ हैं, इन अनात्म-पदार्थों मे अज्ञान के कारण आत्मबुद्धि कर ली है। देह और आत्मा का भेद न जानकर देह को ही आत्मा माने बैठे हैं। इसी मूर्खतावश सब अपनी देह को ही सुखी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरों को अपने से भिन्न मानकर उनसे राग द्वेष कर रहे हैं। राग-द्वेष से भेद-भाव होता ही है। यह भेद ज्ञान ही सयोग - वियोग का कारण है। मेरा शत्रु मर गया, अच्छा हुआ। मेरे मित्र का पुत्र मर गया, बुरा हुआ। यह भेद-भाव ही दुःख-सुख का कारण है। यह सुख दुःख ही प्राणियों को पुनः-पुनः ससार मे ले आते हैं। पुण्य और पाप की वासनाओ से ही दूसरा शरीर लेना पड़ता है। पुण्य विशेष हैं, तो सुख मिलेगा। पाप विशेष हैं, तो दुःख मिलेगा। इन वासनाओं मे ही बँधे रहने के कारण ससार चक्र की निवृत्ति नही होती। "पुनरपिजनन पुनरपिमरणम्" यह क्रम चलता ही रहता है। इन्ही सब बातो को समझकर लल्ली! तू शोक मत कर। मेरे ऊपर क्रोध भी मत करना; इसने ही मेरे बच्चो को मारा है, कौन किसे मार सकता है, कौन किसे जिला सकता है। सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। इस विषय में तुम एक दृष्टान्त सुनो।

एक ब्राह्मण था, वह गाडी लेकर अपनी स्त्री को लाने ससुराल मे जा रहा था। चलते चलते उसके बैल थक गये। समीप ही उसने एक बडा सुन्दर उद्यान देखा। वहाँ एक सुन्दर सरोवर था, ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे गाड़ी खोलकर बैठ गया। विश्राम करके वह सरोवर में स्नान करने गया। वहाँ उसने क्या देखा कि एक भिखारिणी वहाँ पडी तड़प रही है। वह प्यास के कारण व्याकुल हो रही थी। उसने क्षीण-

स्वर में कहा—"कौन है, तनिक दया करके मुझे पानी पिला दे।"

ब्राह्मण को दया आ गई, वह लोटा मे पानी भरके उसके पास गया। जाकर जो उसने देखा, उसे देखकर उसे बड़ी दया आई। भिखारिणी के सभी कपड़े मैले-कुचैले और फटे-पुराने थे। गौर वर्ण का उसका शरीर था, अभी-अभी उसने युवावस्था मे पदार्पण किया था, उसका मुख अत्यन्त ही सुन्दर था, किन्तु सम्पूर्ण शरीर मे गलित कुष्ट था। घावों में कीड़े पड रहे थे और वे बिलबिला रहे थे। सम्पूर्ण शरीर से दुर्गन्धि आ रही थी, उसके पास भी कोई खडा नही होता था। ब्राह्मण ने नाक बन्द करके उसे पानी पिलाया और पूछा—"कुछ खाओगी ?"

सतृष्ण नेत्रों से कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने सिर हिला दिया। ब्राह्मण अपनी गाडी मे से सत्तू ले आए। सत्तू सानकर उसने दिया। कई दिन की वह भूखी थी। भोजन करके उसको शरीर की सुधि आई। उसने ब्राह्मण के प्रति अपना कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"भगवान् आपका भला करे, मुझ पतिता के ऊपर आपने बडी दया की।"

उस स्त्री की ऐसी दशा देखकर ब्राह्मण को बडी दया आ गई। वह उसके पास बैठ गया, उसने कहा—"मैं तुम्हारी और क्या सहायता कर सकता हूँ।"

इतना सुनते ही वह स्त्री फूट-फूटकर रोने लगी—"उसकी आँखो की कोर से निरन्तर आँसू बह रहे थे। रोते-रोते उसने कहा—"संसार मे मुझसे अधिक पतिता और कौन होगी। मैं तो समझती थी संसार में मुझसे कोई बोलेगा भी नही, किन्तु अब पता चला, संसार में पतियो से भी प्रेम करने वाले दयालु पुरुष

हैं। आप मेरे ऊपर यदि कुछ दया करना चाहते हैं, तो मुझे कहीं से थोड़ा विष ला दें या किसी नदी में फेंक आवें। इस जीवन से मैं ऊब गई हूँ, मरना चाहती हूँ, किन्तु मुझ अभागिनी की मृत्यु भी नहीं आती।" यह कहकर वह फिर मुख ढाँपकर रोने लगी।

ब्राह्मण उसकी मानसिक वेदना को समझ गया, कि यह अत्यन्त कष्ट मे है, किन्तु उसकी बुद्धि मे यह बात नही आ रही थी कि मैं उसकी क्या सेवा करूँ? इतने मे ही एक वृद्धा वहाँ आ गई। उस स्त्री को देखकर वह भी वहाँ खड़ी हो गई। उसके हृदय मे भी दया आ गई। उसने कहा—"इसे क्या हो गया है?"

ब्राह्मण बोला—"माताजी! यह कोई बड़ी दुखिया है, यहाँ कहीं कोई आस-पास वैद्य हो तो बताओ, इसकी कुछ चिकित्सा कराई जाय। मुझसे जो बन सकेगा, वह मैं सहायता करने को तैयार हूँ।'

वृद्धा बोली— भैया! वैद्य को तो मैं जानती नहीं। यहाँ से चार-पाँच कोस दूरी पर गंगा किनारे एक महात्मा हैं। वे भभूत देकर बहुत से रोग अच्छे कर देते हैं।"

ब्राह्मण ने कहा— मुझे उधर ही जाना है यदि यह चलना चाहे तो मैं ले चलूँ।"

स्त्री तो यह चाहती ही थी। वह सहर्ष तैयार हो गई। ब्राह्मण अपनी गाड़ी ले आया। वृद्धा की सहायता से उसे गाड़ी में लिटाया और उसे लेकर वह महात्मा के समीप पहुँचा। सायंकाल का समय था, ब्राह्मण ने महात्मा को प्रणाम किया, और उस स्त्री की सब कथा सुनाकर भभूती देने की प्रार्थना की। रोते-रोते उस स्त्री ने भी महात्मा जी की विनय की। महात्मा बोले—

'देखो भाई, सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। यह भी अपने कर्मों के फल से इस दशा को प्राप्त हुई है।"

ब्राह्मण ने पूछा—'प्रभो! आप तो सर्वज्ञ हैं, इसने ऐसा कौन-सा पूर्वजन्म मे पाप किया था, जिससे इसकी ऐसी दुर्गति हुई ?''

महात्मा बोले—"पूर्व जन्म मे यह एक बडे धनिक वैश्य की कन्या थी इसका व्याह माता पिता ने एक दूसरे धनिक वैश्य पुत्र के साथ किया। जिसके साथ इसका विवाह हुआ था, उसका एक छोटा भाई और था। वह अत्यन्त ही सुन्दर था। उसके साथ इसका सम्बन्ध हो गया। यद्यपि पहिले दोनो भाइयो मे बडा प्रेम था, किन्तु इस अनुचित सम्बन्ध मे दोनो भाई एक-दूसरे के रक्त के प्यासे बन गये। छोटे भाई ने अवसर पाकर बडे भाई का वध कर दिया और उसे नदी मे फेंक आया। अब तो यह खुल्लमखुल्ला उसके साथ रहने लगे। इसे सुरापान का, मांस खाने का भी व्यसन हो गया। इसका देवर पशु-पक्षियो को लाता, यह स्वय उनको मारकर उनके मासों को विविध प्रकार से बनाकर खाती। कुछ दिनो मे सब धन समाप्त हो गया। धन न रहने से आपस मे लडाई होने लगी। अन्त मे वह देवर भी इसे छोडकर भाग गया। इसने किसी और से सम्बन्ध कर लिया। वह इसे निर्वाह के लिए द्रव्य देता था।

तुम पूर्वजन्म मे भिक्षुक थे। एक दिन अत्यन्त भूखे इसके द्वार पर आ गये। इसने दया करके तुम्हें भोजन करा दिया। भोजन करके तुम चले गये किन्तु इसके रूप को देखकर तुम्हारे मन मे इसके प्रति कुछ आसक्ति हो गई। कुछ दिनो पश्चात् सर्प ने इसे डस लिया और यह नरको मे ले जाई गई। वहाँ नरक की इसे भयकर वेदनाएँ दी गईं। जब इसके कुछ पाप शेष रहे,

तो यह एक शूद्र की कन्या हुई। यह बड़ी सुन्दरी थी, अतः एक धनिक शूद्र के साथ इसका विवाह हो गया। उस नगर का जो भूमिपति था उसकी इस पर दृष्टि लग गई। वह भूमि पति इसके पूर्व जन्म का पति ही था। जिससे इसका विवाह हुआ वह इसका देवर था। उस भूमि पति ने क्रोध में भरकर पूर्व, जन्म के वैर के सस्कार के कारण इसके पति को मार डाला और इसे अपने घर मे रख लिया। इसका चाल चलन भी अच्छा नही था, अतः इसे उपदंश की बीमारी हो गई। इससे उसने इसे त्याग दिया। ये ससारी पुरुष तो रूप के लोभी होते है। इसे कोई पूछता नही था, इसी बीच मे इसे कुष्ठ हो गया और घावो मे बडे-बडे कीड़े पड गये। ये सब वे ही पशु पक्षी कीड़े हुए थे, जिन्हें मारकर उनके मांस को इसने खाया था। पहिले इसने उनके मांस को खाया था, अब ये इसके मांस को खा रहे हैं।

तुम्हारी इसके प्रति मानसिक आसक्ति भी थी, तुम्हारे साथ इसने दया भी की थी। इसीलिये इस जन्म मे तुम्हारे मनमे इसके प्रति दया उत्पन्न हो गई और तुम इसे गगा किनारे ले आये। जिस बुढिया ने इस पर दया की यह इसकी पूर्व जन्म की धाय थी। इसका इस पर बडा स्नेह था। ससार मे कोई घटना सहसा नही होती, सबका पूर्व जन्म के सस्कारो से सबन्ध रहता है। अब यह गगा किनारे रहे, गगा रज शरीर मे लगावे, गगाजल का पान करे, इसीसे इसकी सद्‌गति हो जायगी।" उस स्त्री ने ऐसा ही किया, कुछ दिन मे उसका रोग दूर हो गया और गगा किनारे रहने से उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति हुई।

कस अपनी बहन देवकी से कह रहा है– 'सो, बहिन कोई किसी को जान बूझकर नही मारता। पूर्व जन्मो का वैर लेने को ही ऐसा करता है। मेरा तुम्हारे इन बच्चो के साथ ऐसा

ही कोई संस्कार रहा होगा। ज्ञानी के लिये तो कर्मबन्धन है ही नहीं। क्योंकि उसको कर्तृत्व का अभिमान नहीं है। उसकी बुद्धि कर्म करते हुए भी उन कर्मों में लिप्त नहीं होती। ऐसी दशा में वह चाहे सम्पूर्ण लोकों की हत्या कर डाले तो भी वह उनसे पृथक ही रहता है कर्म बन्धनों में बँधता नहीं है किन्तु जब तक यह अभिमान है कि मैं मारता हूँ या मुझे कोई मारता है, तब तक स्वयं प्रकाश होने पर भी जीव देह की उत्पत्ति तथा नाश का अभिमान करने के कारण वह अज्ञान वश बाध्य-बाधक भाव को प्राप्त होता है। इसलिये भावी को प्रबल समझकर तुम सोच मत करो। मुझसे यह पाप भूल में हो गया।

देवकीजी बोली—"अब भैया जो कुछ होना था सो हो गया हम तुमसे कुछ कहते थोड़े ही है। तुम सर्व समर्थ हो जो चाहो कर सकते हो "

कंस बोला—'कहोगे क्या ? तुम दोनों तो बड़े साधु स्वभाव के हो धर्मात्मा हो, सहिष्णु हो दीन दुखियों पर दया करने वाले हो। मैंने जो तुम्हारे साथ अन्याय, अत्याचार किये हैं नृशंसता की है उसे क्षमा करो। मैं तुम्हारी शरण हूँ।'

सूतजी कहते है—' मुनियो ! इतना कहकर कंस सुबकियाँ भरकर रोने लगा तथा देवकीजी और वसुदेवजी के पैरों में गिर पड़ा।'

इतने अभिमानी और पराक्रमी कंस को इस प्रकार दीन होते देखकर देवी देवकी का क्रोध शान्त हो गया। वसुदेवजी तो ज्ञानी ही थे उन्हें तो क्रोध होना ही क्या था, अतः वे कंस को धैर्य बँधाते हुए हँसकर बोले -' राजन् ! आपने सत्य बात कही। वास्तव में कौन किसे सुख दुःख देता है सभी अपने किये कर्मों

का फल भोग रहे हैं। देह धारियों को अज्ञान के कारण ही अहं बुद्धि होती है। उसी अज्ञान के प्रभाव से यह मेरा है, यह तेरा है, इस प्रकार की भेद बुद्धि प्रतीत होती है, वे भेद दर्शी लोग ही दुःख, सुख, हर्ष, शोक, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा मद से

अन्धे होकर परस्पर मे लडते झगडते हैं और एक दूसरे का नाश करानेवाले काल स्वरूप सर्वप्रेरक परमात्मा का नही जानते।"

सूतजी कहते है—'मुनियो! ऐसा कहकर देवकीजी तथा वसुदेवजी ने सच्चे हृदय से बिना छल कपट के कंस को क्षमा

कर दिया। कंस ने भी योगमाया के कथन पर विश्वास दिखाते हुए वसुदेव और देवकी को बन्धन मुक्त कर दिया। वे दोनो कारावास से मुक्त होकर अपने घर चले गये। कस उनसे आज्ञा लेकर अपने घर चला गया।"

छप्पय

सुख दुख कूँ को देहि भाग्य ही सब करवावे।
दैवाधीन वियोग देव ही लाइ मिलावे॥
अहं बुद्धि अज्ञान जन्य प्रारब्ध बनावे।
हर्ष, शोक, भय, लोभ, मोह आदिक उपजावे॥
ऐसें ज्ञान बघारिकें, करि प्रसन्न दोनों लये।
कारागृह तें मुक्त है, हरि चित धरि निज गृह गये॥

इसके आगे की कथा अगले खण्ड में पढ़िये।